ISBN : 9788193710050

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

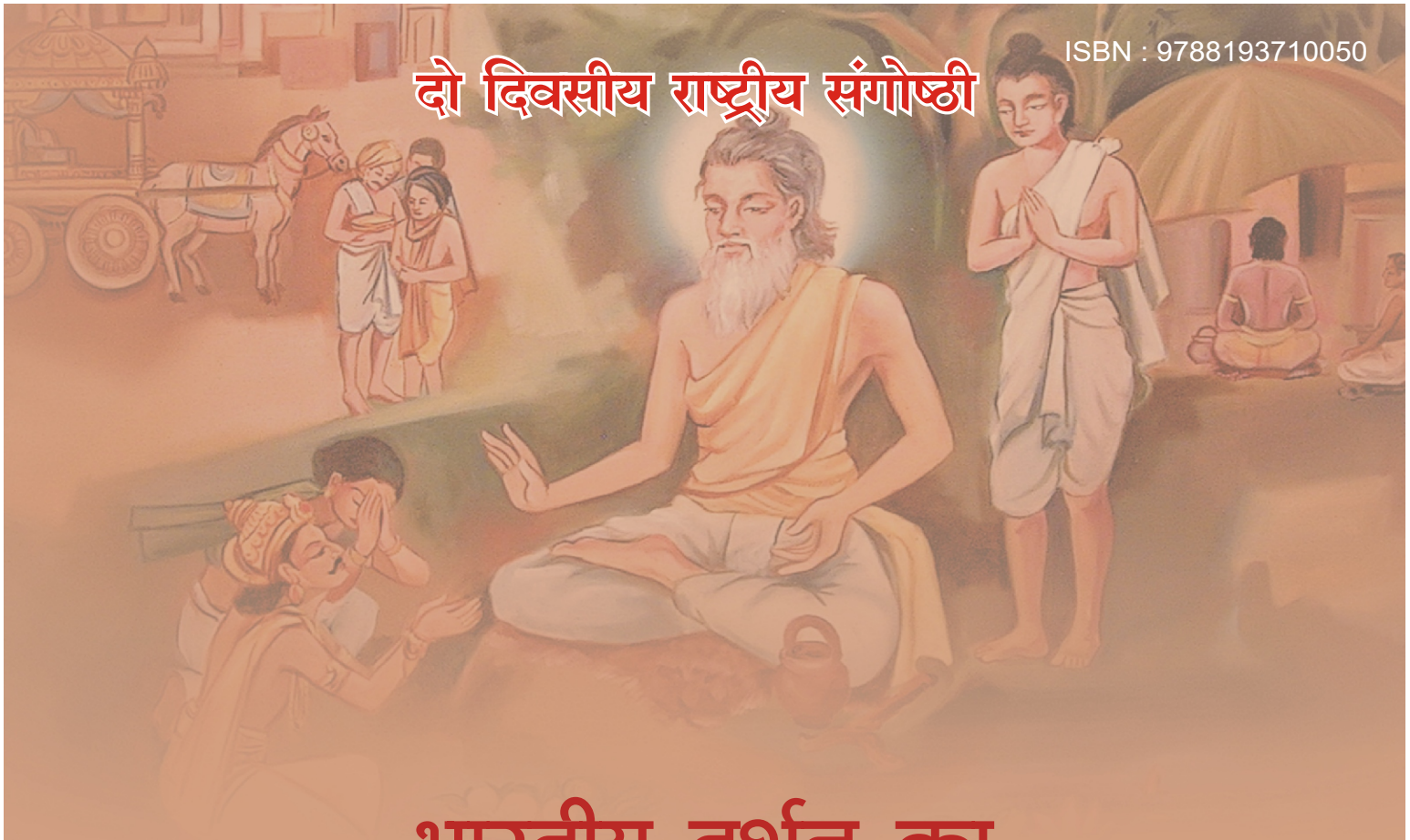

भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव

27-28 फरवरी 2020

आयोजक

स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय,
हुडको, भिलाई (छ.ग.)

प्रायोजक

भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

आमदी नगर, हुडको

ISBN : 9788193710050

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्राप्त शोध आलेख विशेषांक

भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव

27–28 फरवरी 2020

मुख्य संपादक
डॉ. हंसा शुक्ला
प्राचार्य
स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय, हुडको, भिलाई (छ.ग.)
Ph. : 0788-2241600

आयोजक :
स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय,
हुडको, भिलाई (छ.ग.)
प्रायोजक :
भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली
प्रकाशक :
अदिति पब्लिकेशन, रायपुर (छत्तीसगढ़)

''भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव'', 27–28 फरवरी 2020

प्रथम संस्करण 2020

संपादक : **डॉ. हंसा शुक्ला,** प्राचार्य
स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय, हुडको, भिलाई (छ.ग.)

ISBN : 9788193710050

© लेखकाधीन : लिखित अनुमति के बिना पुस्तक के किसी भी अंश का प्रयोग कानूनी अपराध है

Copyright© All Rights Reserved

No parts of this publication may be reproduced, stored in a retrival system or transmitted, in any form or by any means, mechincal, photocopying, recording or otherwise, without prior written permsission of original publisher.

मूल्य : 249.00 ⁄ –

प्रकाशक :
अदिति पब्लिकेशन,
बर्फ कारखाना के पास,
शक्ति साउॅण्ड सर्विस के सामने गली,
कुशालपुर रायपुर (छत्तीसगढ़)
+91 9425210308

मुख्य संरक्षक

श्री आई. पी. मिश्रा, चेयरमेन
श्री गंगाजली शिक्षण समिति
जुनवानी, भिलाई (छ.ग.)

डॉ. दीपक शर्मा, सीओओ
स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय,
हुडको, भिलाई (छ.ग.)

संरक्षक

डॉ. मोनिशा शर्मा, सीओओ
श्री शंकराचार्य नर्सिंग कॉलेज,
हुडको, भिलाई (छ.ग.)

डॉ. हंसा शुक्ला (प्राचार्य)
स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय
आमदी नगर हुडको, भिलाई (छ.ग.)

संयोजक

डॉ. निहारिका देवांगन
विभागाध्यक्ष वनस्पति शास्त्र, स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय
आमदी नगर हुडको, भिलाई (छ.ग.)

संगठन सचिव

डॉ. सुनीता वर्मा
विभागाध्यक्ष हिन्दी, स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय
आमदी नगर हुडको, भिलाई (छ.ग.)

कार्यकारी समिति

डॉ. पूनम निकुम्भ, डॉ. एस. रजनी मुदलियार, डॉ. नीलम गांधी,
श्री कृष्णकांत दुबे, श्रीमती आरती गुप्ता, डॉ. शमा ए. बेग
स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय, आमदी नगर हुडको, भिलाई (छ.ग.)

सलाहकार समिति

डॉ. भगवंत सिंग,
विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र अध्ययन शाला,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर (छ.ग.)

प्रो. जे.पी. शाक्य,
अध्यक्ष, दर्शन विभाग,
शास. महाराजा महाविद्यालय, छत्तरपुर (म.प्र.)

डॉ. प्रदीप कुमार खरे,
प्राध्यापक दर्शनशास्त्र
सरोजनी नायडु शासकीय कन्या महाविद्यालय,
भोपाल (मध्यप्रदेश),

डॉ. आर. एन. सिंह,
प्राचार्य,
शा.व्ही.वाय.टी.पीजी, ऑटोनोमस महाविद्यालय,
दुर्ग (छ.ग.)

डॉ. सुशीलचंद तिवारी,
प्राचार्य,
शा.डॉ.वी.वी.पाटनकर पीजी कन्या महाविद्यालय,
दुर्ग (छ.ग.)

****

संपादक की

✍ से.....

दर्शन शब्द संस्कृत की दृश्य धातु से बना है **''दृश्यते अर्थात तत्व मनेन''** जिसके द्वारा यर्थात (सत्य) तत्व की अनुभूति हो वही दर्शन है। दर्शन ज्ञान एवं यथार्थ परक हेतु एक दृष्टिकोण है जो सत्य एवं प्रकृति के सिद्धांतों एवं उनके कारणों का वर्णन करता है। व्यापक अर्थ में दर्शन, तर्कपूर्ण, विविपूर्वक एवं क्रमबद्ध विचार की कला है। दर्शन का जन्म अनुभव एवं प्रकृति के अनुसार होता है यही कारण है कि भारतीय दार्शनिकों ने अपने अनुभव एवं परिस्थितियों के अनुसार अलग–अलग जीवन दर्शन को अपनाया किन्तु सबका मूल मानव कल्याण हैं। वर्तमान में भारतीय दार्शनिक विचार के अनुरूप जीवन शैली आवश्यक है क्योंकि स्वकेन्द्रित मानव केवल अपने लिए सुख के साधन जुटाने में लगा हुआ इसके लिए दूसरे संसाधनों का विदोहन किया जा रहा है जिसके कारण मानवता शर्मसार है।

भारतीय दार्शनिक विचारों एवं मान्यताओं का संत साहित्यकारों पर प्रभाव परिलक्षित होता है। संतत्व का मापदण्ड लोकहित्कारी कार्य को माना जाता है, भले वह व्यक्ति शास्त्रज्ञ या भाषाविद् ना हो किन्तु जिन्होने लोक कल्याण के लिए कार्य किया वह संत है। सम्पूर्ण संत साहित्य ब्रम्हा, जीव, माया, आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, ज्ञान, प्रकृति और जगत पर आधारित है। अनेक युगों में अनेक साधकों की अनुभूतियों और दार्शनिक विचारधाराओं का सामजस्य ही संत दर्शन की आधारशिला है। आज भारत में ही नहीं अपितु विश्व में ऐसे संत के अवतरण की जरूरत है जो अपनी वाणी से संपूर्ण विश्व के मानव को ऐसे जीवन के लिए प्रेरित कर सकें जिससें मानव के साथ अन्य जीव जन्तु एवं प्राकृतिक संसाधनों को कोई क्षति ना पहुॅचें।

भारतीय दर्शन में मोक्ष – इच्छाओं से मुक्त होने की क्रिया है ना कि इन्द्रियों का दमन करना इसी तरह संत संतोष और लोकमंगल को मानवधर्म मानते है ना कि कठोर संयम, सन्यास और ब्रम्हचर्य को। भारतीय दर्शन के अनुरूप संत सात्हिय से स्पष्ट होता है कि वह आत्मा को शांति विहीन मानकर प्रत्येक व्यक्ति को आत्मा की शुचिता बनाये रखने और सभी मानव का सम्मान करने का उपदेश देते है जिस प्रकार बुंदों को न तो समुद्र से अलग किया जा सकता है और न ही समुद्र को बुदों, उस प्रकार प्रत्येक आत्मा में परमात्मा विलीन है उसे अलग नहीं किया जा सकता है इसलिए संत मानव–मानव में जाति, धर्म, वर्ण एवं रंग के आधार पर अंतर नही करते हैं। संत साहित्य के मंथन से स्पष्ट होता है मानवीय चरित्र का अर्थ होता है मन कर्म तथा वचन के बीच सामंजस्व वर्तमान में मानव चरित्र में इस तत्व का अभाव सर्वथा दिखता है मनुष्य सोचता कुछ और है बोलता कुछ और है, एवम् करता कुछ और है। मनुष्य के मन से जब भ्रम का परदा हट जाता है तो स्वमेव से उसे सत्य का दर्शन हो जाता है। भारतीय दर्शन का ''संत साहित्य पर प्रभाव'' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन का उद्देश्य सहज–सरल और सहर्श जीवन जीने की महत्ता को पुनः स्थापित करना है।

संगोष्ठी में प्राप्त आलेखों का प्रकाशन पुस्तकाकार में करके पाठकों तक भारतीय दर्शन और संत साहित्य के अर्न्तसंबंध को स्पष्ट करना है। वर्तमान में संत दर्शन के अनुरूप जीवन शैली अपनाना क्यों आवश्यक है? इस चिन्तन हेतु भारत के विभिन्न संतों के विचारों से संबंधित आलेख इस पुस्तक में शामिल किये गये है। आलेख रचनाकारों को हृदय से धन्यवाद जिन्होंने भारतीय दर्शन का संत साहित्य विषय के विविधि आयामों पर कलम चलाकर विषय के अलग–अलग पक्षों पर अपने विचारों को कलमबद्ध किया जिसके कारण यह शोध आलेख की पुस्तक को मुर्त रूप मिला।

डॉ. हंसा शुक्ला
प्राचार्य
स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय
आमदी नगर, हुडको, भिलाई (छ.ग.)

स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय

आमदी नगर हुडको भिलाई

दिनांक–27–28 फरवरी, 2020

"स्वामी श्री स्वरुपानंद सरस्वती महाविद्यालय में दो दिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी 'भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव''

– प्रतिवेदन –

स्वामी श्री स्वरूपांनद सरस्वती महाविद्यालय, हुडको भिलाई एवं भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के संयुक्त तात्वावधान में "भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव" विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी का उद्घाटन समारोह डॉ. अरुणा पल्टा कुलपति हेमचंद यादव विश्वविद्यालय दुर्ग के मुख्य आतिथ्य में संपन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. दीपक शर्मा सीओओ स्वामी श्री स्वरूपांनद सरस्वती महाविद्यालय ने की। विशेष अतिथि के रुप में प्राचार्य डॉ. हंसा शुक्ला, आचार्य डॉ. महेशचंद्र शर्मा, बहुभाषाविद्, शिक्षाविद्, लेखक, इस्पात नगरी, भिलाई (छ.ग.), डॉ. संदीप अवस्थी शोध निर्देशक, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान), डॉ. शोभा निगम, पूर्व विभागाध्यक्ष दर्शनशास्त्र, छ.ग.महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.) उपस्थित हुई।

डॉ. दीपक शर्मा ने उपस्थित अतिथियों का स्वागत किया व सेमीनार की उपादेयता पर प्रकाश डालते हुये कहा ईश्वर ने अनेक रचनायें की है उसमें सर्वश्रेष्ठ रचना मानव है, परमात्मा ने मानव को परमात्मा का पुत्र कहलाने का हकदार बनाया है। उसे बुद्धि व शक्ति दी, भक्ति की भावना दी, पर मानव शक्ति पाकर अहंकारी हो गया और भुल गया कि मनुष्य बनकर हमें मनुष्यता की रक्षा कैसे की जाये। हम दूसरे के दुख को दूर करते है दूसरे के पीड़ा को समझते है तभी हम आत्मा की सेवा करते हुये परमात्मा को प्राप्त कर सकते है। मनुष्य में देवत्व का जो अंश खो गया है उसे हम संतो के बनाये गये मार्ग पर चल कर पुनः प्राप्त कर सकते है।

कार्यक्रम के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुये प्राचार्य डॉ. हंसा शुक्ला ने कहा भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। संतों ने यही कहा भगवा वस्त्र पहनने से कोई संत नहीं हो सकता। हमारा धर्म कर्म प्रधान है व आत्मा को परमात्मा का अंश माना गया है और अगर हम यह स्वीकार कर ले हर आत्मा में परमात्मा का अंश है तो हम किसी को भी तकलीफ नहीं पहुँचा सकते है।

अपने आतिथ्य उद्बोधन में डॉ. अरुणा पल्टा कुलपति हेमचंद यादव विश्वविद्यालय दुर्ग ने कहा भारत विविधताओं का देश है यहां सभी जाति व संप्रदाय के लोग रहते है व अनेक संतों व गुरु परंपराओं को मानने वाले है संतों की कोई जाति व व्यवसाय नहीं देखा जाता कबीर, जुलाहा, रैदास मोची थे पर लोगों ने इन्हें संत के रुप में स्वीकार किया वे उच्च श्रेणी के संत कहलाये। सभी संतों की वाणी का मुख्य निष्कर्ष यही निकलता है स्वार्थ की भावना से उपर उठकर मानव समाज की सेवा करना वही संत कहलाता है। उन्होंने कहा मेरे दृष्टिकोंण में डॉ. अब्दुल कलाम भी संत है क्योंकि उन्होंने अपने लिये नहीं अपितु देश के लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया।

बीज वक्तव्य में डॉ. शोभा निगम, पूर्व विभागाध्यक्ष दर्शनशास्त्र, छ.ग.महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.) भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव विषय पर विचार व्यक्त करते हुये कहा सर्वप्रथम भक्ति का उल्लेख वेदों में दिखाई देता है पर मुक्ति का चित्रण कर्मकाण्डों में दिखाई देता है जिसमें यज्ञों द्वारा मुक्ति की कामना की गई पर जब यज्ञ बहुत खर्चीला होने लगा व उसमें पशुबलि का प्रयोग किया जाने लगा तब त्रुटियों को दूर करने के लिये बौद्ध व जैन धर्म का प्रार्दूभाव हुआ डॉ. निगम ने दक्षिण भारत से आलवार संतों द्वारा भक्ति धारा प्रवाहित होने की बात कही अनेक संतों ने विभिन्न संप्रदायों की स्थापना की व साहित्य रचना द्वारा अपने सिद्धांतों का प्रचार व प्रसार किया।

कार्यक्रम की प्रथम सत्र के मुख्य वक्ता डॉ. संदीप अवस्थी शोध निर्देशक, भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान) ने अपने उद्बोधन में बताया भारत का दर्शन कपिल के सांख्य दर्शन से प्रारंभ होता है जिन्होंने सतो, रजो व तमो गुणों की चर्चा की व उन्हें संयमित व निर्देशित करने का उपाय बताया व कैसे तमो गुण व रजो गुण का परिमार्जन कर हम सतो गुणों को प्राप्त कर सकते है व बताया शंकराचार्य ने कैसे वेदांत में मनुष्य में उस परब्रम्हा का अंश स्वीकार किया है व बताया मनुष्य माया के वशीभूत हो अपना मूल अस्तित्व भूल गया है।

मुख्य वक्ता आचार्य डॉ. महेशचंद्र शर्मा, बहुभाषाविद्, शिक्षाविद्, लेखक, इस्पात नगरी, भिलाई (छ.ग.) ने भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव विषय पर अपने वक्तव्य में कहा कवि, मनीषी और ऋषि ईश्वरत्व को भी प्राप्त हो जाते है राम

कथाकार भगवान शिव और गीताकार भगवान श्री कृष्ण भी कवि है, वस्तुतः कवि संत और ऋषि भी प्रायः एक ही है। चिन्तन मनन और आत्मदर्शन के पश्चात् काव्य सर्जना वस्तुतः दार्शनिक पृष्टभूमि पर ही होती है इसलिये कवि और दार्शनिक में कोई विशेष अंतर नहीं है।

डॉ. रजनी सिन्हा विभागाध्यक्ष दर्शनशास्त्र, निर्देशक एम.जे. स्वशासी महाविद्यालय, जलगांव, महाराष्ट्र ने अपने सत्र अध्यक्षीय उद्‌बोधन में पढ़े गये शोध पत्रों की समीक्षा की व शोध पत्र की विशेषताओं व त्रुटियों को अवगत कराया व बताया दर्शन शास्त्र समस्त विषयों की जननी है उन्होंने अस्तिक, नास्तिक व संत किसे कहते है पर विचार व्यक्त किया।

इस सत्र में डॉ. अभिनेश जैन भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव – आचार्य विद्यासागर श्री महाराज द्वारा रचित महाकाव्य मूक माटी के परिप्रेक्ष्य में भारतीय दर्शन में मनुष्य के जीवन और मरण के नित्य कार्य को समझाने के लिए अनेकानेक सिद्धांत कहे–सुने गए। कभी तो मन भी यह मानने तैयार नहीं होता कि सृष्टि का रचयिता सूक्ष्म रूप में रहकर सृष्टि कैसे रच सकता है ? माना कि दुग्ध में नवनीत और घृत समाहित है परंतु मंथनोपरांत ये उपादान पुनः दुग्ध में परिवर्तित नहीं हो सकते। 'मूकमाटी' में ये सिद्धांत तो मानने में कोई बुराई नहीं है। क्योंकि जब हम ये कहें कि जगत में कर्म बंधन ही जीवन यात्रा के उच्च–निम्न सोपान या संस्तरण निर्धारक बनते हैं।,

डॉ. राजेश श्रीवास्तव ने तुलसी के अयोध्या काण्ड दृष्टिगत जीवन मूल्य ने अपने अनुसंधान मूलक शोध पत्र पढ़े अयोध्याकांड को मानस का हृदय–स्थल कहा जाता है। इसमें रामकथा के विविध पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक,सांस्कृतिक पहलुओं को व्यक्त किया गया है। हृदय तो अनके प्रकार के भावों, संवेगों और उद्वेगों का रंगमंच है और भावों के उत्थान–पतन का अह्र्निष व्यापार वहॉ अप्रतिहत गति से चलता है। अयोध्याकांड की कथा का प्रारंभ जनकपुर से विवाह के बाद राम सहित चारों भाईयों का पत्नियों सहित लौटकर अयोध्या में निवास करने से होता है। राम तद्‌युगीन समाज के उच्चादर्शो को साकार करते है।

द्वितीय सत्र में विषय प्रवर्तक डॉ. रजनी सिन्हा विभागाध्यक्ष दर्शनशास्त्र, निर्देशक एम.जे. स्वशासी महाविद्यालय, जलगांव, महाराष्ट्र ने सत्र विषय पर प्रकाश डालते हुये कहा कि अलग–अलग संतों ने आस्तिक, नास्तिक, एकेश्वरवाद तथा योग की परिकल्पना की लेकिन सभी का सार सगुण या निर्गुण बम्ह्रा ही है एवं सभी संत प्रत्येक मानव को कर्म प्रधान कार्य करते हुये दूसरों को पीड़ा ना पहुचांने की बात कही है।

सत्र वक्ता आचार्य डॉ. महेशचंद्र शर्मा थे जिन्होंने भारतीय संत साहित्यः मानवता दर्शन की प्रासंगिकता विषय पर अपने विचार व्यक्त किए व बताया सरस्वती के दो तट ज्ञानियों व कवियों के हैं, ज्ञान गंगा रूपी सरस्वती नदी के एक तट पर अमृत है जिसे काव्य रस कहते है तो दूसरे तट पर नीम रस का प्रवाह है पर कड़वा होने के बावजूद औषधि के समान लाभप्रद है।

अध्यक्षता डॉ. शोभा निगम, पूर्व विभागाध्यक्षता, छ.ग. महाविद्यालय, रायपुर ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा कि शोध पत्रों के निष्कर्ष के पश्चात् कहा कि मनुष्य मरता क्यों है क्या अमर हुआ जा सकता है इन्ही प्रश्नों के साथ दर्शन प्रारंभ होता है हमारा मूल दार्शनिक सिद्धांत है मनुष्य का शरीर मरता है पर आत्मा तो अमर है हम मृत्यु पर शरीर के लिए रोते है आत्मा के लिए नहीं वह तो अविनाशी है। उन्होंने नचीकेता की कथा के माध्यम से श्रेय और प्रेय क्या को विस्तार से समझाया।

श्रीमती हेमलता सिरदार 'संत कबीर दास जी के काव्य का साहित्य व समाज पर प्रभाव पत्र में भक्ति आन्दोलन भारतीय इतिहास में एक ऐसी सांस्कृतिक घटना के रूप में देखा जाता है जिसने तीन सौ वर्षो तक भारतीय जीवन को अनुप्राणित किया। कबीर ने भक्ति और प्रेम को मानवीय मूल्यों मे सर्वोपरि बतलाया है। उनकी भक्ति केवल भाव नहीं है कर्म भी है को समझाया'

डॉ. श्रीमती मोहना सुशांत पण्डित 'भारतीय दर्शन एवं महिला समानता' पर अपना शोध पत्र में भारतीय दर्शन का अध्ययन किया जाए तो यह ज्ञात होता है की भारत में महिला शिक्षा का इतिहास प्राचीन वैदिक काल से जुड़ा हुआ है। वैदिक अवधारणा के स्त्री शक्ति सिद्धांत के अनुसार, महिलाओं की देवी के रूप में पूजा शुरू हुई– उदाहरण के लिये शिक्षा की देवी सरस्वती। विषमताएँ तो सर्वत्र विद्यमान है कहीं प्रकृति जनित तो कहीं मानवजनित आवश्यकता तो है बस मानवजनित विषमताओं के उन्मूलन की एवं साथ ही देश–काल निरपेक्ष सिद्धांतों की खोज कर उन्हें आरोपित करने से बचने की।

दूसरे दिन तृतीय सत्र में विषय प्रवर्तक डॉ. जे.आर. सोनी, महासचिव, गुरु घासीदास साहित्य अकादमी रायपुर छत्तीसगढ़ ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि संतों की रचानावों में उनका दर्शन स्वतः ही अभिव्यकत हो जाता है।

मुख्य वक्ता डॉ. आर.पी. अग्रवाल, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य कल्याण महाविद्यालय भिलाई छ.ग. ने कहा सभी दर्शनों के मूल में दुख है और यही दुख सुख की ओर ले जाता है अगर राम राजा बन कर रह जाते तो कोई प्रसिद्धि नहीं मिलती 14 वर्ष वनवास गए वहां तकलीफ से गुजरे उसी दुख ने उन्हें पुरुषोत्तम राम बना दिया। तुलसी ने रामचरितमानस के माध्यम से

राजा, सेवक, भाई, पत्नी का आदर्श चरित्र लोगों के सामने रखा राम वन गए तभी श्री राम बना गये।

दूसरे दिन तुकेश कुमार बर्मन आधुनिक शिक्षा के परिपेक्ष में गौतम बुध के दार्शनिक चिंतन की भूमिका बुद्व के द्वारा महामंगल सुत्त में एक देवता को उपदेश देते हुए कहा गया है जिसके अंर्तगत बुद्व की शिक्षा का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है। बुद्व महामंगल सुत्त में मनुष्य और मनुष्यत्तर जीवों को उपदेश देते है–''मनुष्य और देवताओं (मनुष्य का विशिष्ठ वर्ग) को बहुश्रुत होना चाहिए, शिल्पी सीखनी चाहिए विनयशील एवं सुशिक्षित होना चाहिए।

लोकेश्वर प्रसाद सिन्हा– संत काव्य में दलित चेतना राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य–धारा में राष्ट्रीयता की व्यापक पृष्ठभूमि को निभाते हुए दलित वर्ग का चित्रण गहरी सहानुभूति एवं तीव्रता के साथ हुआ है। छायावादी काव्यधारा मे अपने सामाजिक और ऐतिहासिक जीवन की अभिव्यक्ति है, पीड़त और दलितों के अत्यधिक करीब रहे हैं।

डॉ. शैलजा पवार– स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन एवं नारी समानता दर्शन और शिक्षा शब्दों के अर्थ को देखा जाए तो यह निश्चित हो जायेगा कि ये दोनों विचार उसी तरह एक ही वस्तु के विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। दर्शन और शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं दर्शन का संबंध ज्ञान से है और दर्शन ज्ञान को व्यक्त करता है। दर्शन, प्रकृति, व्यक्तियों, वस्तुओं तथा उनके लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के बारे में निरंतर विचार करता है।

डॉ. शमा ए. बेग छत्तीसगढ़ संस्कृति पर आधारित गुरु घासीदास का वैज्ञानिक दर्शन पर अपना शोध पत्र पढा गुरू घासीदास की शिक्षाओं का भाव पंथी गीत में बिल्कुल स्पष्ट और मुखरित होता है वे कहते है कि हे ईश्वर तेरी आराधना में कैसे करू क्योंकि दूध को बछड़े ने अन्न को कीड़े ने, पानी को मछली ने झूठा कर दिया है, यहॉ तक कि सूरज और चन्द्रमा को भी राहु केतु ने निगल लिया है इसलिए हे ईश्वर इन झूठी वस्तुओं, कर्मकाण्डो का त्याग कर मैं अपने हृदय के पवित्र भाव से जो शुद्ध है, आपको अर्पित करता हूँ।

सत्र की अध्यक्षता डॉ. संदीप अवस्थी ने किया वह संतों के दार्शनिक चिंतन पर प्रकाश डालते हुए कहा आप घर के दायित्वों को पूरा करते हुए भी योगी बन सकते हैं। सच्चा गुरु कभी परिवार का त्याग करने की बात नहीं करते, परिवार में रहते हुए ईश्वर आराधना पर बल देते हैं।

चतुर्थ सत्र में विषय प्रवर्तन करते हुये डॉ. सरला शर्मा ने कहा आज विज्ञान का युग है सब तकनीकी पर आधारित हैं भौतिक संसाधनों में चारों ओर दुख निराशा स्पर्धा की भावना बढ़ती जा रहे हैं तब दर्शन का महत्व बढ़ता जा रहा है। भारतीय दर्शन दुखः पर आधारित नहीं है अपितु सत, चित आनंद पर आधारित है इसलिए ईश्वर को सच्चिदानंद कहा जाता है और यही आनंद स्वरूप परबम्ह की प्राप्ति ही दर्शन है।

मुख्य वक्ता डॉ. जे.आर. सोनी, महासचिव, गुरु घासीदास साहित्य अकादमी रायपुर छत्तीसगढ़ ने किया और गुरु घासीदास का चिंतन एवं अन्य संतों का दार्शनिक चिंतन पर अपने विचार व्यक्त करते हुए, कहा गुरु घासीदास छत्तीसगढ़ में सतनामी संप्रदाय के प्रणेता है उन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों सोचने की भावना व कर्मकांड को दूर करने का प्रयास किया और सतनाम पंथ की स्थापना की जिसका मूल सिद्धांत था सच्चा नाम।

चतुर्थ सत्र की अध्यक्षता करते हुये डॉ. आर.पी. अग्रवाल, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य कल्याण महाविद्यालय भिलाई छ.ग. ने कहा सभी दर्शनों के मूल में दूखः है और दुखः ही सुख की ओर ले जाता है। ईश्वर के प्रति अपनी धारणा को लेकर दो भेद करते है– आस्तिक और नास्तिक। जो वेदों को मानता है आस्तिक और नहीं मानता वह नास्तिक है। डारविन के विकासवाद की अवधारणा में जलचर फिर उभयचर आयें तथा भारत के दशावतार की अवधारणा में पहले मतस्य अवतार फिर कच्छप अवतार माना जाता है। विकास के क्रम में सभी संतों ने यह स्वीकार किया की मानव जीवन का मूल मोक्ष है।

सत्र की विशिष्ट अतिथि प्रजापति ब्रह्मकुमारी से उपस्थित प्राची बहन ने ब्रह्म दर्शन पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा किसान जितना अच्छा बीज होता है उतना ही अच्छा फसल काटता है आप दूसरे की उपलब्धियों पर अगर ईर्ष्या करते हैं तो विचार करें आपने बीज क्या बोया था। जब हमारी ऊर्जा खत्म होती है तब वह दूसरे पर अवलंबित होती है आपसी वैमनस्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा सब में एक ही आत्मा है वह जात–पात का भेदभाव कैसा।

दो दिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी के समापन समारोह के मुख्य अतिथि पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर के कुलपति डॉ. केसरी लाल वर्मा थे कायक्रम की अध्यक्षता श्री आई.पी. मिश्रा अध्यक्ष गंगाजली शिक्षण समिति ने की। विशेष अतिथि के रुप में डॉ. दीपक शर्मा सी.ओ.ओ स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महराविद्यालय हुडको भिलाई। डॉ. महेशचंद्र शर्मा बहु–भाषाविद शिक्षाविद लेखक इस्पात नगरी भिलाई छत्तीसगढ़ डॉ. संदीप अवस्थी, शोध निर्देशक, भगवंत विश्वविद्यालय अजमेर (राजस्थान) श्रीमती सरला शर्मा वरिष्ठ साहित्यकार दुर्ग उपस्थित हुई।

प्राचार्य डॉ. श्रीमती हंसा शुक्ला ने अपने उद्‌बोधन में कहा भारतीय दर्शन का मूल सिद्धांत सत् चित आनंद है जिसे हम सच्चिदानंद स्वरूप कहते हैं। हम अच्छा देखना, सुनना चाहते हैं पर अच्छा करना नहीं चाहते अगर दूसरे की थाली में अपने से ज्यादा परसे देखते हैं तो ईर्ष्या होने लगती है रविदास, कबीर, तुलसी, स्वयंभू संत नहीं बने अपितु उनके आचरण के कारण लोगों ने उन्हें संत की उपाधि से विभूषित किया। कृष्ण और कंस राम व रावण एक राशि के होने के बावजूद दोनों के व्यवहार में अंतर है एक का व्यवहार अनुकरणीय है पर दूसरे को हम तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं।

कुलपति डॉ. केसरी लाल वर्मा ने दर्शन जैसे महत्वपूर्ण विषय पर महाविद्यालय को बधाई देते हुए कहा संतों की विचारों को जीवंत रखते हुए व उनके उद्देश्यों पर विचार कर रहे हैं यह अत्यंत प्रशंसनीय हैं आज हम समाज में एकता और समरसता व सर्वधर्म समभाव का प्रभाव देखते हैं वह भारतीय संतो के संदेशों व प्रयत्नों की देन है।

संतो ने बेहतर समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया विचारों का आदान–प्रदान व संगोष्ठी में उभरे बिंदुओं को लोगों तक पहुंचाना यही संगोष्ठी का मुख्य उद्देश्य है। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों में ज्ञान के साथ–साथ नैतिक गुणों का विकास होगा उन्होंने बताया छत्तीसगढ़ के सभी विश्वविद्यालय की नैक मूल्यांकन के लिए रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय को नोडल केंद्र बनाया गया है हम सब मिलकर कार्य करेंगे। जिससे उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सके।

श्री आई मिश्रा ने अपने अध्यक्षी उद्‌बोधन में कहा भारतीय दर्शन की मूल अवधारणा 'परहित सरिस धर्म नही भाई' पर आधारित है हमारा धर्म हमें सहिष्णुता व अन्य धर्म का आदर करना सिखाता है भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव देखना है तो हमें भक्तिकालीन साहित्य को देखना होगा।

डॉ. दीपक शर्मा ने कहा भारतीय दर्शन के मूल में आत्मा को परमात्मा का अंश माना गया है और आत्मा पुनः परमात्मा में विलिन हो जाती है तब मोक्ष की प्राप्ती होती है पर मनुष्य माया के बस में जीवन मरण के चक्र में फंसा हुआ है।

शोध संगोष्ठी में देशभर से लगभग सौ से अधिक प्राध्यापकों व शोधार्थी सम्मिलित हुये। कार्यक्रम में मंच संचालन डॉ. नीलम गांधी, विभागाध्यक्ष वाणिज्य, डॉ. शमा अ. बैग, विभागाध्यक्ष, माईक्रोबायोलॉजी ने किया व डॉ. पूनम निकुम्भ (विभागाध्यक्ष शिक्षा विभाग) ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

संयोजक

डॉ. निहारिका देवांगन

विभागाध्यक्ष वनस्पति शास्त्र,

स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय

आमदी नगर, हुडको, भिलाई (छ.ग.)

संगठन सचिव

डॉ. सुनीता वर्मा

विभागाध्यक्ष हिन्दी,

स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय

आमदी नगर, हुडको, भिलाई (छ.ग.)

INDEX

S.No.	Title	Author	Page
01.	भारतीय दर्शन का सन्त साहित्य पर प्रभाव	आचार्य डॉ. महेशचन्द्र शर्मा	01–07
02.	शांकर वेदांत आधारित सहजयोग में जीवन दर्शन संस्थापिका श्री निर्मलादेवी	डॉ. सन्दीप अवस्थी	08–11
03.	गुरु घासीदास, सतनाम दर्शन एवं लोक संस्कृति पंथी	संजीव कुमार मांजरे	12–14
04.	संतधर्म – संस्कृति, परम्परा और वर्तमान संदर्भ	डॉ. संगीता परमानंद	15–18
05.	भारतीय दर्शन एवं महिला समानता	डॉ. अभिनेष सुराना, डॉ. सरिता मिश्र	19–20
06.	संत गुरु घासीदास एवं उनका दर्शन	मनीष कुमार कुर्रे, डॉ. चन्द्रकुमार जैन	21–25
07.	आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में गौतम बुद्ध के दार्शनिक चिंतन की उपयोगिता	तुकेश कुमार, डॉ. श्रीमती प्रभा.आर.कुरुप	26–28
08.	कबीर दर्शन का व्यापकता	डॉ. प्रणु शुक्ला	29–32
09.	संत साहित्य पर आचार्य रजनीश (ओशो) का दृष्टिकोण	डॉ. स्नेहलता निर्मलकर, शाहिद हुसैन	33–35
10.	संत दर्शन का साहित्य व समाज पर प्रभाव	चैतराम यादव, डॉ. (श्रीमती) बी.एन. जागृत	36–38
11.	कबीर का दर्शनिक विचारधारा	डॉ. कल्पना मौर्य	39–40
12.	भारतीय दर्शन में संत साहित्य का प्रभाव (संत घासीदास एवं सतनाम धर्म के विशेष सन्दर्भ में)	कु. चन्द्रप्रभा महिश्वर, डॉ. सपना शर्मा 'सारस्वत'	41–44
13.	भारतीय दर्शन में समता का संदेश	डॉ. अभिनेष सुराना, डॉ. सरिता मिश्र	45–46
14.	भारत में दलित एवं वंचित साहित्य संत परंपरा के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. आंचल श्रीवास्तव	47–48
15.	भारतीय दर्शन एवं नारी समानता	डॉ. श्रद्धा हिरकने	49–52
16.	भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव : आचार्य विद्यासागर जी महाराज द्वारा रचित महाकाव्य 'मूकमाटी' के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. अभिनेष जैन	53–57
17.	संत काव्य में दलित चेतना	डॉ. लोकेश्वर प्रसाद सिन्हा	58–61
18.	कबीर दर्शन का समाज पर प्रभाव	श्रीमती मंजू कनौजिया	62–64
19.	भारतीय दर्शन एवं महिला समानता	डॉ. (श्रीमती) मोहना सुशांत पंडित	65–67
20.	भारतीय संत साहित्य : ''सूरदास जी की भक्ति भावना का दार्शनिक आधार''	नाजनीन बेग	68–70
21.	कबीर साहित्य में सामाजिक दर्शन	डॉ. हंसा शुक्ला	71–74

S.No.	Title	Author	Page
22.	तुलसी के अयोध्याकांड में दृष्टिगत जीवन–मूल्य	डॉ. राजेश श्रीवास, डॉ. राजेश्वरी चंद्राकर	75–77
23.	भारतीय दर्शन का संत गुरुघासीदास के वैज्ञानिक दर्शन पर प्रभाव	डॉ. शमा अफरोज बेग, डॉ. स्वाती पाण्डेय	78–79
24.	संत साहित्य में दर्शन शास्त्र का प्रभाव	डॉ. रेखा दुबे	80–83
25.	बुल्ले शाह और वेदांत दर्शन का साम्य	डॉ. सुनीता अवस्थी	84–86
26.	छत्तीसगढ़ की लोकसंस्कृति एवं गुरूघासीदास का दार्शनिक प्रभाव	डॉ. गुरप्रीत कौर छाबड़ा	87–90
27.	स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन एवं नारी समानता	श्रीमति शैलजा पवार	91–92
28.	कबीरदासजी के दर्शन का साहित्य और समाज पर प्रभाव	डिलेश्वरी साहू	93–96
29.	भारतीय संत साहित्य : मानवतावादी दर्शन की प्रासंगिकता	रेणुका साहू	97–101
30.	भारतीय दर्शन में संत साहित्य का प्रभाव : बौद्ध दर्शन के परिपेक्ष्य में	रेश्मी महिश्वर, डॉ. हंसा शुक्ला	102–104
31.	भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव	श्रीमती मंजू साहू, डॉ. के. नागमणी	105–107
32.	हिंदी संत साहित्य का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य : कबीर के काव्य के संदर्भ में	कु. प्रियंका यादव	108–111
33.	भारतीय आध्यात्मिक दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव	डॉ. कंचन शर्मा	112–115
34.	संत कबीर दास जी के काव्य का साहित्य व समाज प्रभाव	श्रीमती हेमलता सिदार	116–119

भारतीय दर्शन का सन्त साहित्य पर प्रभाव

आचार्य डॉ. महेशचन्द्र शर्मा
बहुभाषाविद्, शिक्षाविद् एवं लेखक,
इस्पात नगरी, भिलाई (छ.ग.)

शोधालेख सार :–

श्रुतिस्मृतिपुराणानाम्, आलयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम्।।

जगद्गुरु भारतवर्ष स्वयं तो अपने नाम के अनुरूप प्रतिभा में रत् हैही, पूरे विश्व में भी वह ज्ञान–विज्ञान की वर्षा करता है। भारतीय वाङ्मय में दर्शन और साहित्य एक ही ज्ञान गंगा के दो तट हैं। साहित्य भी तो ज्ञान राशि का ही संचित कोष है। दार्शनिक कवि मनीषी, परिभू और स्वयम्भू भी कहे गये हैं। मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक इन दर्शनों की चिन्तनधारा से काव्य, विशेष रूप से सन्त साहित्य प्रभावित है। पूजा, कर्मकाण्ड, भक्ति, उपासना, ध्यान–योग और खण्डन–मण्डन आदि की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर ही सन्त साहित्य पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ है। जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य अद्वैत वेदान्तियों में सर्वाधिक सम्मानित एवं लोकप्रिय हैं। उन्होंने भी श्रीराम, कृष्ण, शिव एवं दुर्गा आदि देवगण पर बड़ी ही भक्ति परक और गीतिमय स्तुतियाँ रचीं। आने वाले समय में भक्तगण और सन्तकवि उनसे पर्याप्त प्रभावित हुये। सूर, तुलसी एवं कबीर आदि के निर्गुण, सगुण, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैताद्वैत परक भक्तिपूर्ण रचनाओं और रहस्यवाद को भी इस परम्परा से प्रेरणा मिली।

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि और महर्षि वेदव्यासजी जो कि दार्शनिक भी हैं और सन्त भी हैं। पूरे भक्तिकालीन और परवर्ती सन्त साहित्य को प्रभावित करते हैं। रामायण के साथ महाभारत एवं श्रीमद्भागवत पुराण पूरे भारतीय साहित्य के उपजीव्य हैं। ये वे स्रोत हैं, जहाँ से समूची काव्य सर्जना प्रेरणा और पुष्टि प्राप्त करती है।

परवर्ती काव्य के माध्यम से समाज के चिन्तन–मनन में एकता का और समानता की भावना का संचार करने में दर्शन, विशेष रूप से वेदान्त दर्शन की बड़ी भूमिका है। श्रीमद्भगवद्गीता में समता मूलक दर्शन के अनेक प्रामाणिक उदाहरण प्राप्त होते हैं। यही नहीं सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अस्तेय आदि पंचरत्न इसी दर्शनिक परम्परा से निकलकर भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर तथा महात्मा गान्धी जी तक जाते हैं। मनुष्य की जन्म से नहीं कर्म से महत्ता हमारी पष्ठभूमि में है। गोस्वामी तुलसी एवं सन्त कबीर आदि ने जातीय उच्चता और निम्नता का प्रामाणिक खण्डन भी किया, किन्तु दुर्भाग्य है कि कई बाहरी और आन्तरिक भ्रमों के कारण से साहित्य को दर्पण मानते हुये भी समाज में वह सुधार न हो सका, जिसकी अपेक्षा थी। इस लघु शोधालेख में इन्हीं सत्प्रेरक विचारों को प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है–

यह धारा अब तक बरस सहस्रों बीत गये,
आँखों के आगे आती है धर रूप नये।
वह कभी शंकराचार्य,
कभी नानक, कबीर, वह कभी विवेकानन्द,
कभी है रवि ठाकुर।।

प्रतिभा में रत भारत की कल्पना, बिना वेद, रामायण, महाभारत, गीता एवं दर्शन शास्त्र के नहीं की जा सकती। देश का प्राचीन और सार्थक नाम भारतवर्ष भी है। क्योंकि यह ज्ञान–विज्ञान की वर्षा भी पूरे विश्व में करता है। हमारा देश वस्तुतः जगद्गुरु है। ईश्वर, जीव, जगत्, बन्धन, मोक्ष, जीवन्मुक्ति, माया और ब्रह्म आदि तत्त्वों की व्याख्या करने वाले शास्त्र को दर्शन या दर्शन शास्त्र कहते हैं। इसे उक्त विषयों का अन्तर्दशन भी कहते हैं। वस्तुतः कवि, मनीषी और ऋषि ईश्वरत्व को भी प्राप्त हो जाते हैं। रामकथाकार भगवान् शिव और गीताकार भगवान् श्रीकृष्ण भी कवि हैं। वस्तुतः कवि, सन्त और ऋषि भी प्रायः एक ही हैं, इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। चिन्तन, मनन और आत्मदर्शन के पश्चात् काव्यसर्जना वस्तुतः दार्शनिक पृष्ठभूमि पर ही होती है। इसलिये कवि और दार्शनिक में कोई विशेष अन्तर नहीं है। कहा गया है–**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।**

सांख्य दर्शन के अनुसार दुःख के स्थायी रूप से सम्पूर्ण विनाश के लिये दर्शन को सक्षम माना गया। वेदों से प्रेरित षड्दर्शन–मीमांसा–वेदान्त, सांख्य–योग और न्याय–वैशेषिक आदि प्रसिद्ध हैं। महर्षि जैमिनि, महर्षि व्यास, जगद्गुरु आद्य

शंकराचार्य, महर्षि पतंजलि, महर्षि कपिल, महर्षि गौतम और महर्षि कणाद आदि के सूत्रों एवं व्याख्याओं का प्रभाव हम सन्त कवि गण, कबीर, तुलसी, सूर, रहीम और मीरा बाई आदि के साहित्य पर देख सकते हैं। भक्ति, पूजा, कर्मकाण्ड, अर्चना, उपासना, ध्यान, योग और खण्डन–मण्डन आदि में उक्त दर्शनाचार्यों से सन्त कवि गण ने प्रेरणा ली है।

हमारी सरस्वती गंगा के दो तट इन्हीं ज्ञानियों एवं कवियों के है। ज्ञान गंगा रूपी सरस्वती नदी के एक तट पर अमृत जैसा काव्य रस है, तो दूसरे तट पर नीम के रस का प्रवाह है। स्पष्ट है कि केवल ज्ञान कुछ कठोर या कसैला (कड़वा भी) हो सकता है, किन्तु वह भी औषधि के समान आरामदायक होता है, क्योंकि नीम को समस्त रोगों का निवारक भी कहा गया है–**सर्वरोगहरो निम्बः–**

कवित्वपाण्डित्यतटद्वयेन सरस्वती सिन्धुरिव प्रवृत्ता।
एकत्र पीयूषमयो रस स्याद् अन्यत्र निम्बात्मकमस्ति वारि।।

भगवान् जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य जी का पर्याप्त प्रभाव सूर, तुलसी एवं कबीर पर दिखायी देता है। यद्यपि वे अद्वैत वेदान्ती हैं, तथापि उन्होंने राम, कृष्ण, शिव एवं दुर्गा आदि देवगण पर बड़ी भक्ति भावना परक स्तुतियों की रचना कीं, जिससे सन्तकवियों ने उनसे प्रेरणा ली। इस प्रसंग में वे वस्तुतः सर्वाधिक प्रणम्य हैं –

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम्।।
श्लोकार्धेन, प्रवक्ष्यामि यद्गणितं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रहमसत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।।

आद्य शंकराचार्य जी वेद, स्मृति एवं पुराणों तथा करुणा के आगार हैं। वे लोक कल्याणकर्त्ता हैं। जो करोड़ों ग्रन्थों में नहीं कहा जा सका, वह तथ्य उन्होंने आधे श्लोक में कह दिया। ब्रह्म ही सत्य, संसार मिथ्या है, तो जीव कौन है? वे कहते हैं वह ब्रह्म ही है। संत कवियों को इनसे बड़ी प्रेरणा मिली। गोस्वामी तुलसी दास जी लिखते हैं –

कोऊ कह झूठ, सत्य कह कोऊ,
जुगल प्रबल करि माने ।
'तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम,
सो आपन पहँचाने ।।

द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत मतों की पृष्ठभूमि भी यहीं है। सन्त कवि सूरदास और सन्त कबीर को भी वेदान्त से प्रेरणा मिली है। आगे चलकर निर्गुण और सगुण भक्ति में निराकार और साकार ईश्वर के भावनात्मक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।

सत् और असत् के विवेक से सम्पन्न व्यक्तित्व ही सन्त कहलाते हैं। सन्तगण स्वयम्प्रकाश होते हैं। वे दूसरों के गुणों को ही प्रकाशित करते हैं। साधु–सन्तों का चरित कपास की तरह होता है। वे नीरस किन्तु गुणवान् होते हैं। अनेक दुःखों को सहकर भी दूसरों के दोषों को छिपाते हैं। रामचरित मानस में भगवान् श्रीराम जी सन्तों के उनगुणों के बारे में बताते हैं, जिनके कारण वे उनके वश में रहते हैं। सन्तजन काम, क्रोधादि और छः विकारों से रहित, निष्पाप और निष्काम होते हैं। उनका ज्ञान असीमित किन्तु भोग सीमित होता है। सत्य के ज्ञाता सन्त कवि, कोविद और योगी भी होते हैं। भले ही वे अपनी प्रशंसा सुनने में संकोच करते हैं, किन्तु दूसरों की तारीफ करते कभी नहीं थकते। भारत की भक्त, कवि, दार्शनिक और सन्त परम्परा बहुत पुरानी है। संस्कृति सरस्वती की ये सरिता अनादि अनन्त है –

[1]यह धारा अबतक बरस सहस्रों बीत गये,
आँखों के आगे आती है, धर रूप नये।
है कभी शंकराचार्य, कभी नानक, कबीर,
वह कभी विवेकानन्द, कभी है रवि ठाकुर।।
फिर कभी गूँजने लगती है बनकर,
गान्धी का गौरव स्वर।।

वस्तुतः रामायण, महाभारत एवं श्रीमद्भागवत महापुरण हिन्दी साहित्य समेत पूरे भारतीय काव्य के उपजीव्य ग्रन्थ हैं। भक्ति, दर्शन और काव्य के सन्दर्भ में सबने इनसे प्रेरणा ली है। महाकवि सूरदास के सूर सागर में भागवत पुराण की ही भाँति 12 स्कन्धों में श्रीकृष्ण लीला का वर्णन है। दार्शनिकता का अर्थ है जीवन और जगत् के पारमार्थिक स्वरूप तथा मानव जीवन

के चरम लक्ष्य का चिन्तन मनन और साक्षात्कार। आध्यात्मिक दर्षष्टिकोण को लेकर चलने वाले कवि को भी दार्शनिक माना जाता है। सूरदास जी कहते हैं शरीर नश्वर है, मरने के बाद ये यूँही पड़ा रह जायगा। जलने पर चुट्की भर राख शेष रह जायगी –

या देही को ग़रब न करिये, स्यार काग गिध खैहें।

वे कहते हैं–कि भक्ति और हरिस्मरण के बिना मानव शरीर का कोई मूल्य नहीं –

क्यों तू गोविन्द नाम बिसारौ।

अज हूँ चेति भजनकरि हरिकौ, काल फिरत सिर ऊपर कारो।।

सूर माया के विद्या और अविद्या दो रूप बताते हैं, माया बड़ा विचित्र शब्द है। इसका शब्दार्थ हैं– 'जो नहीं है–फिर भी है।' वह नारी के रूप में शक्ति बताते हैं। वो लाठी लेकर जीव को नचाती है। उधर कबीर कहते हैं–'माया महाठगिनि हम जानी।' उधर तुलसी कहते हैं–भक्त को ये परेशान नहीं करती ज्यादा। भक्ति भी स्त्री है, माया भी स्त्री है। एक स्त्री से दूसरी स्त्री कैसे मोहित होगी? गोस्वामी जी लिखते हें– **मोहे न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह चलित अनूपा।।**

हाँ ज्ञानी इससे परेशान रहता है। ज्ञान पुरुष है न, तो माया प्रभावित करेगी। परमज्ञानी नारद और विश्वमोहि का प्रसंग हम सब जानते ही हैं। सूरदास जी सांख्य दर्शन से भी प्रभावित हैं। वे द्वैत–अद्वैत की भी चर्चा करते हैं–

प्रकृति–पुरुष एक हिं कर जानहु, बातनि भेद करायौ।

....

द्वैत न जीव एक हम दोऊ, सुख कारन उपजायो।

ब्रह्म रूप द्वितीया नहिं कोऊ, तब मनतिया जनायो।।

यहाँ कृष्ण–गोपी अनन्यता या अद्वैत भाव दृष्टव्य है। उनके "भ्रमरगीत" को देखें मथुरा में श्रीकृष्ण जब गोपियों को याद करते तो उद्धव उन्हें तत्त्व ज्ञान देते थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें गोपियों के पास भेजना ज़रूरी समझा। परम ज्ञानी उद्धव को प्रेम का महत्त्व जानने का परोक्ष अमोघ उपाय है ये। गोपियाँ उद्धव से पूछती हैं–

[2]निरगुन कौन देश को वासी?

मधुकर! हँसि समुझाय सोंहदे बूझत साँच न हाँसी।

कोहै जनक? जननि को कहियत? कौन नारि, को दासी?

कैसो बरन भेस है कैसो? केहिं रस में अभिलाषी?

[3]ऊधौ मन न भये दस बीस,

एकु हतो ते गयो स्याम सँग को आराधे ईस?

....

बो मथुरा काजरि की कोठरि जे आवें ते कारे।

तुमकारे जसुमति सुत कारे, कार भँवर भँवारे।।

दर्शन–धर्म के प्रतीकों से इधर सन्त कबीर भी पर्याप्त प्रभावित हैं :–

भारतीय दर्शन भक्ति और अध्यात्म के माध्यम से कबीर को प्रभावित करता है। साथ ही दर्शनशास्त्र के पंच तत्त्वों,–आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पर्षथिवी आदि के प्रतीक भी उनके काव्य में आये हैं। साथ ही भक्ति के दाम्पत्य प्रतीक देखते ही बनते हैं–

"दुलहिन गावो मंगलचार,

हमारे घर आये राजा राम भरतार,

तन रति करि कैं मन रति करिहौं,

पाँचों तत्त्व बराती।

राम देव मोहि ब्याहन आये,

मैं जोवन मद माती।।"

परमात्मा प्रियतम के प्रति कबीर की विरहिणी आत्मा एक आदर्श प्रेमिका की प्रतीक है –

आँखिड़ियाँ झाईं पडीं, पन्थ निहारि–निहारि।
जीभडियाँ छाला पड़या राम पुकारि–पुकारि।।

कहीं भक्ति को वात्सल्य भाव से व्यक्त करते हैं– **हरि जननी मैं बालक तोरा**

मृत्यु तो सुनिश्चित ही है –

पानी केरा बुद बुदा अस मानस की जाति।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात।।

कबीर की उलट बाँसियों में भी दर्शन है– 5 ज्ञानेन्द्रियाँ 5 कर्मेन्द्रियाँ गाय है, मन सिंह है जो उन्हें सम्भालता है, चराता है, चलाता है। यहाँ मन को हम गोस्वामी भी कह सकते हैं– **"एक अचम्भा देखा रे भाई ठाड़ा सिंह चराबे गाई"**

उनका रहस्यवाद अद्भुत है। उनके रहस्यवाद में अद्वैत वेदान्त और सूफीमत का गंगा–जमुनी संगम है। इस सन्दर्भ में उन्होंने कई प्रयोग किये। उन्होंने परमात्मा के प्रेम को गूँगे का गुड़ कहा, उसे अवर्णनीय बताया–

अकथ कहानी प्रेम की कछू कही न जाइ।
गूँगे केरी सरकरा बैठी ही मुस्काय।।

उनका रहस्यवाद वस्तुतः सर्वात्मवादमूलक है। इसमें माधुर्य मिलने से वह पूर्णता को प्राप्त होता है। वे ब्रह्म की प्राप्ति में प्रेम या भक्ति को अचूक साधन मानते हैं। हरिभक्ति का नशा देखें –

"हरि रस पीया जानिये, जे कहुँ न जाइ खुमार ।
मैमन्ता घूमत है, नहीं तन की सार।।"
"पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनन्त।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कन्त।।"

उनका यौगिक रहस्यवाद, अद्वैत वेदान्त दृष्टव्य है –

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, भीतर बाहर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तथ्य कहयौ ज्ञानी।।

सूफियों के साथ नारद भक्ति सूत्र का भी कबीर पर प्रभाव है।

मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान् एकता–समानता, सत्य, अहिंसा (करुणा) :–

भारतीय दर्शन और संस्कृति के प्रेम, दया, अहिंसा, करूणा और समता के दर्शन भी सन्त साहित्य में हमें पदे–पदे मिलते हैं। वैदिक साहित्य से लेकर बुद्ध महावीर और महात्मा गान्धी के दर्शन, चिन्तन और सन्दर्भित साहित्य में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह आदि "पंचरत्न" माने गये हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी के मानस में– 'धरमु न दूसर सत्य समाना।' तथा 'नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि समय होहिं कि कोटिक गुंजा।' आदि पंक्तियों से सत्य की महत्ता स्पष्ट है। वैदिक साहित्य की परम्परा हमारे सन्त काव्य में भी बखूबी दिखाई देती है।[4] वैदिक साहित्य का एक वाक्य बहुत प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय है–सत्यमेव जयते, परन्तु ये पूरा वाक्य नहीं है। इसके अन्त में एक शब्द और आता है नानृतम्, तब पूरा वाक्य बनता हैं–"सत्यमेव जयते नानृतम्"। तब अर्थ बनता है–सत्य की ही जीत होती है–अनृत की नहीं। भारतीय दार्शनिक संस्कृति में 'ऋतम्' का अर्थ होता है शाश्वत, सनातन और मर्यादा आदि। इनमें भी सभी सत्य ही है। 'ऋतम्भरा' शब्द भी इसी से बना है। 07 निषिद्ध, कार्यों की सीमाओं से बचना ही है–मर्यादा या ऋतम्। ये लक्ष्मण रेखायें हैं–हिंसा, चौर्य, व्यभिचार, मद्यपान, द्यूत, असत्य भाषा एवं पापी दुष्टों का अनुगमन। ये ही हैं 'अन्ऋतम्' इनकी जीत नहीं होती है। वैदिक साहित्य में इन्हीं का उल्लेख है– [5]सप्तमर्यादाः कवयस्ततक्षुः। सूर, कबीर, तुलसी और महात्मा गान्धी के चिन्तन, दर्शन और रचनाओं में ये विचार गंगा स्पष्ट देखी जा सकती है। वस्तुतः हमारा साहित्य सत्यं शिवं सुन्दरम् है। अद्वैत वेदान्त, शंकराचार्य, श्रीमद्भगवद्गीता, सन्त कबीर, सूरदास, गोस्वामी तुलसी और महात्मा गान्धी जी में समता और एकता के दर्शन होते हैं। केवल मनुष्यों में नहीं अपितु प्राणीमात्र में समानता और एकता की बात कही गयी है –

[6]विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैन श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

अर्थात् पण्डित तो वह है जो विद्या और विनय से सम्पन्न विद्वान् ब्राह्मण में, गाय में, हाथी में, कुत्ते में और उसको मार के खाने वाले में समनता देखता है। सबको एक मानता है। भेद नहीं करता। छत्तीसगढ़ के हमारे सन्त गुरु बाबा घासीदास जी भी तो इसी भावना को इन शब्दों में कहते हैं– **"मनखे मनखे एक समान"**

उधर महामुनि वेदव्यास जी की दृढ़ मान्यता है कि– सत्य, दम और धर्म में सतत संलग्न शूद्र को भी मैं ब्राह्मण मानता हूँ। क्योंकि सच्चरित्रता ही ब्राह्मणत्व की कसौटी है। किसी जाति विशेष में जन्म लेने से कुछ नहीं होता। पितृ वंश निरर्थक है। मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान् होता है। लोग वसुदेव को नहीं वासुदेव को नमस्कार करते हैं–

[7]यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये, वृत्तेन हि भवेद्विजः।।

उधर गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–

तुलसी भगत सुपच भलो, भजे रैन दिन राम ।
ऊंचो कुल केहिं काम को जहाँ न हरि को नाम।।

इधर शबरी के राम–

जाति पाँति कुल धरम बढ़ाई। धन बल परिजन कुल चतुराई।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मान हुँ एक भगति कर नाता।।

राम और कृष्ण द्वारा नारी सशक्तीकरण के उदाहरण भी हैं अहल्या, द्रौपदी आदि रामायण एवं महाभारत आदि में देखे जा सकते है। निषाद के प्रसंग को देखें, रामचरित मानस में–

कपटी कामी कुटिल कुजाती। लोक बेद बाहर सब भॉती।
एहिं सम नीच निपट कोऊ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम कोऊ जगमाहीं।
राम सखा ऋषि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत सनेह समेटा।।

स्वयं तुलसी दास जी अपने उदाहरण से जातीय आधार को नकारते प्रतीत होते हैं–

जायो कुल मंगनि के बधावन बजागो सुनि।
भयो परिताप जननी जनक कों।
बारे ते ललात बिललात द्वार–द्वार दीन जान,
चारिफल चारि ही चनक को।।
धूत कहो अवधूत कहो, रजमूत कहो, जुलहा कहो कोऊ,
काहू की बेटी से बेटा बिहाव न, काहू की जाति बिगारन कोऊ।

..... और महात्मा कबीर–सन्त कबीर का भी यह भी मत है कि वे जातीय श्रेष्ठता में विश्वास नहीं करते –

एक ज्योति के सब जग उपजा,
को बामन को सूदा?
जो बामन तू ब्राह्मनी जाया,
आन राह हमें क्यों नहि आया?
जो तू तुरक तुरकनी जाया,
आन राह ह्वै क्यों नहिं आया?

जाति जुलाहा नाम कबीरा,
बनि बिन फिरों उदासी।

तननां बुननां तज्या कबीर,

राम नाम लिख लिया सरीर।।
हरि को नाम अभय पद दाता,
कहै कबीरा कोरी।।

अद्वैत दर्शन, एकता परोपकार और समानता की है हमारी पृष्ठभूमि –

रामायण–महाभारत आदि वैदिक साहित्य से सीधे जुड़े हैं। वेद और प्रचेता ऋषि से अभिन्न हैं आदि कवि महर्षि वाल्मीकि। वेद महासागर हैं तो महाभारत चन्द्रमा हैं। इसे पंचम वेद भी कहा जाता है। महर्षि कष्ण द्वैपायन महामुनि वेदव्यास ने कहा है कि– यन्न भारते तन्न भारते अर्थात् जो महाभारत में नहीं है, वह भारत में भी कही नहीं है। अर्थात् महाभारत में सब कुछ है। उधर रामचरितमानस के बालकाण्डीय मङ्गलाचरण में तुलसीदास जी घोषित करते हैं –

[8]नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामयणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसीरघुनाथगाथा भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।।

निष्कर्ष :–

अभी इस पूरी पृष्ठभूमि पर हमने देखा है कि कहीं जातीय विद्वेष या ऊँच–नीच की बात भारतीय दर्शन प्रेरित सन्त साहित्य में नहीं हैं। एकता और समानता की बात पूरी प्रामाणिकता के साथ कही गयी है। "परहित सरिस धरमुनहि भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।" अभी हम पढ़ते हैं जानते है। हमारी सांस्कषतिक पष्ठभूमि में गहराई से ये बीज मन्त्र के रूप में हमारी धरोहर हैं। भारतीय दर्शन और सन्तों की महती परम्परा का ससम्मान हमें पालन करना चाहिये। परन्तु अब ये एकता और समानता कहाँ गयी? ये चिन्तन, मनन और लेखन की बात है–

राम बालों को मुसलमाँ से बू आती है,
मुसलमान को भी भगवान् से बूआती है।
तेरे सिज़दे का वक्त है किसको?
यहाँ तो इंसान को इंसान से बू आती है।

जाति पाँति से बड़ा धर्म है, धर्म ध्यान से बड़ा कर्म है,
कर्मकाण्ड से बड़ा यहाँ एक छोटा–सा इंसान है।
वही यदि यहाँ हिल मिलकर रहे तो धरती स्वर्ग समान है।

ये झगड़े ये बखेड़े मेंटकर आपस में मिल जाओ।
ये तफरीह के अक्स हैं, तुममें हिन्दू औ मुसलमाँ की।
[9]यं शैवाः समुपासते शिवतया, देवीति शक्त्यर्चकाः ;
बौद्धाः बुद्ध इति प्रभुर्विभुरिति, ज्यूरिव्रस्तमार्गानुगाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः, अल्लेति मुस्लिम्मताः ;
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं ब्रह्मात्मरूपो हरिः।।
[10]देहुरा मसीति सोई, पूजा औ नमाज़ सोई ;
मानस सभै एक पै, अनेक को प्रभाउ है।
अलह अभेक सोई, पुरान और कुरान सोई ;
एक ही स्वरूप सब एक ही बनाव है।।

..... और अन्ततः –

मोहब्बत धर्म हो जाये, बफ़ा ईमान होजाये ।
अब दिल को इतना फैलायें कि वो हिन्दोस्तान होजाये।।

सन्दर्भ निर्देश :–

1. 'गान्धी पंचशती' – पं. भवानी प्रसाद मिश्र।
2. भ्रमरगीतसार – सम्पादक आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल जी।
3. भ्रमरगीतसार – सम्पादक आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल जी।
4. माण्डूक्योपनिषद् – 3–1–6।
5. ऋग्वेद – 10–5–6।
6. श्रीमद्भगवद्गीता– पञ्चम अध्याय–श्लोक 18।
7. महाभारत – वनपर्व 216/14–15।
8. रामचरित मानस–बालकाण्ड–मंगलाचरण–श्लोक 7।
9. प्रो. अशोक अक्लुज़कर, आचार्य एवं अध्यक्ष भारत विद्या। (इण्डोलॉजी) विभाग, ब्रिटिश कोलम्बिया यूनिवर्सिटी कनाडा।
10. श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज – सबद।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

वाल्मीकीय रामायण (महर्षि वाल्मीकि), महाभारत (महर्षि वेदव्यास), श्रीमद्भागवत महापुराण (महर्षि वेदव्यास), कबीर ग्रन्थावली, सूरसागर (महाकवि सूरदास), रामचरित मानस (गोस्वामी तुलसीदास) एवं 'खान खाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत' (प्रताप कुमार मिश्र)

शांकर वेदांत आधारित सहजयोग में जीवन दर्शन संस्थापिका श्री निर्मलादेवी

डॉ. सन्दीप अवस्थी,
मानद पीएचडी हिंदी, वरिष्ठ साहित्यकार एवं मीडिया विशेषज्ञ,
भगवंत विश्वविद्यालय, अजमेर

वर्तमान समय एक वैशिष्ट्य लिए हुए है। यह तर्क और आस्था, लैपटॉप और माथे पर चंदन, आधुनिकता और संग संग चलती हमारी प्राचीनता, धर्म और व्यवहारिकता, सवाल उठाना और जवाब न मिलना, हर सप्ताहांत धार्मिक स्थल जाना और संस्कार भूल जाना, माता पिता को दूर रखना और वृद्धाश्रम में सेवाए देना आदि विरोधाभासो को रोज अपने आसपास होते देखने का है। जहां लोक सीमित हो गया है और अलोक यानी सोशल साइट्स आदि असीमित। जहां आस्था और विचार को शने शने खत्म किया जा रहा हो तो ऐसे समय मे ही सबसे अधिक जरूरत होती है लोक संत, लोक साहित्य की। जो बिल्कुल हमारे मध्य से ही उतपन्न होता है और हमारे समस्याओं बाधाओं का समाधान करता है। लगभग सभी लोक संत चाहे वह तुकाराम, आदिगुरु दतात्रेय, रैदास, मीरां, सूर, तुलसी, ख्वाजा मोइनुद्दीन चिस्ती, हजरत निजामुद्दीन औलिया हो या मध्यकाल के बाद के जाम्भो जी, बाबा रामदेव (योग गुरु नही), हडबू जी, गुरु गोरखनाथ, समर्थ गुरु रामदास, एकनाथ आदि प्राचीन से लेकर 20 वी सदी तक रहे। मुख्यतः यह लोक में व्याप्त कुरीतियों, यथा असमानताओं, भेदभाव, महामारियों, वैमनस्य आदि के मिटाने पर जोर देते। इसके साथ ही इनका मुख्य स्वर होता अपने मध्य में ही, अपने कर्म से ही अपने जींवन को संवारने का। धार्मिक आडम्बरो, प्रथाओं से यह लोगो को सहजता से मुक्त करके यह सिखाते की परस्पर प्रेम, सद्भाव और वर्तमान में जीना ही ईश्वर की आराधना है। ईश्वर हमसे दूर या बाहर नही बल्कि हमारे ही अंदर है,मानवमात्र की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।

वेदांत की विचारधारा से तारतम्यता सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म जीवो ब्रह्मैव नापरः (3/4/8 ऋग्वेद)
अर्थात् सत्य, ज्ञान से युक्त ब्रह्म अनंत सत्ता है और वही सत्ता जीव में है। जीव ही ब्रह्म है।
एक उद्धरण उपनिषद का देखे, ''सर्वम खलु इदं ब्रह्म.....''(छान्दोग्य उपनिषद 1/14/1)

वह आत्मा सूर्य रूप होकर पृथ्वीलोक में निवास करता है। वही मनुष्यो में आत्मरूप में अवस्तिथ है। वह सर्वव्यापी है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि फिर यह सब हम जान क्यो नही पाते??हम इस ज्ञान से वंचित क्यो रहते हैं? इसका उत्तर इशास्योपनिषद की यह सूक्ति देती है,''हिरीनमयेन पात्रेण सत्यस्यहपिहितममुखम ''।

यह आवरण है अविद्या का । जिसके कारण सत्य हमारे सामने सदियो से अप्रकट रहा। इसी अविद्या रूपी अंधकार से हमे निकालने और सत्य की राह पर चलाने के लिए लोक में समय समय पर संत हुए। जिन्होंने जनजागरण का कार्य बखूबी किया। पशुओं, पर्यावरण सरंक्षण, पाबूजी, जाम्भो जी, कुरीतिओं पर सीधी चोट, कबीर, रैदास, रहीम और राजा को राह दिखाने जैसे कार्य लोक संत करते रहे। भागवत की एक उक्ति अबधुत भरत ने कही, ''अयं जनों नाम चलन पृथ्वियां स्यात पार्थिवरूपार्थिव कस्य हेतोः। ..... (श्रीमद्भगवत 5/12.5/7) अर्थात् हे राजा धरती पर बाकी लोगो की तरह तू भी चल रहा है।तू राजा और बाकी लोग मजदूर कैसे ? ...इस तरह आमजीवन लोकवाणी को स्वर देने का कार्य यह लोक संत करते रहे।

यह वास्तव में गहन जिज्ञासा का विषय है कि इनको वेद पुराण भागवत आदि प्राचीन ग्रन्थों का ज्ञान कैसे था? क्या उनकी भाषा आदि को यह नितांत अपढ़ पढ़ लेते थे? इसका सहज सरल उत्तर यह है कि वेद उपनिषद्, भागवत, दर्शन वास्तव में मानव मात्र के आध्यत्मिक, आत्मिक विकास की ही बात करते हैं। अंधकार से ज्ञान के मार्ग की ओर ले जाते हैं।वही कार्य यह लोक संत करते हैं।

सहजयोग संस्थापिका श्री माताजी निर्मला देवी ने वेद आधारित और श्री आदि शंकराचार्य की एकोस्मि, ब्रह्म ही जीव है, सलिलं सलिलम चेतन्य लहरियों के प्रवाह से सत्तर के दशक से यह आमजनमानस में यह प्रवाह बताना प्रारम्भ किया। चूंकि यह आधुनिक युग है जहां तर्कणा और स्वकीय से ही बात प्रमाणित होती है तो कठिन कार्य था। साथ ही कर्मकांडो से परेशान हो उसे खारिज कर चुकी पीढ़ी थी। इन सबके मध्य सहजजयोग को लेकर जब श्री माताजी मात्र 9 लोगो के साथ आगे बढ़ी तो पंचतन्मात्रो और सूक्ष्म शरीर के ऊर्जा केंद्रों (यह वेद में भी वर्णित है) के जाग्रति की अनुभूति उन्होंने करवाकर दिखा दी। जी हाँ, सलिलम, सलिलम की चेतन्य लहरियां आने लगी हर खास और आम को। इस तरह अपनी स्व की शक्ति से परिचय कराया श्री माताजी ने। जो चीज लोक, समाज के हर वर्ग ने जानी और मानी वह पूर्णतः अद्वेतवाद की रही। वह थी आत्मसाक्षात्कार, (Self realisation), यानी श्री माताजी ने स्वेम का गुरु बनने की प्रक्रिया जन जन को बताई और उस पर चलने का मार्ग। यही सहजयोग से करोड़ो लोगो को जोड़ता है।

वर्तमान 20वी सदी का परिदृश्य :–

हर कालखण्ड की अपनी चुनौतियाँ और आवश्यकता होती है। फिर जिस समय पूरा विश्व करवट ले चुका हो, परिवर्तनगामी शक्तियां सक्रिय हो, आस्थावान होने पर आप कूपमंडूक, ऑर्थोडॉक्स आदि से व्यंग्यात्मक रूप से पुकारे जाएं। और तो और तेजी से फैलती संचार क्रांति, वैश्विक गावँ की अवधारणा पांव जमाती जा रही हो तो ऐसे में लोक देवता, लोक सन्तो का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ। अब सिर्फ आस्था की बात नही रही बल्कि उसके साथ तार्किकता आ गई। रीति रिवाजों के बन्धन नरम पड़े तो शिक्षा ने हमे हर चीज पर तर्क करने के योग्य बनाया। लोकतंत्र ने हमे अधिक जागरूक किया तो कुरीतिओं से भी बाहर निकाला (हालांकि अभी भी कुछ जगह कुरीतियां हैं)। तो ऐसे समय मे क्या लोग चिंतामुक्त हो गए? क्या अब लोक को सन्तो की आवयश्यक्ता नही रही? क्या हमारी समस्याओं का निदान हुआ? बिल्कुल नही बल्कि नया युग नई सदी नई समस्याएं लेकर आई। ऐसी समस्याएं जिनके बारे में हमारे पूर्वजों, ज्यादा दूर नही आपके दादा दादी या नाना नानी, ने कभी सोचा भी नही था। उनके मध्य में पिसती मानवता, अकेला होता लाचार मानव। तब आवयश्यक्ता महसूस हुई वापस वैदिक ज्ञान की, स्व की शक्ति को जाग्रत करने की।

सहजयोग और वेदांत की समानता :–

सहजयोग, ''सह'' अर्थात साथ और ''ज'' माने जन्मा हुआ। यानी हम सबके जन्म से ही जुड़ा हुआ योग ही सहजयोग है। यह हर बच्चे में जन्म से ही ईश्वरप्रदत्त शक्ति होती है। इसकी अनुभूति निरन्तर 12 से 14 वर्ष की अवस्था तक हम सभी को महसूस होती है। यह दरअसल अद्वेत वेदांत की विचारधारा की तरह से अहम ब्रह्मिस्म, अयमात्मा ब्रह्म (माण्डूक्य उपनिषद), की तरह ही है। जिसे हम योग्य ज्ञान के अभाव में धीरे धीरे भूलते जाते हैं। और जब हम माया अथवा जगतजाल में उलझकर अपना मूल स्वरूप भूल जाते हैं तो हम नानाविध दुखो में घिर जाते हैं। शेष सारा जीवन और आने वाले कई जन्म इसी भवचक्र से निकलने में ही चले जाते हैं। इससे मानवमात्र को निकालने और उसके मूलस्वरूप से स्वपरिचय कराने के लिए ही सहजयोग की स्थापना 5 मई 1970 को नारगोल गुजरात मे श्री निर्मला देवी द्वारा की गई। उस समय मात्र 9 साधकों से प्रारम्भ हुआ सहजयोग आज 160 से अधिक देशों में करोड़ो अनुयायिओं तक विस्तृत है। भारत मे हर शहर, कस्बे में सहजयोग के निशुल्क साप्ताहिक केंद्र है। जहां लगभग 2 करोड़ से अधिक हर धर्म के लोग ध्यान करते हैं (चेतन्य लहरी, अंक 4, 2012)। और यह वर्ष 2020 सहजयोग का 50 वाँ, गोल्डनजुब्ली वर्ष है। वास्तव में सहजयोग की इस विलक्षण लोकप्रियता का कारण क्या है? आज के नवउदारवादी समय मे जब लोग धार्मिक स्थलों से दूर भाग रहे है और आस्थाएं टूट रही हैं, वही सहजयोग को मानने वाले साधकों की संख्या बढ़ती जा रही है।

इसका सीधा सा कारण है तार्किक होना, अंध्विश्वास और रूढ़ियों से मुक्ति। साथ ही स्व की शक्ति से परिचय करवाना और उसकी जाग्रति का प्रत्यक्ष प्रमाण करवाना। यही बाते रही जो लोक में आज सहजयोग किसी भी पंथ से अधिक माना जाने वाला मार्ग है।

सहजयोग की जनक श्री माताजी निर्मलादेवी :–

परमपूजनीय श्री माता निर्मलादेवी का जन्म छिंदवाड़ा के शालिवाहन राजवंश में 21 मार्च 1923 को प्रसादराव साल्वे और कोशिला जाधव परिवार में हुआ। इस दिन रात और दिन बराबर बराबर समय के होते हैं। आप प्रारम्भ से ही मेधावान रहीं। आपने गांधी जी के साथ स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया। 1947 में आपका विवाह पबे अधिकारी श्री चंद्रिका प्रसाद श्रीवास्तव के साथ हुआ। वह कालांतर में तत्कालीन प्रधानमंत्री शास्त्री जी के सचिव रहे। अर्थात् परिवार पूर्णतः सुखसुविध ाा से परिपूर्ण था। कोई जरूरत नही थी गावँ गावँ जाने और लोक में जाकर लोगो को जाग्रत करने की। परन्तु आप कल्पना करे बैलगाड़ी से लेकर मीलों पैदल पैदल चलकर युवा निर्मलादेवी, एक शक्तिशाली भारतीय प्रशाशनिक सेवा के अधिकारी की पत्नी ने लोक और लोक से जुड़े आम जनसाधारण के मध्य उन्ही की भाषा मे संवाद किया, उनकी बाते सुनी समझीं। यह महसूस किया कि अधिकांश सभी अपना मूल स्वरूप भूले हुए है और नानाविध कष्ट से घिरे नारकीय, यन्त्रणापूर्ण जींवन जीने और मर जाने को अभिशप्त हैं। उनके मध्य जड़ जमा चुकी कुरीतियों, धार्मिक आस्था को ठेस पहुंचाए बिना उन्हें कुंडलिनी शक्ति, वेदो में वर्णित 7चक्र (मदमतहल बमदजमते), 3 नाड़ियों से परिचित करवाना आसान नही था। अकेली इन्होंने बरसो बरस उनके मध्य कार्य किया। कुंडलिनी शक्ति के जागरण के प्रत्यक्ष अनुभवः करा उनसे लोगो को स्व का गुरु, (अहम ब्रह्मिस्म, उपनिषद) की अनुभूति करवा उससे उनकी बाधाओं को दूर करना बताया। तबसे लेकर आज 50 साल होंने को आए सहजयोग एक प्रत्यक्ष पूर्णतः वेद आधारित पद्धति के रूप में करोड़ो दिलो में स्थापित है।

समकालीन लोक की समस्याएं और सहज योग से समाधान :–

वर्तमान युग बदलाव का, आपाधापी भरी जिंदगी, टूटते रिश्ते, बढ़ते दबाव और अकेले छूटते इंसान के अनसुलझी

समस्याओं से घिरे हुए नानाविध प्रकार की बीमारियों से उलझते, घुटते हुए जीने की मजबूरी का समय रहा। ऐसे समय मे लोक अपने पूर्ववती सन्तो की तरह, जब शिक्षा, तकनीक का विकास नही था और सिर्फ सिर्फ आस्था थी, की तरह तो खड़ा या कनकवत दंडवत तो नही हो सकता। क्योंकि तकनीक, शिक्षा और बढ़ते संसाधन, सिमटता विश्व हमे अंधश्रद्धा भक्ति से दूर ही रखता है। ऐसे विषम समय मे जहां सन्देह और तर्क पर ही बात हो, (डेकार्ट ने भी कहा मैं सोचता हूँ इसीलिए मैं हूँ, (I think therefore I exist) वहाँ लोक को अपनी शक्ति से, (सेल्फ पावर) से भी परिचित करवाना एक बेहद मुश्किल कार्य होता है। पर यह असंभव कार्य तर्क और हर प्रश्न का युक्तिसंगत जवाब देकर माताजी ने सहजयोग को स्थापित किया।जन जन तक पहुंचाया। आत्म साक्षात्कार की पद्धति से सैंकड़ो से हजारो और करोड़ो लोगो को पार कराया। यानी स्व की कुंडलिनी शक्ति से परिचित करवाया। लोक और लोक के हर वर्ग ने आपकी बताए मार्ग पर चलकर वह शक्ति अपने अंदर महसूस की ,उससे अपनी समस्याएं हल होती पाई तो लोक ने नाम दिया ''परम् पूजनीय माता श्री निर्मला देवी''। (sahajyoga .Org)

मुख्यतः हमारे शरीर के सातों चक्रों (energy centers) और इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना 3 नाड़ियों की जागृति से श्री माताजी ने सभी की उस सुषुप्त शक्ति को जाग्रत कर दिया। और साथ ही साथ अनुभूति भी कराने का महती कार्य किया। वह 7 चक्र जिनके बारे में हममें से अधिकांश नही जानते। और अज्ञानतावश हम गलत सलत समाधान करते रहे। आपने तर्क सहित बताया कि इस समस्या का यह केंद्र है और यह हल है। उसे हल भी करके तत्क्षण बताया और उसकी सामूहिक भी और व्यक्तिगत स्तर पर भी अनुभूति करवाई। लोक तर्क आधारित बातो से अधिक व्यवहारिक अनुभवः (practical experience) से अपने को जोड़ता गया और सहजयोग पूरे भारत ही नही विश्व मे स्थापित होता गया। क्योकि श्री माताजी यह विश्वस्तर पर समझाने में सफल रही कि मानव मात्र भारत का ही नही कहीं का भी हो 7 चक्र और 3 नाड़ियां उसमे होंगी ही होंगी। तो विदेशी लोगो की भी समस्याएं सफलतापूर्वक हल हुई। तभी 2 वैश्विक नगरों फिलाडेल्फिया में 15 अक्टूबर, सिनसिनाटी में 18 सितंबर को माता निर्मलादेवी दिन मनाते हैं। और समस्त समस्याओं के समाधान उसी में निहित हैं। यह सर्वबाधा हारिणी छवि के साथ साथ स्व गुरु बनने की बात करने वाली आप पहलीं और एकमात्र लोक गुरु, (लोक देवी,यह इनके करोड़ो अनुयायियों ने इन्हें माना) है, जो खुद कहती रही हर बार की यह वेद आधारित ज्ञान को सरलतम रूप में जन जन तक पहुंचाने के लिए ही मैंने जन्म लिया और अपार साधना की। इसे आप सभी जानलो और अपना लो तो फिर आप स्व के गुरु बन जाएंगे। फिर आपको किसी भी स्थल या व्यक्ति या मन्दिर मस्जिदों में दर दर भटकने की आवयश्यक्ता नही। वह परमात्मा की शक्ति आपके ही अंदर है उसकी जाग्रति करके प्रतिदिन अपने घर पर ही कुछ देर सुबह और शाम ध्यान करके उसे निरंतर चेतन्य लहरियों (cool breeze) के रूप में अपनी हथेलियों और सस्त्रार पर महसूस करे। साथ ही सामूहिकता यानी ध्यान केंद्रों में सप्ताह में एक बार जाकर अपने ध्यान स्तर को महसूस करेंऔर बढ़ाये। सभी ध्यान के स्थल निशुल्क स्तर पर सहकारिता के माध्यम से चलते हैं। आप अपने शहर, कस्बे के आसपास मात्र देखेंगे तो आपको जरूर सहजयोग केंद्र मिल जाएगा।

प्रमुख स्थान, और लोक सेवा के कार्य :–

लोक और मानवमात्र की ध्यान धारणा के लिए श्री माताजी ने अपने निजी संपत्ति (आप राजघराने से रहीं) तक को पूर्णतः आम सहजयोग करने वाले साधकों के लिए समर्पित कर दिया। विश्व निर्मल धर्म ट्रस्ट और राष्ट्रीय सहजयोग ट्रस्ट के तहत अरबो की संपत्ति आपने मानवमात्र के लिए दान करदी। प्रमुख है पुणे में दकं रोड पर निर्मल प्रतिष्ठान, छिंदवाड़ा में जन्मस्थली, नारगोल केंद्र, गुड़गावं में निर्मलधाम, कुतुब एरिया दिल्ली में नेशनल केन्द्र। इसके साथ नांदगावं, जिला मालेगांव स्थित रिसर्च सेंटर, जो मुख्यतः किसानों के मध्य और कई घातक बीमारियों के लिए कार्यरत है। यह गरीब बच्चों को निःशुल्क किताबे, पानी के अभाव वाले गाँवो में निःशुल्क पानी टैंकर, वृक्षरोपण आदि कार्य कर रहे हैं। इन ट्रस्ट के ट्रस्टी आम सहजयोगी ही हैं। कोई भी आपके परिवार का सदस्य इसका करता धर्ता नही। और यह भी श्री माताजी बरसो बरस करके सिखाई की यह ट्रस्ट के लोग भी लोकतांत्रिक ढंग से हर 3 वर्ष बाद बदले जाए और नए लोग आए। साथ ही मानवमात्र के भले और उसकी आध्यत्मिक जागरूकता के लिए आपने कई सामाजिक केंद्र स्थापित किए (सोर्स श्री माता निर्मलादेवी दीपावली पूजा पुस्तक, 2017)। नोएडा में विधवा, लाचार महिलाओ के लिए विश्व निर्मलप्रेम आश्रम, जिसमे सिलाई से लेकर कम्प्यूटर आदि रोजगारोन्मुखी कार्य निशुल्क आवासीय सुविधा के साथ सिखाए जाते हैं। हिमाचलप्रदेश के शहर धर्मशाला में अंतरराष्ट्रीय सहजयोग विद्यालय, जहां भारतीय संस्कृति, वैदिक और सहजयोग के साथ शिक्षा दी जाती है गुरुकुल की तरह। और यह गर्व की बात है कि वहां 1000 से अधिक आवासीय बच्चे हैं,जो 20 से अधिक देशों के हैं।वहाँ विदेशी बच्चा भारतीय संकृति से अध्ययन करता है। साथ ही बेलापुर, वाशी, बइक में निशुल्क सहजयोग अस्पताल है। जहाँ सहज पदृति और चेतन्यलहरिओ के माद्यम से असाध्य बीमारियों की चिक्तिसा सफकतापूर्वक की जाती है। और इलाज का

कोई शुल्क नही लिया जाता। वहां अमेरिकन डॉक्टर, एम्स दिल्ली के डॉक्टर्स अपनी जॉब छोड़कर सेवाएं दे रहे हैं। क्योकि वह श्री माताजी निर्मलादेवी के बताए स्व जागरण के मार्ग पर चलकर अपने अन्य देशवासियो की पीड़ा दूर करने के लिए सहयोग कर रहे हैं (सोर्स www.sahajyog.com)।

कौनसा इंसान है जो सहजयोगी नही हैं? हम सभी सहजयोगी है क्योकि हर एक मे, चाहे वह हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख हो, उसमे परमात्मा प्रदत शक्ति जन्म से ही निहित है। बस अपनी शक्ति को पहचानने और आत्मसाक्षात्कार करने की जरूरत है।

सहजयोग से कैसे जुड़ें? यह इतना सरल है जितना सांस लेना, जितना विचार का प्रवाह, जितना भरी हुई सरिता में नीर प्रवाह। बस आपको शुद्ध इच्छा करनी है और वास्तव में आप अपने आसपास चेतन्य लहरियों के प्रवाह से सहजयोग केंद्र पा जाएंगे। और किसी भी केंद्र, दहव, हॉस्पिटल आदि में प्रवेश के लिए बस एक ही योग्यता है कि आपका मानवता में विश्वास हो,बस आप सब सहजयोग के विश्वव्यापी केंद्रों स्थलों में जाने के अधिकारी हैं। यही एक सच्चे संत, गुरु की पहचान है कि वह आपको आत्म साक्षात्कार करवा आपके अंदर स्तिथ ब्रह्म से मिलवाकर राह दिखाता है। यह बताता है कि वास्तव में सारे समाधान हमारे ही पास हैं।

श्री माताजी निर्मलादेवी आज साकार रूप में हमारे मध्य नही है परन्तु उनके दौरा स्थापित हजारो केंद्र और करोड़ो सहजयोगी उनके बताए रास्ते पर चलकर अपने स्व को पाकर अब मानवमात्र को सहजयोग के माध्यम से अपना और लोक कल्याण का मार्ग बताने का महती कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

श्री माताजी निर्मलादेवी कहती हैं, "No body is going to go to hell,if they don't want to go. The time has come.You are going to be blessed and blessed forever." (Shree mata nirmala devi speech on heart chkra, delhi,1983).

सन्दर्भ सूची :–

1. शंकराचार्य, लेखक t m p महादेवन, द्वितीय संस्करण 1990।
2. ऋग्वेद, अनुवाद स्वामी एस सरस्वती, गीता प्रेस, गोरखपुर,9/108/8व।
3. वृहदानयक उपनिषद भाष्य, गीता प्रेस, 3/7/3।
4. ईशावास्योपनिषद, भाष्य, पृष्ठ 23।
5. चेतन्य लहरी, 3 ,वर्ष 2010, nitl पुणे प्रकाशन।
6. निर्मल सुरभि, श्री माता निर्मला देवी नेशनल ट्रस्ट दिल्ली, प्रकाशन।
7. यूट्यूब वेबसाइट www.sahajyoga.com.

गुरु घासीदास, सतनाम दर्शन एवं लोक संस्कृति पंथी

संजीव कुमार मांजरे, पीएचडी शोधार्थी
सेंटर फॉर सोसाइटी एण्ड डेवलपमेंट
गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर

शोध सार :–

प्रस्तुत शोध पत्र छत्तीसगढ़ के संत गुरु घासीदास का मानवतावादी सतनामी दर्शन एवं लोक संस्कृति पंथी से संबंधित है। यह अध्ययन विशेष कर सतनामी दर्शन की अवधारणा पर आधारित है जिस के रास्ते संपूर्ण जीवों को कि सभांति लाभ पहुंचता है। तथा मानव अपने दैनिक जीवन में किस तरह परिवर्तन ला कर लाभांवित हुए हैं। साथ ही लोक चेतना तथा सतनामी दर्शन से संबंधित लोक संस्कृति पंथी किस भांति समाज में जागरूकता लाने तथा व्यावहारिक ज्ञान सिखाने का काम करता है। जिससे सामाजिक भाईचारा, सत्य–अहिंसा, षांति एवं प्रेम का स्तर मजबूत हो सके। सतनामी दर्शन एवं पंथी इन दोनों ज्ञान के विषयों में अध्ययन को केंद्रित करते हुए आगे बढ़ाया गया है। तथा यह भी समझने का प्रयास किया गया है कि गुरु घासीदास के दर्शन एवं लोक संस्कृति पंथी सर्व समाज को किस तरह से प्रभावित एवं लाभांवित करने में सफल हुए थे। यह शोध पत्र द्वितियक स्त्रोतों पर आधारित है।

सार शब्द :–

गुरु घासीदास, सतनामी दर्शन, लोक संस्कृति पंथी, छत्तीसगढ़

प्रस्तावना :–

गुरु घासीदास के बिना सतनामी समाज, सतनामी दर्शन एवं लोक संस्कृति पंथी का कल्पना भी नहीं किया जा सकता है। सतनामी दर्शन एवं लोक संस्कृति पंथी का मूलगुरु घासीदास का संघर्ष, सिद्धांत एवं दृष्टिकोण ही वास्तविक है। या यूँ कहा जाए किस तनामी दर्शन की सारी अवधारणा गुरु घासीदास के सतनामी आंदोलन से प्रेरित है। उनके एक समान समाज निर्माण का सकारात्मक दृष्टिकोण बहुत अधिक प्रभावकारी रहा है। उनके इसी दृष्टिकोण से बहुसंख्यक लोग इतने अधिक प्रभावित हुए कि पहली बार छत्तीसगढ़ में जातियों के बेड़ियों को तोड़ कर सतनामी सिद्धांत के बयार में खुद पड़ेथे। और गुरु घासीदास 'मनखे–मनखे एक बरोबरआय' के सिद्धान्त को धरातल पर क्रियान्वित करने का काम किया है। यह तरीका इतना अधिक कारगर साबित हुआ कि देखते ही देखते सतनामियों की बेतहाशा बढ़ोत्तरी होने लगी। इसका मूल कारण यह था कि इसमें मानवीय मूल्यों के तहत सामाजिक रूप में सबको समान स्थान मिल रहा थां तो वहीँ सामाजिक भेदभाव जैसी कुरीतियों से छुटकारा भी मिल रहाथा। एक तरह से देखा जाए तो यह वंचितों के लिए किसी नई आजादी से कोई कम नहीं था। यही वह वजह है जिस के कारण लोग अपने सामाजिक मुक्ति के लिए सतनामी आंदोलन में कूदपड़े।

यह इस लिए भी बहुत प्रभावकारी एवं जरुरी था क्योंकि यह अहिंसा एवं शांति के साथ–साथ सत्य पथ पर गतिमान था। इससे यहाँ आने वाले नागरिकों के लिए किसी भी तरह का जोखिम नहीं था। जहाँ सतनामी दर्शन के माध्यम से समस्त आमजन में सत्य–अहिंसा, भाईचारा, समानता, प्रेम, दया की विचारधारा प्रवाहित किया जा रहा था। इससे निश्चित ही इनके अगुवा के लिए खतरा मंडराने लगा था। क्योंकि, उन्होंने सत्य–अहिंसा के रास्ते चलने के साथ ही मनुवादी विचार धारावालों एवं उनके एकाधिकार के लिए नुकसानप्रद था। उन्होंने कहा, 'मंदिरवा म काय करे ल जइबो, अपन घटहि के देव ल मनइबो'। जब मंदिर जाने से हमारी समस्याएं कम होने के बजाय बढ़ने लगे तो क्या मतलब रह जायेगा जाने के? ठीक ऐसे ही, 'पथरा के देवता संगीहालय, नईतेडोलय'. वास्तविकता में यह केवल सतनामी दर्शन का संदेश एवं अंग मात्र है। जो कहीं न कहीं हमारे मन–मस्तिष्क पर छाए अंधविश्वास के भ्रम को दूर करने का काम करता हैं। यह सब सतनामी दर्शन एव पंथी में लोकसंस्कृति के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाने का काम आज भी किया जाता है।

गुरु घासीदास एवं उनका सतनाम दर्शन :–

गुरु घासीदास का जन्म 18 दिसम्बर सन् 1756 को छत्तीसगढ़ के गिरौद नामक गाँव में मराठा शासन काल में हुआ था। इनके पिताश्री महंगूदास एवं माता का नाम अमरौतिन था। महंगूदास छोटे कृषक होने के साथ–साथ आयुर्वेद पर भी अच्छा ज्ञान रखते थे। क्यों कि, गिरौद वृहद् जंगल एवं उनके आयुर्वेदिक औषधियों से आच्छादित था। बचपन से ही पिता का प्रभाव घासीदास पर देखने को मिला था। गुरु घासीदास के तेज आयुर्वेदिक ज्ञान के कारण ही उसे चमत्कारिक पुरुष समझने लगे थे। क्योंकि, उन्होंने आयुर्वेद का उपयोग करते हुए सर्प से कांटे हुए अपने दोस्त एवं गाय को बचाया था। गुरु घासीदास का विवाह सिरपुर (बुद्ध नगरी) निवासी सफुरा से हुआ था। कालांतर में घासीदास के अद्वितीय कार्य एवं योगदान

के कारण वह जन–जन के बीच 'गुरु' के रूप में प्रसिद्धि पाई। इनके सुंदर सादा वेश–भूशा और मधुरतार्किक ओजस्वी वाणी के कारण 'संत गुरु घासीदास' कहलाया। आज छत्तीसगढ़ के साथ–साथ देष भर में गुरु घासीदास के नाम से प्रसिद्ध है। आजकल इनके गृह ग्राम गिरौद को 'गिरौदपुरी' के नाम से संबोधित किया जाने लगा है। गुरु घासीदास का सतनामी आंदोलन व्यवस्था परिवर्तन से कहीं अधिक सामाजिक व्यवस्था के नव–निर्माणकरने से था। क्योंकि, गुरु घासीदासअच्छे से समझ चुके थे कि हजारों सालों से चली आ रही मनुवादी व्यवस्था को बदल पाना इतना आसान नहीं है। जिसे लोग सुबह से शाम तक एवं से शाम से रात के सोने तक दैनिक कार्यों में अपने जीवन का अभिन्न अंग समझकर चौबीसों घंटे नाम जपते रहते हैं। इस व्यवस्था को बिना हस्तक्षेप किए समानता और भाई चारा पर आधारित सतनामी सामाजिक नव–निर्माण की शुरुआत किया। क्योंकि, मनुवादी व्यवस्था में समानता, आजादी, भाईचारा एवंन्याय की कल्पना बेनामी था। इसलिए, उन्होंने एक अलग ही समतामूलक रास्ता खोज निकाला जो मनुवादियों के द्वारा स्थापित पाखंड परंपरा का विपरी तथा। दूसरी ओर, गुरु घासीदास के सामाजिक व्यवस्था के अंदर किसी भी मानव को कभी–भी घृणा, छुआछुत जैसे सड़ी–गली दकियानूसी परंपरा के नाम परजलील होना नही पड़ेगा। इसकेलिए उन्होंने, 'मनखे–मनखे एक बरोबर' का संदेश और सिद्धांत पर जोर दिया है साथ ही 'सत्य ह मनखे के आभूशण आय' सत्य को अपने कार्य–व्यवहार में कीमती आभूषण की तरह ही संभालकर तथा जरूरत पड़ने पर ही प्रयोग करने को कहा।

वर्तमान में गुरु घासीदास के सतनामीदर्शन की क्या प्रासंगिकता है? क्यों हम उनके दर्शन के बारे में जानने की कोशिश कर रहे हैं? क्यों गुरु घासीदास के सतनामी दर्शन को अमल में लाने की आवश्यकता है? समयानुसार इन प्रश्नों के विषय में जानना एवं उन पर विचार विमर्श करना बहुत जरुरी हो गया है। तभी हम इसके दूरगामी महत्व को समझ सकेंगे। गुरु घासीदास सतनामी दर्शन के गहराइयों में इस कदर जा चुके थे कि वे समाज को पूर्णतः सत्य–अहिंसा से परिपूर्ण एवं अपराध मुक्त देखना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने कई महत्वपूर्ण संदेश दिए हैं। आज इन सतनामी संदेशो का छत्तीसगढ़ के समस्त नागरिको के साथ ही राज्य सरकार को भी इसको अमल में लाने की जरूरत है। क्योंकि, जिस प्रदेश में सदियोंपहले यहाँ सुंदर एवं सादगीपूर्ण जीवन के लिए संघर्ष किया है, उतनेही नेक एवं उत्कृष्ट विचार भी दिया है। जिस रास्ते पर चलकर हम छत्तीसगढ़ को सुंदर एवं शांतप्रदेश के रूप में आगे ला सकते हैं। क्योंकि, कुछ वर्षों में छत्तीसगढ़ के भीतर अपराध की ग्राफ और अशांति बढ़ी है। हत्या, बलात्कार, झूठ, लूट, जुआ और शराब की मामले व आदते बढ़ी है। गुरु घासीदास का संदेशप्रमुखता से इन्ही सामाजिक बुराइयों के खिलाफ रहा था। उनके कुछ संदेश है :–

1. मांस, मंदिरा, व्याभिचारी अउ जुआ के त्याग करव (इससे सामाजिक एवं पारिवारिक संबंध टूटते तथा खराब होते होते हैं)।
2. गैर–स्त्री ल माता, बहिनी अउ बेटी जानव (महिला अपराध में होने वाले मामलों में सौ प्रतिशत मुक्ति का रास्ता)।
3. सत ह मनखे के आभूषण (ओढ़ना/गहना) आय (सत्य को आभूषण की तरह हमेशा अपने मन और ह्रदय में विराजमान रखना चाहिए। इंसान की महत्त्व (वैल्यू) तब तक ही रहता है जब तक वह सत्य बोलता है)।
4. एक धुबा मारे तेनो तोरे बरोबर आय (माँ के गर्भ में पल रहे भ्रूण को नष्ट करना, हत्या करने के समान है। संभवतः गुरु घासीदास पहले व्यक्ति थे जिन्होंने आज से दो सौ वर्ष पूर्व ही भ्रूण नष्ट करने को हत्या बताया था)।
5. जीव हत्या पाप आय (किसी जीव–जंतु की हत्या करना पाप है।)
6. दान के देवैया अउ दान के लेवैया दुनो पाप आय (दान देने और लेने वाले दोनों पाप के समान है)।
7. मुरहिन् गाय के दूध ल झन पियव (मनुष्य हो अथवा जानवर, गाय को अपने बच्चे के मौत का बहुत तकलीफ रहता है, ऐसे में उनका दूध निकालना उसे अधिकाधिक तकलीफ पहुँचाने के समान होता है)।

लोकसंस्कृति पंथी :–

अर्थ एवं अवधारणा

जोंगलेकर (2000) के अनुसार, पंथी एक नृत्य का नाम है। पंथी, पक्षी का अपभ्रंष है। अर्थात् पक्षी से पंथी का बनना हो सकता है। जिस प्रकार सर्प के समान नृत्य को कोबरा नृत्य कहते हैं। यह मूलतः वाद्य यंत्रों के उतार चढ़ाव पर उनके नृत्य गति अधिक निर्भर करता है। धीमी वाद्य यंत्रोंमें धीमा और तेज में अधिक तेजी से नृत्य के साथ–साथ कुशल हैरतंगेज करतब भी दिखात`हैं। इनके प्रमुख वाद्य यंत्र, मांदर, झांझ–मंजीरा, घुंघरू, हारमोनियम एवंसीटी प्रमुख है। सीटी नृत्य स्टेप को बदलने के लिए उपयोग में लाया जाता है।

यह विशेष कर छत्तीसगढ़ में निवासरत सतनामी जाति का पारंपरिक लोक संस्कृति है। जो छत्तीसगढ़ का बहुत ही प्रसिद्ध लोकनृत्य एवं गीत हैं। इसका गायन एवं नृत्य विधा को अलग–अलग शैलियों में निर्मित किया गया है। जिसमें

प्राथमिक रूप से निर्गुणभक्ती (जोंगलेकर, 2000) तथा आजकल शौर्यविधा का भी उपयोग किया जा रहा है। पंथी के माध्यम से सतनामी अपने धार्मिक आस्था, कला संस्कृति, सत्य–अहिंसा, न्याय, ज्ञान, परोपकार, शांति, प्रेम इत्यादि को जन–जन के बीच बिखेरने का काम करते हैं। साथ ही बूरी आदतों को त्यागने का भी संदेश देते हैं। भारतीय लोक कला परिषद् के तत्वध ाान में छत्तीसगढ़ लोककला का प्रतिनिधित्व हेतु सतनामी अनुयायियों ने लोकसंस्कृति पंथी को विदेशोंमें प्रस्तुति दिया। लोक संस्कृति पंथी की ख्याति इतनी अधिक और विख्यात हुई है कि दुनिया के कई देशों में इनकी प्रस्तुति हो चुकी है। जिनमें प्रमुख रूप से–लंदन, न्यूयार्क तथा फ्रांस के भारत महोत्सव में प्रस्तुति दिया। इसके अलावा एडनबर्ग, गोयटिंग और वान में भी प्रस्तुति देकर देश और प्रदेश का नाम रोशन किया है (जोंगलेकर, 2000)।

1. काहे के दिय ना साहेब, काहे कर बाती।
   काहे के तेल जला वै गुरु जीहो।
   तनकर दिया साहेब, मनकर बाती।
   प्रेम के तेल जला वैगुरु जीहो।
2. अवंरा धवंरा पेड़ तरी धूनी लारमाए हो।
   गिरौदपुरी म जोड़ा खंभा ला गड़ाए हो।
3. आज आना होगे ग, कल जाना होगेग।
   माटी कर चोलाहर, पुराना होगे ग (जोंगलेकर, 2000)।

निष्कर्ष :–

इस शोध पत्र में गुरु घासीदास के अद्वितीय सतनामी दर्शन एवं लोक संस्कृति पंथी के माध्यम से सदियों पहले से जनहित में प्रसारित ज्ञान संदेशों का बखान किया गया है। जिसके माध्यम से समस्त छत्तीसगढ़वासियों को सुंदर, सुख–समृद्धि एवं शांति मिल सके। सभी एक साथप्रेम, भाईचारा, स्वतंत्रता एवंगरिमा के साथ जीवन निर्वहन कर सके। इसके लिए हमें अपने कार्य–व्यावहार एवं दैनिक जीवन में उस सतनामी दर्शन को अपनाने की जरूरत है। जो सबको समान दृ ष्टिकोण से देखता है और हमेशा 'मनखे–मनखे एक बरोबर' के सिद्धांत को अपनाता हैं।

संदर्भ स्रोतः–

1. सोनवानी, आई.आर. (1993), छत्तीसगढ़ के राष्ट्रीय–आंदोलन में सतनाम–पंथ का योगदान, पीएचडी थीसिस, इतिहास विभाग, पं. रविशंकर शुक्लविश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़।
2. जोंगलेकर, कमलनारायण (2000), संत गुरु घासीदास एवं सतनाम पंथ का ऐतिहासिक अध्ययन, पीएचडी थीसिस, इतिहास विभाग, पं. रविशंकर शुक्लविश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़।
3. मांजरे, एस. के. (2016), सतनामी मूवमेंट इन छत्तीसगढ़ : सोर्स ऑफ नेशनबिल्डिंग, अनपब्लिश्ड एम.फिल ड़ीसेरटेसन, सेंटर फॉर सोसाइटी एंडडेवलपमेंट, गुजरात केंद्रीय विश्विद्यालय, गांधीनगर।
4. मांजरे, एस. के. (2017), गुरु घासीदास एंड हिज फिलोसोफी : चल्लेंजिंग ब्रह्मनिस्म इन छत्तीसगढ़, स्कॉलर लीरिसर्च जर्नल फॉर इंटरडीसिपलीनरीस्टडीज।
5. मांजरे, एस. के. (2019), गुरु घासीदास एवं सामाजिकनव–निर्माण, गोंडवाना स्वदेशमासिक पत्रिका, रायपुर।
6. नैमिशराय, मोहनदास (2018), सनातनियों से सतनामीतक की यात्रा : गुरु घासीदास, संघर्श और सृजन, https://www-forwardpress-in/2018/05/snataniyo&se&satnami&tak&ki&yatra&guru&ghasidas/

संतधर्म – संस्कृति, परम्परा और वर्तमान संदर्भ

डॉ. संगीता परमानंद
N.B.-43 AB Type कॉलोनी, सी.एस.ई.बी. कोरबा (पूर्व),
जिला– कोरबा (छ.ग.)

वैविध्य में एक्य भारतीय संस्कृति का सूत्रवाक्य है। धर्म, आध्यात्म, आराधन पद्धति, पहनावा, खान–पान, रहन–सहन, वेशभूषा, आभूषण, श्रृंगार, आदर आतिथ्य, परम्पराएं, रीति–रिवाज, पर्व, उत्सव, लोक संस्कृति (लोकगीत, लोकनृत्य, लोकपर्व आदि) का सम्मिलित स्वरूप ही संस्कृति रूप में परिभाषित होता है। स्वाभाविकतया धर्म भी संस्कृति का ही एक अभिन्न कारक है। पंथो एवं तद्नुरूप धर्मानुयायियों का वैविध्य अवश्य हमारी भारतीय संस्कृति में परीलक्षीत होता है किन्तु विश्व सांस्कृतिक पटल पर सभी संस्कृति के सूत्रवाक्य को चरितार्थ करते हुए मात्र भारतीय संस्कृति का ही विशिष्ट परिचय अंकित करते है। उल्लेखनीय यानि धर्म का पंथ कोई भी हो, प्रेम सदाचार, सहिष्णुता, सत्य, अहिंसा, भाईचारा एवं न केवल मानव मात्र अपितु समस्त प्राणियों के प्रति दया, करूणाभाव यहीं सभी के मूल में निहित है। कोई भी धर्म अथवा संस्कृति कभी भी उचित अथवा अनुचित नहीं होते अपितु इस प्रकार के मानदण्डों पर इनका आंकलन ही अनुचित है। यह तो उस धर्म विशेष के अनुयाईयों की अन्य के प्रति वैचारिक भिन्नता एवं वर्चस्वता स्थापन की अशेष महत्वाकांक्षा है जो समाज एवं तद्नुरूप राष्ट्र में परस्पर वैमनस्य, धार्मिक कटुता एवं कट्टरता का अंकुरण कर उसकी छांव में स्वतः के स्वार्थ की उष्णता शांत करते है।

संत का शाब्दिक अर्थ है 'शांत'। शांत, सौम्य रहते हुए सात्विक एवं पवित्र भाव, निःस्वार्थ मन से लोक कल्याणकारी, परोपकारी कार्यो को सम्पन्न करे। नैतिक मूल्यों एवं समाज हित के आदर्शो का प्रतिस्थापन करते हुये सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों के उन्मूलन के प्रति जनजागरण, किसी भी संत जीवन के प्रमुख उद्देश्यो में से ही है। संत शब्द वैसे तो संस्कृत के ''सत'' के प्रथमा का बहुवचनान्त रूप है, जिसका अर्थ होता है सज्जन और धार्मिक व्यक्ति। हिन्दी में साधु। सुधारक के लिए यह शब्द व्यवहार में आया। संतधर्म एवं संत साहित्य हमारी संस्कृति का वैशिष्टय है। हमारी संस्कृति के अनेक अस्पृश्य एवं अपरिचित धार्मिक तथ्यों, जानकारियों, संदर्भो विषयी जानकारी के ये साहित्य ही आधार एवं प्रेरणा स्त्रोत है। कबीर, सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, कालिदास आदि द्वारा रचित साहित्य इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। लोकोपकारी संत के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह शास्त्रों, पुराणो का ज्ञाता हो, भाषाविद् हो अथवा वर्तमान ज्ञान की कसौटी जिसे हम साक्षरता के पैमाने पर मापते है, उच्च साक्षर ही हो, लोकहितकर कार्य ही संत धर्म का पैमाना एवं तद्नुरूप उसके संतत्व का मानदंड होता है। अभिव्यक्ति का माध्यम लिखित हो अथवा मौखिक, धर्मानुयाईयों की पंथस्वीकार्यता चाहे जो भी हो लोककल्याण एवं मानवतावाद की स्थापना ही संतधर्म का मुख्य तत्व कहा जा सकता है। स्वाभाविक तौर पर सगुण एवं निर्गुण दोनो ही उपासक इस श्रेणी में सम्मिलित है। कहीं कर्म की प्रधानता है तो वही अन्य भक्ति प्राधान्य। संतो की एक शाखा (सगुण उपासक) ईश्वरीय आधार की सर्वोपरिता के साथ भक्ति मार्ग द्वारा सामाजिक चैतन्य, धर्माधारित आदर्शो, नैतिक मूल्यों, संस्कारो, लोकोपयोगी परम्पराओं के संवर्धन–संगोपण एवं लिंग भेद रहित समाज के स्थापन हेतु प्रयासरत रहें वही निर्गुण उपासक इन सभी मूल्यों एवं तद्नुरूप समाज की स्थापना में कर्म को प्रधानता देते है। व्यक्ति का परिवार, कुल, घराना अथवा धर्म का वैशिष्टय अथवा उसकी सर्वस्वता की अपेक्षा ये उसके कर्मो को विशेष मानते है। इनके अनुसार सामाजिक मान्यतानुसार उच्च कुलीन व्यक्ति के कर्म भी उस स्तर तक हो सकते है जिन्हें सामाजिक दायरे में निम्न, अनुचित, हेय अथवा असामाजिक रूप में देखा जाता है। वही एक निम्न कुल में जन्मा बालक अपने सत कर्मो से सम्पूर्ण समाज के लिए श्रृद्धेय, पूजनीय, सम्मानीय एवं कालांतर में 'युगपुरूष' भी साबित होता है।

हमारी सांस्कृतिक वैविध्य रूपी धर्म संस्कृति के लगभग सभी धर्मो के संतो ने तात्कालीन समाज में गहराई से व्याप्त अंधविश्वास (धार्मिक भावनाओं, मान्यताओं एवं परम्पराओं का अतिरेक) के विरूद्ध अपने साहित्य, उपदेशों, प्रवचनों एवं सत्संग के माध्यम से जागरण का प्रयास किया। निश्चित तौर पर वे शत्–प्रतिशत न सही किन्तु अपेक्षाकृत सफल भी हुए। सतीप्रथा, बालविवाह, धार्मिक अनुष्ठानों की सम्पन्नता में वर्ग विशेष की वर्चस्वता एवं एकाधिकार, महिलाओं का धार्मिक कार्यो एवं स्थल विशेष पर प्रवेश प्रतिबंध, बलीप्रथा, महिलाओं के लिए अनिवार्य परदा प्रथा, स्त्री शिक्षा पर प्रतिबंध, विधवाओं के लिए तमाम समाजिक रूढ़िया, बहुपत्नि विवाह प्रथा जैसी अनेका–अनेक रूढ़िगत कुरीतियों का निर्मूलन तात्कालीन संतो की ही भारतीय समाज को देन कही जा सकती है। पूर्णतया शुद्ध मानवतावादी, लोककल्याणकारी, जनहितकारी, परोपकारी दृष्टिकोण रखते हुए धर्म के आधार पर भक्ति मार्ग अथवा कर्म मार्ग की राह दिखाते हुये ईश्वर भक्ति एवं कृपा प्राप्ति के सहज सरल माध यम से जनसामान्य को अवगत कराया। इन माध्यमों के द्वारा किस प्रकार एक आदर्श, नैतिक, मूल्याधारित, सतमार्गी समाज की स्थापना की जा सकती है एवं उसे चिरकाल तक स्थायी रखा जा सकता है का बोध भी कराया। भारतीय संस्कृति की

सहिष्णु प्रकृति ने उसे स्थायित्व प्रदान किया है। धर्म स्वातंत्र्य हमारी संस्कृति की विशेषता है। ''संस्कृति के लचीले स्वरूप में जब भी जड़ता की स्थिति निर्मित हुयी तब तात्कालीन संतो ने इसे गतिशीलता प्रदान कर इसकी सहिष्णुता को एक नयी आभा से मंडित कर दिया''। इस दृष्टि से प्राचीनकाल में बुद्ध और महावीर द्वारा मध्यकाल में शंकराचार्य, कबीर, गुरूनानक और चैतन्य महाप्रभु के माध्यम से तथा आधुनिक काल में स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद एवं महात्मा ज्योतिबा फूले आदि के द्वारा किये गये प्रयास इस संस्कृति की महत्वपूर्ण धरोहर बन गये।

''तुलसीदास जी के अनुसार संत, काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी विकारो से परे होते है। जप, तप, व्रत और संयम संत जीवन का आधार होते है। श्रृद्धा, मैत्री, मुदिता, दया आदि श्रेष्ठ गुण उनके हृदय में सदैव विद्यमान रहते है। संत हृदय मोम के समान होता है। उनकी करूणा हिमालय सदृश होती है जो पिघल–पिघल कर अगणित धाराओं के रूप में प्रवाहित होती है''। यही धाराएँ आगे चलकर संत परम्परा बनी। ''संत परम्परा का प्रारंभिक युग (सं 1200 से 1550) संत जयदेव से संत धन्ना भगत तक का है''। इस युग के संतो ने अपने उपदेशों का प्रचार स्वतंत्र रूप से किया। इस युग के प्रमुख संतो में नामदेव, कबीरदास एवं रैदास की गणना होती है। ''मध्य युग में संत युग को दो भागो में बांटा जा सकता है। पूर्वाद्ध (सं. 1550–1770) जिसमें संत गुरूनानक देव, दादूदयाल, मूलकदास एवं तुलसीदास जी है। इसके उत्तरार्द्ध (सं. 1700–1850) के प्रधान संतो में संत रज्जब जी, सुंदरदास, बाबा की नाराम, संत दरिया साहब (भाखड़ वाले), दरियादास (बिहारवाले), गरीबदास, चरणदास आदि का नाम आता है''।

''संत परम्परा के आधुनिक युग (सं. 1850 से आज) में भी अनेक प्रमुख संतो का प्रादुर्भाव हुआ। विक्रम की सातवीं शताब्दी से प्रारंभ होने वाली संत परम्परा आगे के युगों में विभिन्न संप्रदायो के सिद्धांतो एवं मतों से पुष्ट होकर पंद्रहवी शताब्दी तक चली। इसके पश्चात् इसे विशिष्ट नामों से जाना जाता है''। वास्तव में संतो के लिए किसी संप्रदाय अथवा धर्म विशेष की सीमा न थी या कहें कि उन्होंने स्वयं ही इस संकुचित दायरे को दरकिनार करते हुये प्राणी मात्र के कल्याण, उत्थान एवं विश्वकल्याण के उद्देश्यार्थ ही प्रयास किया। पंथो एवं संप्रदायो की स्थापना एवं संत परम्परा में विभेद का कार्य संबंधित संत के शिष्यों एवं अनुयाईयों द्वारा प्रारंभ हुआ। संत न तो स्वयं को गुरू स्वीकारते थे और न ही अनुयाईयों, श्रोताओं को शिष्य। उनके लिए सम्पूर्ण विश्व का एकमेव गुरू वहीं ब्रम्हांड नायक, सूत्रधार ईश्वर है। अपितु व्यक्ति पूजा, आडंबर युक्त उपासना, भक्ति में भिन्नता एवं श्रेष्ठत्व के ये विरूद्ध रहे। हालांकि शिष्य परम्परा एवं तद्नुरूप पंथ परम्परा के विकास से संतो (गुरूओं) के उपदेशों, प्रवचनों के संग्रहित रूप ''धर्म ग्रंथो'' के रूप में प्रचारित होने लगे। स्वाभाविक तौर पर यहां भी भक्ति भाव, सत्य आचरण, मानव कल्याण एवं उन्नति से परे स्पर्धात्मक परिवेश की विनिर्मिति संबंधित पंथानुयाईयों द्वारा आरंभ हुयी, कहना अतिश्योक्ति न होगा कि वर्तमान में यह प्रतिस्पर्धा एक दूषित परिवेश में अपने उच्चतम कुप्रयासों के साथ जारी है। स्वार्थपरकता, लोभ, मोह, धनमीमांसा, व्यक्ति पूजा समर्थन एवं इन सबसे बढ़कर कदाचरण वर्तमान तथाकथित संतो का वैशिष्ट्य हो चला है। वास्तव में सत के अभाव में संत की कैसी परिभाषा? ऐसी ही परिभाषा के साथ संत के स्वअलंकरण से महिमामंडित कर रहे है एवं जनसामान्य को भी इस मंडन हेतु बाध्य। स्वउन्नति के साथ सामाजिक अवनति (इनके तथाकथित कारनामों, उजागर होते घोटालों एवं दुष्कृत्यों से) वर्तमान संतो का सूत्रवाक्य हो चला है। हालांकि सभी का एक ही मानदंड पर आंकलन उचित नहीं। समाज एवं सामाजिक प्राणियों को विकासोन्मुखी दिशा एवं दशा परिवर्तन के साथ सत्य, अहिंसा, प्रेम, भाईचारा, सर्वधर्म समभाव, सदाचरण, सतचरित्र, ईमानदारी, शांत सौम्य, सहज सरल जीवनशैली के मार्ग की ओर प्रेरित करने वाले संत, धर्मगुरू वर्तमान परिवेश में भी मौजूद है किन्तु दुर्भाग्यवश अपेक्षाकृत कम प्रतिशत के साथ।

पूर्व उल्लेखित तथ्यानुसार समाज एवं तद्नुरूप राष्ट्र में आदर्श, नैतिक मूल्यों की स्थापना, सद्आचरण का अभ्यास, जीवनशैली की सत्चरित्रता, परोपकार, लोककल्याणकारी कार्य एवं लोकहित की सर्वोपरिता के साथ स्वस्थ, सुदृढ़, संगठित, आदर्श समाज की स्थापना किसी भी युग के संत धर्म का एक प्रमुख अभिन्न एवं निर्विवाद सत्य है। एकनिष्ठ भक्ति, आराधाना से उस सगुण ब्रम्ह तक पहुंचने का माध्यम यानि निष्काम भक्ति योग के प्रवर्तक ही संत पुरूष कहलाएं। किन्तु जिनका स्वयं ही नैतिक पतन हो गया हो, आदर्शो, नैतिक मूल्यों, आचरण, चरित्र अर्थात जीवन के सभी आयामों में जो 'कु' शब्द लिए शोभित हो वे संत तो क्या एक सामान्य राष्ट्रवासी की संज्ञा प्राप्ति के भी अधिकारी नही। दरअसल ये 'संत' उपाधी के नैपथ्य में एक धार्मिक अपराधी कहे जा सकते है। कहना अतिश्योक्ति न होगा कि इनमें से ही अनेक तथाकथित संत वर्तमान में अपराधी रूप में सलाखों के पीछे वर्तमान संत परम्परा का बखूबी निर्वहन कर रहे है। लोभ, मोह, माया, अहंकार और स्वार्थपरकता वर्तमान संत श्रेणी के अधिकांश संतो का वैशिष्ट्य हो चला है। ईश्वर उपासना की अपेक्षा स्वभक्ति एवं उपासना की ओर अनुयाईयों को प्रेरित एवं मार्गदर्शित करते है। उपासना, भक्ति, आराधना, सत्साहित्य, सत्संग के स्थान पर चमत्कार, तंत्रमंत्र, कार्यसिद्धी, मनोकामना पूर्ती के नाम पर अनेक अनुष्ठान संत व्यवसाय में स्पष्टतया परीलक्षित है। लोककल्याण के नैपथ्य में स्वकल्याण इन संतो के प्रमुख उद्देश्य में से ही है।

वास्तव में वर्तमान संत परम्परा ने एक नवीन पंथ परम्परा का सूत्रपात किया है। स्वयं को धर्मगुरू/संत की उपाधी से अलंकृत करने वाले ये पाखंडी, जनसामान्य के एक समूह को अपने चमत्कारों से समर्थक बनाने में कामयाब हो जाते है। ये तथाकथित समर्थक एकजुट हो अपने संबंधित के नामकरण से अपना एक नया पंथ स्थापित कर लेते है। धर्म, आस्था एवं विश्वास की आड़ में ऐसे अनेक संगठनो, धार्मिक परिषदो, शाखाओं का अभ्युदय वर्तमान में कोई नवीन तथ्य नही। उल्लेखनीय यानि पंथानुयाईयों में परस्पर स्पर्धा भी स्पष्टतया दृष्टिगत होती है। संबंधित संत/ धर्मगुरू का अनुयायी अन्य को नीचा साबित करने, आरोप लगाने, यहां तक कि संबंधित समुदाय की आस्था पर ही प्रश्नचिन्ह अंकित करने से भी नहीं चूकते। स्व शाखा की श्रेष्ठता, वर्चस्वता सिद्धि से अनुयाईयों की वृद्धिगत संख्या एवं प्रत्यक्ष रूप से उससे होने वाले मुनाफे पर ही संस्था प्रमुख की दृष्टि होती है। त्याग, तपस्या, समर्पण, साधना, वैराग्य, विरक्ति, मौन, दया, करूणा, मानव कल्याण, संयम, धैर्य, सहिष्णुता से परे भौतिकवादी, बड़बोले, निर्भय, लोभी, मोही, कामी, अनंत धनलीप्साभिलाषी आज के संत न तो सगुण उपासक अर्थात न तो भक्ति प्रधान है और न ही कर्मप्रधान, मात्र स्वउन्नति एवं स्वसुख प्रधान है। धर्म की ऐसी तथाकथित अधर्मी शाखाओं, पाखंडी संतो के उदय हेतु गाहें बगाहें हमारा वर्तमान सामाजिक परिवेश एवं हम यानि समाज ही जिम्मेदार है। व्यस्त से व्यस्ततम होती जीवनशैली में प्रत्येक इंसान अपनी समस्याओं का त्वरित समाधान चाहता है, भले ही अस्थायी एवं क्षणिक ही। स्वाभाविक तौर पर ये संतनुमा व्यक्ति अपने कुछ सिद्ध उपायों से समाधान निकालने का प्रयत्न करते है। अंधेरे में तीर मारते हुये कुछ तुक्केनुमा तीर लक्ष्य बेधने में सफल भी हो जाते है और अनायास समस्या और समाधान में गुरू शिष्य सदृश श्रद्धेयता विनिर्मित हो जाती है।

पुराणों, इतिहास में उल्लेखित संत जीवन सांसारिक होते हुए भी भोग विलास, साधन सम्पन्नता, ऐश्वर्य, ख्याति कीर्ति से विरक्त था। विपरित इसके वर्तमान संत जीवन में ये सारी आवश्यकताएं अनिवार्य एवं प्राथमिक बना दी गयी है। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्रोन्नति, मानव कल्याण, सदाचरण, परोपकार, ईश्वर आराधन, प्राणी मात्र के प्रति दया, करूणा भाव, सहिष्णुता, संस्कारिता, रूढ़िगत कुरूतियों के विरूद्ध जनजाग्रति आदि से अस्पृश्य आज का संत मात्र स्वउत्थान, आर्थिक प्रगति, स्वपंथ की व्यापकता, स्व प्रचार और कुरीतियों के स्थापन में ही धन्य हो चला है। दरअसल हमारी संस्कृति के लगभग सभी अविभाज्य घटकों का व्यवसायीकरण तो सामान्य से अति सामान्य हो गया है किन्तु वर्तमान संत परम्परा ने संस्कृति के एक महत्वपूर्ण घटक अर्थात धर्म का भी व्यवसायीकरण करने में कोई कसर शेष न छोड़ी। वातानुकुलित सभा मंडप, पूर्णतया हाईटेक परिवेश, श्रद्धालु श्रोताओं का निर्धारित आंकड़ा, पाश्चात्य संगीत उपकरण और आयोजन स्थल पर एक प्रतिष्ठित धनाढ्य परिवार की मेजबानी, वर्तमान सत्संग, धार्मिक आयोजनों, कथावाचन, प्रवचन आयोजन के निर्धारित मापदण्ड है, जो आधुनिक संतो के द्वारा स्थापित किये गये है। इन सारी अर्हताओं पर खरा उतरने वाला यजमान ही स्वामी/संत जी के श्रीमुख से कथा श्रवण का लाभ लेने योग्य एवं संबंधित नगरवासियों को इस लाभ में भागीदार बनाने योग्य साबित हो सकता है। परोपकार, मानव कल्याण, जनहित, निःस्वार्थभाव, समाजोन्नति विषयी चिन्तन की क्षणिक स्पर्शता भी कहीं परीलक्षित नहीं होती। इन गुणों से विमुख संत चरित्र अथवा व्यक्ति माहात्म्य ? इन समस्त मापदंडो पर खरा उतरने वाला यजमान सच्चा भक्त एवं उपदेश/प्रवचनकर्ता संत समाज में ख्यातिलब्ध, पूजनीय एवं राष्ट्र स्तरीय संत शिरोमणी। कुछ एक इस प्रकार के यजमान देश के बाहर भी हो और संत महराज की कथाओं से विदेशी जमीं भी गूंजायमान हो गयी हो तो हमारा सांस्कृतिक परिचय, संस्कृति की व्यापकता, धर्म प्रचार की अपेक्षा संबंधित संत का परिचय, ख्याति अर्न्तराष्ट्रीय स्तरीय एवं तद्नुरूप संत समाज में उनका पायदान (वर्तमान शब्दकोषानुसार रेटिंग दर) क्रमांक निर्धारित होता है। कहना अतिश्योक्ति न होगा कि संत की यह रेटिंग प्रणाली ही उनके शिष्यों/अनुयाईयों के स्तर निर्धारण में भी महत्वपूर्ण एवं सक्रिय होती है। स्वाभाविक तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय संत के अनुयायी भी देश का जनसामान्य नहीं तो नामचीन हस्तियां ही होती है। जिनकी समस्याएं, निदान, उपचार पद्धतियां (सारांशतः कल्याण एवं समाधान) भी सामान्य जीवनचर्या को अस्पृश्य, आधुनिक, खर्चीली, साधन सम्पन्नता लिए होती है।

वर्तमान संत परम्परा का सबसे विमर्शणीय पहलू यानि राजनीति का धर्म में प्रवेश एवं तद्नुरूप संतो का राजनीतिक हस्तक्षेप ! धर्म और राजनीति यद्यपि मानवीय जीवन के दो अभिन्न आयाम है किन्तु एक स्वस्थ, खुशहाल एवं विकासशील राष्ट्र के लिए इन दोनो ही कारकों का स्व अस्तित्व के साथ स्वतंत्र इकाई रूप में कार्य करना आवश्यक है। दुर्भाग्यवश वर्तमान स्वतंत्र राष्ट्र की दोनों ही इकाईयां न केवल पारस्परिक हस्तक्षेप अपितु एक दूसरे के स्वतंत्रता हनन पर भी उतारू है।

वर्तमान तथाकथित संतो/धर्मगुरूओं की इस प्रकार के हस्तक्षेप में महती एवं सर्वोपरी भूमिका नकारने योग्य नहीं। अपितु राजनीति एवं कार्यरत सरकारों में वर्चस्व, हस्तक्षेप एवं अनुज्ञापालन के स्तर से 'संतो' का अलंकरण एवं संत परिभाषा शोभित हो चली है। लिंग भेद रहित यह परम्परा तात्कालीन परिवेश सदृश आज भी जारी है। अर्थात् संत परम्परा में अनेक

महिला संत भी थी और है। अंतर मात्र इतना है कि प्राचीन संत महिलाएं ईश्वर भक्ति में लीन रहते हुए सम्पूर्ण जीवन ही देवतार्पण कर देती थी, वहीं वर्तमान परिवेश में अन्य क्षेत्रों दृश यह क्षेत्र भी वर्चस्वता एवं सत्तात्मक विचारधारा से अस्पृश्य नहीं। पुरूष प्रधानता एवं महिला संतो की सत्तात्मक न सहीं समप्रभृत्व विनिर्मिति हेतु संघर्ष एवं जद्दोजहद यहाँ भी दृष्टव्य है।

सारांशतः संत एवं संतधर्म हमारी भारतीय परम्परा के एक अहम एवं अविभाज्य कारक धर्म का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। हमारी धार्मिक ईमारत की आधारशीला समाज को धर्मोन्मुख करने वाले, उचित एवं अनुचित का विभेद कर सही मार्ग दर्शित करने वाले, आदर्श, नैतिकता एवं सदाचरण का बीजारोपण करने वाले, विश्वास एवं अंधविश्वास के मध्य की रेखा का बोध कराने वाले, सामाजिक कल्याण की नीतियां, परम्पराएं, मूल्यों के विस्थापक ईश्वर भक्ति में अर्पित संत एवं संत जीवन ही है। काल एवं देशानुरूप अवश्य परिभाषाएं परिमार्जित होती रहेंगी किन्तु एक वास्तविक संत हमारी संस्कषति में सदैव श्रद्धेय, पूज्य एवं देवतुल्य स्थान पर ही रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. संत परम्परा का पुनरोदय ही उज्जवल भविष्य का आधार 2001 (गायत्री प्रकाशक)।
2. संत साहित्य :– (अ) गुप्तज्ञान कोष।

(ब) भारतीय संस्कृति की विशेषताएं।

प्रेरक कथा

एक बार महात्मा बुद्ध शिष्यों के साथ यात्रा कर रहे थै, झील देखकर वहॉ रूके और शिष्यों से कहा मुझे प्यास लगी है, जाओं झील से पानी ले आओं। दोनों शिष्य के झील के पास पहुॅचने के ठीक पहले एक बैलगाड़ी झील से पार हुई तथा नीचे के मिट्टी ऊपर आने की वजह से पानी मटमैला हो गया, एक शिष्य यह देखकर वापस आया और बुद्ध से बोला – पानी गंदा है, आपके पीने लायक नही है । दूसरा शिष्य चुपचाप झील के किनारे थोडी देर बैठ गया, तथा जब मिट्टी सतह में जम गई तो पानी भर कर बुद्ध के पास पहुॅचा, तो बुद्ध ने कहा तुम ने पानी को साफ कैसे किया शिष्य ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया मैने कुछ नहीं किया सिर्फ थोड़ा समय दिया तो मिट्टी अपने आप जम गई, और पानी अपनेआप साफ हो गया ।

पहला शिष्य असफल रहा क्योंकि मटमैला पानी देखकर तुरन्त रिएक्ट किया, जबकि दूसरा शिष्य सफल रहा क्योंकि वह मटमैले पानी की समस्या के कारण को समझ कर समाधान हेतु थोड़ा संयमित होकर इंतजार किया ।

संकलित

भारतीय दर्शन एवं महिला समानता

डॉ. अभिनेष सुराना,
प्राध्यापक (विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग)
शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर,
स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दुर्ग छत्तीगढ़

डॉ. सरिता मिश्र,
अतिथि व्याख्याता (हिन्दी विभाग),
शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर,
स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दुर्ग छत्तीगढ़

दर्शन का अर्थ है तत्व का ज्ञान। साथ ही जीवन और अनुभव की आलोचना भी दर्शन के आधार पर होती है, भारतीय दर्शन चिन्तन–मनन के आधार पर प्रतिष्ठित है। भारतीय दर्शन का आरंभ वेदों से होता है। 'वेद' भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य आदि के मूल स्रोत है। भारतीय मनीषियों के उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का उद्‌भव हुआ, उसने दूर–दूर के मानवों के आध्यात्मिक कलुषता को धोकर पवित्र, नित्य शुद्ध–बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है, इसी पतित पावनी धारा को हम दर्शन के नाम से पुकारते हैं।

समानता किसी हद तक आधुनिक अवधारणा है, दो या दो से अधिक लोगों या समूहों के बीच सम्बन्ध की एक स्थिति ऐसी होती है जिसे समानता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। लेकिन, एक विचार के रूप में समानता इतनी सहज और सरल नहीं है, सामाजिक संदर्भों में समानता का अर्थ किसी समाज की उस स्थिति से है जिसमें उस समाज के लोग समान अधिकार रखते हैं। जिसमें अवसर की समानता, स्थितियों की समानता एवं परिणाम की समानता का उल्लेख कर सकते हैं।

महिला समानता पर विचार करते समय भारतीय समाज की वर्तमान दशा का विश्लेषण एवं अतीत का मूल्यांकन करना अतिआवश्यक बन जाता है, जैसा कि, भारतीय दर्शन का आरंभ वेदों से माना जाता है, वैदिककाल में नारी की स्थिति अत्यंत ही प्रतिष्ठित थी, इस काल में नारी अपने आत्मविकास, शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति सम्पन्न होना आदि के सम्बन्ध में पुरूषों के समान थी।

भारतीय दर्शन के अंतर्गत निम्न प्रकार से दर्शनशास्त्र प्रस्तुत हुए हैं :–

1. न्यायदर्शन
2. वैशेषिक दर्शन
3. सांख्य दर्शन
4. योग दर्शन
5. मीमांसा दर्शन
6. वेदान्त दर्शन
7. चार्वाक दर्शन
8. जैन दर्शन
9. बौद्ध दर्शन

जैसा कि अनेक दर्शन–सम्प्रदाय वेदों को अपना आधार और प्रमाण मानते हैं। वैदिक साहित्य का विकास संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् इन चार चरणों में हुआ है।

कोई भी धर्म, सम्प्रदाय, संस्था और राज्य कितना उदार है, इसे इस पैमाने पर मापा जा सकता है कि वहाँ महिलाओं के साथ कैसा व्यवहार होता है, भारतीय दर्शन में प्रकृति यानी कि समस्त मानवता की पोषक को स्त्री के रूप में देखा गया है, इसके साथ ही वेदों के रचयिता सिर्फ पुरूष ऋषि–मुनि ही नहीं, बल्कि महिलाएँ भी रही थीं।

ऋग्वेद के कई मंत्र एवं ऋचाएं महिलाओं द्वारा भी रची गई हैं। ऋग्वेद की दस ऐसी ऋचाएं हैं, जिन्हें मैत्रेयी द्वारा रचा गया है। इसी तरह वाचकन्वी गार्गी ने भी ऋग्वेद की अनेक सूक्तियों की रचना की है। ऋग्वेद के कुछ अंशोंको रचने में लोपमुद्रा का भी योगदान माना जाता है।

वैदिककाल में महिला को एक महत्वपूर्ण स्थान के साथ–साथ परिवार के प्रति अपने कुछ कर्तव्यों के साथ महत्वपूर्ण अधिकार भी प्राप्त थे, उसे गष्हणी के रूप में 'लक्ष्मी' माना जाता था, पिता के घर में उन्हें अत्यधिक स्नेह व सम्मान प्राप्त थे, पति के घर में भी उसे पूरे अधिकार प्राप्त थे, वह पति के सभी कार्यों में सहायता करने के लिए सक्षम एवं स्वतंत्र थी। वैदिक साहित्य से पता चलता है कि महिला के बिना पुरूष का जीवन संभव न था। इस प्रकार वैदिक काल की महिला की पारिवारिक स्थिति काफी सम्माननीय थी।

वैदिक कालीन महिला की धार्मिक एवं राजनीतक स्थिति भी काफी उत्कृष्ट थी, महिलाओं को पुरूषों के समान ही धार्मिक अधिकार प्राप्त थे, कोई भी धार्मिक कार्य बिना महिला के पूरा नहीं होता था, बिना महिला की उपस्थिति के यज्ञ कार्य पूर्ण नहीं होताथा। वैज्ञानिक धार्मिक सिद्धांतों एवं रीतियों के संहिताकरण करने हेतु 'जनक' जैसे राजाओं द्वारा आयोजित वैश्विक धर्म सम्मेलन में गार्गी, ब्रम्हवादिनी जैसी विदुषी महिलाओं का भाग लेना एवं पुरूषों के साथ शास्त्रार्थ करना इस बात को दर्शाता है कि प्राचीन भारत में महिलाओं का धार्मिक स्थान काफी उंचा था।

उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति में प्रतिकूल परिवर्तन आना प्रारंभ हो चुका था, महिला के विकसित एवं सम्माननीय मार्ग में अवरोध उत्पन्न होने शुरू हो चुके थे, कर्मकाण्ड की जटिलता और पवित्रता की धारणा में वृद्धि, जिसकी वजह से ये विश्वास किया जाने लगा कि मंत्रों के उच्चारण में तनिक–सी भूल भी अनिष्टकारक होती है, इसलिए महिला वर्ग को उनके अध्ययन से अलग कर दिया गया। अतः वैदिक युग का दृष्टिकोण जो स्त्री के प्रति दिव्य कल्पनाओं, भावनाओं, आदरभाव के लिए हुए थे, वह अब पूर्णतया बदल चुका था। स्त्रियों को मानसिक तथा आत्मिक विकास पर पाबंदियाँ लगा दी गई थीं। उनकी साहित्यिक उन्नति के मार्ग पर अनेक प्रतिबंध लगा दिये गये थे। 'स्त्री शूद्रो नाधीयताम्' जैसे वाक्य रचकर उसे शूद्र की कोटि में रख दिया गया, स्त्री को विवाह संस्कार के अतिरिक्त और सभी संस्कारों से वंचित कर दिया गया, इस तरह उत्तर वैदिककाल में नारी का स्तर वैदिककाल की तुलना में कम होता गया।

नारी को शक्ति के रूप में देखने वाली धरती और लैंगिक समानता का संदेश देने वाले हिन्दू धर्म पर यह आरोप लगता रहा है कि यहाँ महिलाओं के साथ सही व्यवहार नहीं होता है, यह एक शोध का विषय है। महिलाओं द्वारा धार्मिक कार्यों, सार्वजनिक त्यौहारों, पारिवारिक अनुष्ठानों में अग्रणी भूमिका निभाने, उनका संचालन करने के अनेकों उदाहरण मिलते हैं।

भारतीय दर्शन के सांख्य दर्शन के अनुसार समूचा ब्रम्हांड केवल दो प्रमुख तत्वों से बना है–पुरूष (चैतन्य) और प्रकृति। इनमें से पुरूष चेतन किंतु निष्क्रिय तत्व है, जो जीवधारियों के शरीर में रहकर सुख–दुःख का भोग करता है। अपने मूल रूप में पुरूष जो कुछ भी ब्रम्हांड में हो रहा है उसका साक्षी मात्र है, प्रकषति मूलतया अचेतन है, पर वह चेतन पुरूष से इस प्रकार गुँथी हुई है कि वह विश्व के प्रतीत होने वाले निर्माण में अपना भाग अदा करती है।

बहरहाल, महिलाओं की शक्ति और संघर्ष को सलाम करने और उनके उत्कृष्ट कामों को सराहने के उद्देश्य से प्रत्येक 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाता है, इस दिन विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के प्रति सम्मान, प्रशंसा व प्यार प्रकट करते हुए महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक उपलब्धियों को लेकर खुशी मनाई जाती है।

संदर्भ सूची :–

1. hindi.opindia.com लैंगिक समानता हिन्दू जीवन, दर्शन का अभिन्न अंग : अन्य धर्मों–सभ्यताओं से एक तुलनात्मक अध्ययन–अनुपम कुमार सिंह
2. webdunia अनिल विद्यालंकार
3. shodhganga.inflibnet.ac.in

संत गुरु घासीदास एवं उनका दर्शन

मनीष कुमार कुर्रे,
शोधार्थी
हिन्दी विभाग, शास0 दिग्विजय
स्वशासी महा0 राजनांदगाँव (छत्तीसगढ़)

डॉ. चन्द्रकुमार जैन,
शोध निर्देशक
हिन्दी विभाग, शास0 दिग्विजय
स्वशासी महा0 राजनांदगाँव (छत्तीसगढ़)

शोधसार :–

गुरु घासीदास का जन्म 18 दिसंबर सन् 1756 को बालौदाबाजार जिले के गिरोदपुरी नामक स्थान पर हुआ था। इस समय समाज में छुआछूत, जाति–पाँति, अंधविश्वास, टोनही, सती प्रथा, बलि प्रथा जैसी कुरीतियों का प्रचलन था, जिसका अनुभव बाबा गुरु घासीदास ने स्वयं किया और उनके दर्शन पर भी इसका प्रभाव पड़ा। बाबा गुरु घासीदास हर घटना को तर्कशील होकर चिंतन करते और लोगों में सामाजिक अलख जगाने का प्रयास करते। बाबा गुरु घासीदास सभी मनुष्यों को समान समझते थे। जातिभेद को अपराध मानते थे। उनके दर्शन काल्पनिक न होकर वास्तविक एवं व्यवहारिक है। बाबा घासीदास के आध्यात्मिक, सामाजिक एवं नैतिक दर्शन सदैव ही मानवतावादी दृष्टिकोणों का संवाहक रहा है। बाबा घासीदास ने सत्य को ही ईश्वर माना है। गुरु घासीदास के दर्शन को सतनाम दर्शन के नाम से आज जाना जाता है जो मूलतः गुरु घासीदास के विचारधाराओं एवं सप्त सिद्धाँतों पर आधारित हैं। सत्य, अहिंसा, सदाचार, भाईचारा, समता, सहयोग, ईश्वर या सतनाम का स्वरूप गुरु घासीदास के दर्शन की सामाजिक एवं नैतिक क्षेत्र का विशेष पहलू रहा है। सामाजिक एवं नैतिक दर्शन में ही समस्त सिद्धाँतों एवं गुरु उपदेशों को समाहित किया जा सकता है।

शोधपत्र का उद्देश्य : –

1. गुरु घासीदास के विभिन्न दर्शन क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त करना।
2. दर्शन क्या है..... ? जानने में सक्षम होंगे।
3. गुरु घासीदास के प्रमुख सिद्धाँतों से परिचित होंगे।
4. दर्शन के क्षेत्र में गुरु घासीदास के दर्शन का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

मुख्य शब्द :–

सतनाम, सत्य, संत, दर्शन, फिलॉसफी, समानता, सदाचार, अहिंसा ।

विषय प्रवेश :–

भारतीय संस्कृति में धर्म, आध्यात्मिक एवं दर्शन का सदैव ही विशेष महत्व रहा है। प्राचीन समय से ही भारत में धर्म को सबसे ऊँचा आदर्श माना गया है। भारत में स्वतंत्र बौद्धिक चिंतन की परम्परा रही है और इस चिंतन में अनेक धर्मों, संप्रदायों और दार्षनिक परम्पराओं को जन्म दिया है। हमारे देश में धार्मिक क्षेत्र के अंतर्गत समय–समय पर जिन मतों और सिद्धाँतों का प्रतिपादन हुआ उनमें कतिपय आधारभूत विचारों की प्रतिष्ठा हुई। उदाहरण स्वरुप – एकेश्वरवाद, आत्मा की अमरता, कर्म, पुनर्जन्म, मोक्ष प्राप्ति आदि। आज यह सिद्धाँत भारत के धार्मिक जीवन और दर्शन के प्रमुख सिद्धाँत बन गए हैं। मध्यकालीन भारत में जब मुसलमान आक्रमणकारियों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर विजय प्राप्त कर इस्लाम धर्म का प्रचार–प्रसार किया तब भारतीयों का हृदय कुंठा, निराशा और अंधकार से भर उठा। सामाजिक जीवन में अनेक कुरीतियों ने घर कर लिया था। हिन्दू धर्म में अनेक मत–मतान्तरों के झगड़े, जाति–पाँति पर आधारित ऊँच–नीच के भेदभाव, धार्मिक कर्मकाण्ड जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा था, तभी कुछ दार्शनिक चिन्तकों और ईश्वर भक्तों ने एक शांतिपूर्ण मार्ग को अपनाया। वह मार्ग था – भक्ति मार्ग या भक्ति आंदोलन। यद्यपि भक्ति मार्ग भी इस समय दो वर्गों में बट गया था पहला सगुण भक्ति एवं दूसरा निर्गुण भक्ति।

प्रायः सभी संत निर्गुण हुए हैं। संत कबीरदास, रैदास, दादूदयाल, गुरु नानक देव, संत ज्ञानेश्वर और छत्तीसगढ़ में संत गुरु घासीदास आदि ने निर्गुण भक्ति को अपनाया और एकमात्र संदेश देते हुए मनुष्य को सत् मार्ग की ओर अग्रसर किया। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि निर्गुण संत–साधकों की परम्परा में गुरु घासीदास छत्तीसगढ़ के सर्वाधिक पूज्य एवं महान संत थे। बाबा गुरु घासीदास ने अपने सात्विक किन्तु प्रभावपूर्ण एवं मार्मिक दार्शनिक संदेशों से ऐसे लाखों लोगों में जो पीड़ित थे, शोषित थे, अपमानित थे एक नया आत्मविश्वास जगाया। सच्चे अर्थों में गुरु घासीदास ज्योति पुरुष थे, प्रकाश पुंज थे।[1]

गुरु घासीदास के चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह मौलिक था। उनके ज्ञान और दर्शन पुस्तकों पर आधारित नहीं थी। संतों ने परम्परावादी ''पोथीवादी'' को कोई महत्व नहीं दिया। वे जो देखते और स्वानुभूत करते उन्हें ही अपने दर्षन में महत्व देते थे। संत कबीर ने कहा भी है –

तू कहता कागद की लेखी।

मैं कहता आँखिन की देखी।। [2]

अब हमें गुरु घासीदास के दर्षन से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि दर्शन आखिर क्या है...? जो इस प्रकार है :–

दर्शन : अर्थ एवं परिभाषा :–

दर्शन जो कि अपने आप में एक यथार्थ है। दर्शन शब्द ''दृश'' धातु से बना है। ''दृश'' संस्कृत की धातु है जिसका अर्थ है – देखना। दृश धातु में ''ल्युट्'' प्रत्यय लगाने से दर्शन शब्द बनता है। इस शब्द को व्याख्यात्मक दृष्टि से देखा जाए तो कह सकते हैं– दृश्यते अनेन इति दर्शनम्। अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए या ज्ञान प्राप्त किया जाए। सभी संतों ने आँखों देखी ज्ञान पर विश्वास किया है। यहाँ कल्पना को कोई स्थान नहीं दिया गया है। [3]

पाश्चात्य विचारधारा के दार्शनिक यूनानी विद्वान प्लेटो के अनुसार दर्शन को अंग्रेजी में फिलॉसफी कहा जाता है। फिलॉसफी शब्द यूनानी भाषा का शब्द है। यूनानी में दो अलग–अलग शब्द है – फिलॉस और सोफिया । फिलॉस का अर्थ है– प्रेम (लव) या अनुराग और सोफिया का अर्थ है– विद्या या ज्ञान। इन्हीं दोनों शब्दों से मिलकर फिलॉसफी बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है– विद्यानुराग या ज्ञान प्रेम। किन्तु दर्शन केवल देखना ही नहीं हो सकता। जब मानव अपने मन तथा हृदय के भीतर बाह्य और अंतरचक्षु को मिश्रित कर देखता है, वही दर्शन कहलाता है। अर्थात् जो सत्य–असत्य, भाव–विचार, के साथ मन को सम्मिलित कर अपना सिद्धाँत प्रकट करता है, दर्शन है। भारतीय विचारकों के अनुसार दर्शन की उत्पत्ति के मूल में दुःख है। किन्तु पाश्चात्य विचारक दर्षन को आश्चर्य से निकला मानते हैं। [4]

परिभाषा :–

भारतीय विद्वानों के अनुसार दर्शन की परिभाषा इस प्रकार है :–

1. **कौटिल्य के अनुसार** : – "आन्वीक्षिकी विद्या ही दर्शन है।"
2. **डॉ0 बलदेव उपाध्याय** के अनुसार :– ''दर्शन एक ठोस सिद्धाँत है न कि अनुमान या कल्पना। इसे व्यवहार में लाकर व्यक्ति निर्धारित लक्ष्य, मार्ग प्रशस्त कर लेता है।''
3. **डॉ0 उमेश मिश्र** के अनुसार – ''मार्गदर्शन के द्वारा प्रत्यक्षीकरण होता है। अर्थात् चाहे जितना ही सूक्ष्म क्यों न हो उसे दर्शन से अनुकूल किया जा सकता है।''

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार दर्शन की परिभाषा इस प्रकार है :–

1. ''ज्ञान का ही विज्ञान दर्शन है''– **फिक्टे** ।
2. ''पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही दर्शन है'' – **प्लेटो**।
3. ''दर्शन विज्ञानों का विज्ञान है'' – **कामटे**।[5]

दर्शन के क्षेत्र में गुरु घासीदास :–

गुरु घासीदास के दर्शन या जिसे हम सतनाम दर्शन के नाम से भी जानते हैं, गुरु घासीदास के ही विचारों और सिद्धांतों पर आधारित है। गुरु घासीदास ने जिस समय छत्तीसगढ़ में जन्म लिया उस समय समाज खण्ड–खण्ड हो चुका था। यहाँ की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियाँ अनेक ऐतिहासिक कारणों से दूषित हो गई थी। जाति–पाँति, ऊँच–नीच, छुआछूत आदि भेदभावों के कारण सामाजिक वातावरण इतना दूषित हो गया था कि मनुष्यत्व के सात्विक सम्मान पर आघात पहुँचने लगा था। ऐसी विषम स्थिति में आवश्यकता थी एक ऐसे संत कि, ऐसे दार्शनिक महापुरुष की जो भटके लोगों को धर्म और संस्कृति का मार्ग दिखा सके। गुरु घासीदास ने सत्यनाम जो दार्शनिक सिद्धाँत प्रतिपादित किए हैं वह उनकी गहनतम दिव्यानुभूति पर आधारित है। उन्होंने जो कुछ आँखों से देखा था उसी का वर्णन किया है। यह दर्शन सिद्धाँत उनकी तपस्या का ही फल है। ऐसा ज्ञान जो अक्षरीय ज्ञान से परे है।

निम्न दार्शनिक पक्ष इस प्रकार हैं –

सामाजिक एवं नैतिक दर्शन

सामाजिक दर्शन :–

गुरु घासीदास के सामाजिक दर्शन में पूर्ण सामाजिक समानता का भाव निहित है। गुरु घासीदास का मानना है की सामाजिक दृष्टि से कोई भी बड़ा–छोटा नहीं है। सबकी मुक्ति के बिना एक की मुक्ति संभव नहीं है। यह एक सच्ची आध्यात्मिकता है, मानव जाति के प्रति एक सच्ची सेवा है। गुरु घासीदास के सामाजिक दर्शन में सभी को कल्याण की भावना से देखने का लक्ष्य है। पीड़ित के प्रति वे करुणा से द्रवित थे। इससे उनकी सामाजिक न्याय की अनुभूति होती है। गुरु घासीदास का सभी के लिए केवल एक ही मंत्र था वह है – ''सतनाम''। अर्थात् ऐसे नियमों का पालन करना जो सामाजिक सत्य की स्थापना में साधक हो और समाज का कल्याण हो सके। सत्य के व्यवहारिक बनाने के लिए घासीदास ने कतिपय सामाजिक आडम्बरों को दूर करने के लिए कहा था, जिनमें जातिवाद, अस्पृश्यता, चरित्रहीनता, मदिरापान, माँसाहार, उन्मुक्त मैथुन, नरबलि, स्त्री वध आदि आते हैं। घासीदास पूर्ण सामाजिक समानता के पक्षधर थे क्योंकि सतनाम समानता के मार्ग पर विश्वास करता है। इसलिए गुरु घासीदास सतनाम का अनुसरण करने का उपदेश देते हैं।

नैतिक दर्शन :–

गुरु घासीदास के नैतिक दर्शन का स्त्रोत उनकी उपदेश एवं सिद्धाँत है। उनका सतनाम दर्शन काल्पनिक नहीं अपितु व्यवहारिक सत्य पर आधारित है। जनमानस को अलौकिक (असत्य) जगत से खींचकर लौकिक (सत्य) जगत में लाने का प्रयास किया। उनके विचारों में कहीं आध्यात्मिकता व धार्मिकता का समावेश नजर नहीं आता। काल्पनिक जगत से परे वह धरती को ही स्वर्ग बनाना चाहते थे। उनके विचार शुद्ध बौद्धिक थे। वह साधु पुरुष थे। सादा जीवन उच्च विचार ही उनकी जीवन सार है । वह साधारण इंसान बने रहना चाहते थे। जैसे –

मोर संत मन मोला काकरो ले बड़े झन कइहा।
नई तो मोला हुदेसना मा हुदसे कस लागही।। [6]

गुरु घासीदास के समय राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ अत्यधिक अस्त–व्यस्त थी। दूसरे शब्दों में पूरे देश में बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक अंधकार छा गया था। सती, टोनही का वध, नरबलि, अंधविष्वास तथा अनैतिक आचार–विचार पूरे समाज में छाए हुए थे। गुरु घासीदास ने ऐसी कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। [7]

सामाजिक एवं नैतिक दर्शन के अंदर समस्त दर्शन को समाहित किया जाता है। जिसमें निम्न बिन्दु इस प्रकार है –

ईश्वर या सतनाम का स्वरूप :–

गुरु घासीदास की परमतत्व का अवबोध उनके एकात्मक तत्व के अनुभव पर आधारित है न कि किसी धर्मग्रंथ या सैद्धाँतिक उपदेश पर। वे निरक्षर थे। इसलिए कबीरदास की समान उन्होंने ''मसि कागद'' को छुआ तक नहीं था। गुरु घासीदास ने ईश्वर को एक माना जिसे सतनाम की संज्ञा दी गई है। सभी मनुष्यों का ईश्वर एक है और वह सभी पर समान रूप से कृपा करता है। वह निर्गुण, निराकार और निर्विकार है। उनका आदि नाम सतनाम है –

आदि नाम सतनाम है, सत्यहिं है जगसार ।
सत्यनाम के जपन ते, सब जन उतरे पार ।। [8]

ईश्वर को प्राप्त करने के लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। जो उन्हें शुद्ध, सात्विक और सरल भाव से खोजता है वह उन्हें स्वयं के भीतर ही मिल जाता है। क्योंकि वह घट–घट में निवास करता है।

अहिंसा :–

सभी धर्मों में अहिंसा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अहिंसा केवल शब्द नहीं है यह अपने आप में संपूर्ण जीवन है, परम धर्म है। जो अहिंसा को अपने जीवन में साकार कर लेता है वह धर्म के सार को साकार कर लेता है। इसलिए कहा गया है ''अहिंसा परमो धर्मः''। अहिंसा मानवता का प्रतीक है। अहिंसा सीमा के भीतर किसी जीव की हत्या नहीं करने से लेकर किसी भी जीव के हृदय को चोट नहीं पहुँचाने तक की समस्त क्रियाएँ, चेष्टाएँ आ जाती है। किसी भी जीव पर आघात करना परमात्मा पर आघात करना है। जीना और जीने देना मनुष्य का कर्तव्य है। गुरु घासीदास ने यह संदेश दिया कि माँस–भक्षण नहीं करना चाहिए। सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए साथ ही मादक पदार्थों का पूर्ण निषेध करना चाहिए। गुरु घासीदास के सिद्धाँत–दर्शन वैज्ञानिकता पर आधारित है। गुरु घासीदास ने तर्कशील होकर बताया कि मादक पदार्थ केवल मन को नष्ट नहीं करता बल्कि शरीर को भी नष्ट कर देता है।

सदाचार :–

सात्विक विचार, सात्विक कर्म और सात्विक मन से ही सदाचार का निर्माण होता है। सादगी सरलता और निष्कपटता सदाचार के आवष्यक अंग है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पर नियंत्रण रखते हुए कथनी और करनी पर एकता बनाए रखनी चाहिए। किसी के प्रति दुराचार, अत्याचार, दुर्व्यवहार, अनाचार नहीं करना चाहिए। ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्या–भाषण से सदैव बचना चाहिए। अहंकार का त्याग चरित्र विकास के लिए आवष्यक है क्योंकि जहाँ अहंकार है वहाँ श्रेश्ठ चरित्र नहीं हो सकता चाहे वह अंहकार धन का हो या पद का हो अथवा बल का। अहंकार ही अज्ञानता का दूसरा नाम है। सदाचार में गुरु घासीदास ने महिलाओं का सम्मान तथा समाज में ऊँचा स्थान पर रखना सदाचार का श्रेश्ठ लक्षण माना है। कबीरदास जी का दोहा सदाचार के लिए चरितार्थ होता है जो इस प्रकार है –

जहाँ दया तहाँ धर्म है, जीवन मूल है तोष ।
त्याग सुखों का सार है, स्वर्ग जगत संतोष ।।

सदाचार का सतनाम दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान है। सदाचार ही सच्चे अर्थों में मनुष्य को मनुष्य बनाता है।

समानता :–

गुरु घासीदास सभी जीवों को समान समझते थे। उनका संदेश था सभी मनुष्य समान है। ऊँच–नीच, छुआछूत आदि का भेदभाव करना न केवल मनुष्यों के प्रति बल्कि परमात्मा के प्रति भी घोर अपराध है। जाति–पाँति, छुआछूत का कोई आध ाार नहीं है। यह मनुष्य के प्रति अपमान का द्योतक मात्र है। यह भेदभाव अवैज्ञानिक, निराधार और स्वार्थ की उपज है। प्रत्येक मनुष्य के स्वाभिमान और आत्म सम्मान की पूर्ण रक्षा की जानी चाहिए। बाबा घासीदास माता–पिता और गुरु के प्रति पूर्ण भक्ति रखने की बात करते थे। कबीर दास ने तो गुरु को ईश्वर से भी बड़ा माना है उनका यह दोहा समानता पर चरितार्थ होता है –

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपनै, जिन गोविंद दियो बताय।। [9]

दूसरों को सम्मान देना ही अपने को सम्मानित करना है।

सत्य पर बल :–

गुरु घासीदास ने सत्य पर बल दिया और सत्य को ही ईश्वर बतलाया है। बाबा घासीदास ने असत्य मार्ग छोड़कर सत्य मार्ग पर चलने की सीख दिए हैं, जहाँ समरसता, समता, प्रेम और करुणा बसता है। वह सत्य को सर्वोपरि मानते हैं यथा –

सत्य से धरती खड़े, सत्य से आकाश।
सत्य से सृष्टि उपजे, कह गए घासीदास।। [10]

गुरु घासीदास कहते हैं कि सत्य का वास वहीं हो सकता है जिसका मन शुद्ध एवं मानवीय गुणों से परिपूर्ण हो। सत्य आचरण ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है, सत्य आचरण ही कर्म और श्रेष्ठ मर्म है। जो सत्याचरण करता है वही सत्य अर्थात् सतनाम तक पहुँच सकता है। संत कबीर ने कहा है –

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके मन में साँच है, ताके मन में आप ।। [11]

गुरु घासीदास के दर्शन के संदर्भ में हम देखें तो कह सकते हैं कि सप्त सिद्धाँतों का सार ही उनका दर्शन है जो इस प्रकार है –

1. सतनाम पर विश्वास करो।
2. बाह्य आडम्बर, मूर्ति पूजा मत करो ।
3. माँसाहार मत करो ।
4. नशा सेवन मत करो।
5. जाति भेद के प्रपंच में मत पड़ो।
6. पर स्त्री को माता जानो, स्त्री सम्मान करो।
7. गाय को हल में मत जोतो, अपराह्न में हल मत चलाओ। [12]

निष्कर्ष :–

अतः हम कह सकते हैं कि गुरु घासीदास के सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक–दर्शन वर्तमान सामाजिक धरातल पर समाज सुधार हेतु उपयोगी एवं प्रासंगिक है। उनके सिद्धाँत एवं उद्देश्य दर्शन का मूल आधार है, जो समस्त मानव कल्याण के लिए सार्थक है। उनके उपदेशों में एक ओर आध्यात्मिक आदर्श है तो दूसरी ओर सामाजिक चिंतन–दर्शन भी है। गुरु घासीदास ने अपने तपोबल, मनोबल, आत्म बल एवं अपनी आध्यात्मिक दर्शन के आधार पर सतनाम की जागृति फैलाई, जिसमें वह सफल भी हुए। आज देश–दुनिया की परिस्थिति गुरु घासीदास के काल से बहुत भिन्न नहीं है। राष्ट्र को निध र्नता, अज्ञानता, नशाखोरी, व्याभिचारी तथा मक्कारी जैसी समस्याओं से बचने के लिए आवश्यक है की हम आज गुरु घासीदास के दर्शन को जाने, समझे और अपने जीवन में उतारने का संकल्प लें। तभी समाज और देश विकास कर सकेगा। आवश्यकता है कि हम मानवीय मूल्यों को पुनः संचारित करें, उन्हें दृढ़ बनाए। इसके लिए हमें गुरु घासीदास के उपदेशों को अपने जीवन में उतारना होगा।

संदर्भ सूची :–

1. माटी बोलती है, मेघनाथ कन्नौजे, अंकुर प्रकाशन, 1984, पृष्ठ – 31।
2. सत्य ध्वज पत्रिका, 18 दिसंबर विशेषांक, 1995, अंक 20, पृष्ठ – 8,10।
3. भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, पृष्ठ – 5।
4. शिक्षा दर्षन, डॉ0 रामशकल पाण्डये, पृष्ठ – 3।
5. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, देहरादून हल्द्वानी, एम0 एड0 पाठ्यक्रम, पृष्ठ – 6।
6. गुरु घसीदास संघर्ष, समन्वय और सिद्धाँत, डॉ0 हीरालाल शुक्ल, सिद्धार्थ बुक्स दिल्ली, पृष्ठ – 200,195।
7. सतनाम दर्शन, डॉ0 टी0 आर0 खूंटे, सतनाम कल्याण एवं गुरु घासीदास चेतना संस्थान, रायपुर छत्तीसगढ़ पृष्ठ – 328।
8. माटी बोलती है, मेघनाथ कन्नौजे, अंकुर प्रकाशन, 1984, पृष्ठ – 36 ।
9. वही पृष्ठ – 37, 38।
10. वही पृष्ठ – 39, 40।
11. सतनाम संदेश मासिक पत्रिका, छत्तीसगढ़ प्रगतिशील सतनामी समाज, रायपुर छत्तीसगढ़, मार्च 2018, पृष्ठ – 18।
12. तपश्चर्या एवं आत्म चिंतन गुरु घासीदास, बलदेव प्रसाद/जयप्रकाश मानस/रामशरण टण्डन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ – 161।

आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में गौतम बुद्ध के दार्शनिक चिंतन की उपयोगिता

तुकेश कुमार,
सहायक प्राध्यापक,
श्रीराम शिक्षा महाविद्यालय,
राजनांदगॉव, छत्तीसगढ़

डॉ. श्रीमती प्रभा. आर. कुरुप,
सहायक प्राध्यापक,
मैत्री कालेज, रिसाली, भिलाई,
जिला दूर्ग, छत्तीसगढ़

दार्शनिक चिंतन और शिक्षा में उच्चकोटि का सह– सबंध होता है। दार्शनिक चिंतन के बिना शिक्षा और शिक्षा के बिना दार्शनिक चिंतन पंगु रह जाते है। यथार्थ में इन दोनो के बीच एक दूसरे के साथ अन्योन्यात्रित सबंध होता है और दोनो एक दूसरे के पूरक है। शिक्षा और दार्शनिंक चिंतन के पारस्परिक घनिष्ठ सबंध को एक अन्य तथ्य के विषय में भी कुछ विचार करते हुए देखे गये है। उन्होने इस रहस्य को समझ लिया कि उनकी दार्शनिक मान्यताओं को शिक्षा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और उने आदर्शो की प्राप्ति के लिए शिक्षा की सहायता आवश्यक है।

प्रख्यात शिक्षाशास्त्री जॉन डीवी ने कहा है–''शिक्षा–दर्शन सामान्य दर्शन का दीन सबंध नही है, यद्यपि दार्शनिको ने भी अब तक यही माना है। अंततः यह दर्शन का महत्वपूर्ण पक्ष है, क्योकि शिक्षा प्रक्रिया द्वारा ही ज्ञान प्राप्त होता है।

गौतम बुद्व एक महान दार्शनिक एवं विचारक थे बुद्ध के युग से लेकर आधुनिक युग तक बुद्ध का दार्शनिक चिंतन शिक्षा को किसी ना किसी प्रकार से प्रभावित करता रहा है। दार्शनिक चिंतन के अभाव में शिक्षा की और शिक्षा के अभाव में किसी प्रकार के चिंतन की कल्पना नही की जा सकती है, बुद्ध ने शिक्षा पर ही नही बल्कि सुशिक्षा पर बल दिया। शिक्षा तो वैदिक गुरुकुलों में भी दी जाती थी और बुद्व के बाद भी विभिन्न संस्थानों के द्वारा दी जाती रही है, लेकिन बुद्व की शिक्षा की अवधारणा वैदिक, जैन, इस्लाम और वर्तमान अंग्रेजी शिक्षा की अवधारणाओं से बिल्कुल भिन्न है। वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था में नैतिक मूल्यों का नितांत अभाव दुष्टिगोचर होता रहा है।

बुद्व के द्वारा महामंगल सुत्त में एक देवता को उपदेश देते हुए कहा गया है जिसके अंर्तगत बुद्ध की शिक्षा का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है। बुद्ध महामंगल सुत्त में मनुष्य और मनुष्यत्तर जीवों को उपदेश देते है–''मनुष्य और देवताओं (मनुष्य का विशिष्ठ वर्ग) को बहुश्रुत होना चाहिए, शिल्पी सीखनी चाहिए विनयशील एवं सुशिक्षित होना चाहिए। बुद्व के इस कथन से स्पष्ट हो जा है कि उनकी शिक्षा का साध्य आधुनिक शिक्षा के साध्य से अतिउत्तम थे। बुद्व की समस्त शिक्षा नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित है। बुद्व अनात्मवादी एवं अनीश्वरवादी थे। इसलिए उनकी शिक्षा नैतिक मूल्यों के इर्द–गिर्द घूमती रहती है। यदि दार्शनिक एवं तीक्षण दृष्टि से अवलोकन किया जाये जो बुद्व की सुशिक्षा और नैतिक मूल्य एक दूसरे के पर्याय होते है, जिन्हे अलग करके कभी नही देखा जा सकता। प्रत्येक दार्शनिक एवं नीतीशास्त्र के विद्ववान ने अपने नीतीशास्त्र के सृजन के समय कुछ सर्वोच्च मूल्यों का प्रतिपादन किया है जो क्रमशः इस प्रकार है–1.प्रज्ञा 2. शील 3. मैत्री 4. करुणा।

बुद्व के नीतीशास्त्र में अनेक मानवीय मूल्य देखे जा सकते है जो संपूर्ण त्रिपिटक है में इधर–उधर विद्यमान है। धम्मपद की अनेक गाथाओं सुत्तनिपात के अनेक संदर्भो में इन मूल्यों का अवलोकन किया जा सकता है। गौतम बुद्व ने कहा है, ''सभी धर्म पहले मन में उत्पन्न होते है, मन ही मनुष्य व मनोनय है।'' जब मनुष्य मलीन मन से बोलता व कार्य करता है तब दुख उसके पीछे–पीछे वैसा ही हो लेता है जैसे गाड़ी के पहिये बैल के पैरों के पीछे पीछे इस तरह धर्म मानव जीवन में आवश्यक है। आज भारतीय समाज में ही नही अपितु विश्व समाज बड़े संकट के दौर से गुजर रहा है। शिक्षित एवं संपन्न जनता शिक्षा हेतु भौतिक आकृष्टता के फलस्वरुप भी उसकी तृष्णा अभी सूखी नही है वह हृदय में रिक्तता, असंतोष और अशांति से पीड़ित है। अतः ऐसे विप्लवपूर्ण समाज को सुधार की आवश्यकता है। राष्ट्र में शांति और सद्भावना का निर्माण करना है, इस उन्नत दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर गौतम बुद्व द्वारा प्रतिपादित– गुरु शिष्य सबंध, सामाजिक शिक्षण, जीवन शिक्षण, नारी का समस्तरीय सबंध, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय, स्वावलम्बी शिक्षा आदि की शैक्षिक आवश्यता प्रतीत होती है।

धम्मपद में एक गाथा है' शुभ कर्म करनें में शीघ्रता करें, पापों से मन को हटाऍ, शुभ कर्म करनें में ढील देने से मन पाप में रत होने लगता है। इसलिए चित्त को परिशुद्व रखना ही गौतम बुद्व की शिक्षा है। वैदिक काल के बाद बौद्वकाल का आरंभ हुआ। बौद्वकाल में शिष्यों की शिक्षा बुद्वविहार में दी जाती थी, जिसमें निःस्वर्थभाव से जातिपांति और धर्मविहिन लोगो की शिक्षा के द्वारा बिना किसी भेदभाव के सदैव खुले रहतें थे बौद्वकालीन शिक्षा में नैतिक जागरण पर अत्यधिक बल दिया जाता था शिक्षा जनतांत्रिक आर्दशवाद और नैतिक अवधारणा पर आधारित थी जिसमें अहिंसा का प्रमुख रुप से अवबोधन होता था। यह शिक्षा भारत की प्राचीन संस्कृति तथा परम्परागत् चिंतन से प्रभावित होने पर भी पूर्णतया मौलिक तथा आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरुप आज भी है। यथार्थ में बुद्ध की शिक्षा के दो साध्य है प्रथम साध्य के अनुसार

व्यक्ति के व्यक्तिगत् पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को समृद्व एवं सुखपूर्ण बनाना है। इसलिए बुद्व ने भिक्खुओं को उपदेश देते समय कहा था' हे भिक्खुओं बहुजन के हित के लिए, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर कल्याण करने के लिए तुम विचरण करो और ऐसे धर्म का प्रसार करो जो आदि में कल्याणकारी हो, मध्य में कल्याकारी हो और अंत में कल्याणकारी हो। बुद्व के ये विचार स्पष्ट एवं सुस्पष्ट है। इन विचारों से यह प्रमाणित होता है कि बुद्व व्यक्ति को समस्त प्रकार के दुखों से निवृत्त कराना चाहतें थे।

बुद्ध की शिक्षा का द्वितीय सर्वोच्च साध्य निर्वाण की प्राप्ति करना है। निर्वाण की स्थिति में मनुष्य संसार के सभी प्रकार के दुखों से निवृत्त हो जाता है और वह व्यक्ति पुनः इस जगत में नही आता। बुद्व के अनुसार अविद्या अविज्जा और भारत के अनेक दार्शनिकों के अनुसार माया समस्त अज्ञान एवं दुखों का मुख्य कारण होते है। दूसरे शब्दों में समस्त दुख अविद्या, माया और अज्ञान के कारण से उत्पन्न होते है। बुद्व ने अपनी शिक्षा में उन बिंदुओं एवं विचारों का प्रतिपादन किया है जिसमें अविद्या, अज्ञान और माया को समाप्त व जगत के समस्त दुखों से निवृत्ति प्राप्त करता हुआ, व्यक्ति निव्राण को प्राप्त करता है। बुद्ध की शिक्षा एवं दार्शनिक चिंतन के मुख्यतः चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, प्रतीत्य,–समुत्पाद, अनात्मवाद और अनीश्वरवाद आधार है। समस्त बुद्ध के विचार एवं चिंतन इन्ही पर निर्भर करते है। बुद्ध के समस्त नीतिशास्त्र का आधार चार आर्य सत्य एवं आर्य अष्टांगिक मार्ग है। प्रतीत्य–समुत्पाद, अनात्मवाद, अनीश्वरवाद बुद्ध के वैज्ञानिकता के मुख्य स्तंभ है। इनके अनुशीलन से व्यक्ति और समाज से अविधा, अज्ञान और माया की समाप्ति हो जाती है और सत्यःज्ञान की ओर व्यक्ति अग्रसर होने लगता है। बुद्ध की शिक्षा जादू–टोने, देवी एवं ईश्वरीय शक्ति पर विश्वास नही करती। यह शिक्षा कर्मवाद पर विश्वास करती है। बुद्ध ने अनेक संदर्भो में अपने भिक्खुओं और उपासकों से कहा कि वह बुद्ध तो केवल मार्गदाता है, मोक्षदाता नही। मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति मनुष्य को स्वंय चलकर करनी पड़ेगी। इसलिए बुद्ध की शिक्षा मनुष्य को कोरी कल्पनाओं में न घुमाकर कर्मवादी बनाती है।

बुद्ध की शिक्षाओं का आधार प्रज्ञा, शील, मैत्री और करुणा है, जिसके अनुशीलन से निश्चित रुप से यह कहा जा सकता है कि मनुष्य व समाज अपने सर्वांगीण विकास की प्राप्ति कर सकता है। ''प्रज्ञा'' मनुष्य में नीर, क्षीर, विवेक, बुद्वि का कार्य करती है। इससे व्यक्ति विद्ववान बनता है। शुभ–अशुभ, मंगल–अमंगल, अच्छा–बुरा, सही–गलत और सत्–आनत् कर्मो में भेद कर सकता हे। प्रज्ञा से व्यक्ति अविद्या, अज्ञान और समस्त प्रकार के संशयों को दूर करके अंधविश्वास और पाखण्डों को समाप्त करता हुआ अपने एवं समाज के जीवन में वैज्ञानिक दुष्टिकोण एवं प्रज्ञा समस्त सफलताओं की प्रथम कुंजी होती है। इसलिए शिक्षा में समावेश अत्यंत आवश्यक है, जिससे छात्र–छात्राओं का व्यक्तित्व प्रज्ञावान बन सके और उनके जीवन में वैज्ञानिक दुष्टिकोण का प्रादुर्भाव हो सके।

आज भी भौतिकता की अंधी दौड़ में शील का अभाव पाया जाता है। इसी शील के अभाव के कारण भारतीय समाज में भ्रष्टाचार, बेईमानी व व्यभिचार का बोलबाला है। शील का तात्पर्य होता हे– उच्च कोटि की नैतिकता। यदि शिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम में शील मूल्य का समावेश का दिया जाता है तो समस्त छात्र–छात्राऍ शील का अनुशीलन करते हुए अपने व्यक्तित्व एवं समाज का सर्वांगीण विकास करके राष्ट्र को सशक्त बना सकेगें।

आज देश व विदेश में मैत्री का अभाव पाया जाता है। बुद्ध का यह मूल्य, यह प्रकट करता है कि मनुष्य को केवल मनुष्यों के साथ ही मैत्रीपूर्ण व्यवहार एवं आचरण नही करना चाहिए, बल्कि उसे पशुओं, जीव जंतुओं के प्रति भी मैत्री का भाव रखना चाहिए। इसके लिए मनुष्य को उनकी हत्या कभी नही करना चाहिए। इतना ही नही, बल्कि बुद्व ने मैत्री की भावना को और भी व्यापक करते हुए हरे–भरे पेड़ पौधों के साथ मैत्री का भाव रखने के लिए कहा है। इसे लिए बुद्व ने जीव–जंतुओं और पेड़–पौधों के संरक्षण एवं संर्वधन के प्रयास के लिए मनुष्यों को उपदेश दिया है। बुद्ध की मैत्री भावना से बढ़ते हुए प्रदूषण को समाप्त करके पर्यावरण संरक्षण किया जा सकता है। यदि इस मैत्री भावना को शिक्षा में सवमावेश कर लिया जाता है तो इससे भाई–चारे की भावना बढ़ेगी और समाज व देश सुख–शांति की ओर अग्रसर हो सकेगा तथा विश्व–बंधुत्व की भावना को बल मिलेगा।

बुद्ध ने करुणा मूल्य के उपर बहुत बल दिया है, इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को गरीबों, दीन–दुखियों और पशुओं के प्रति करुणा भाव रखना चाहिए। शब्दों से ही नही बल्कि दान देकर भी मनुष्य को करुणा प्रदर्शित करना चाहिए, जिससे कि सुख संवृद्वि बढ़ाई जा सके। यदि लोगो में करुणा मूल्य पाया जाता है तो वे राष्ट्रीय आपदा के समय लोगो की सहायता करके महान कार्य कर सकते है। करुणा की भावना से देश में व्याप्त आतंकवाद को भी समाप्त किया जा सकता है। यदि यह मूल्य विद्यालयों के पाठ्यक्रम में जोड़ दिया जाता है तो समाज व देश से दुखों को समाप्त करने के लिए प्रभावकारी कदम उठाए जा सकते है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली विशुद्व भारतीय न होकर अन्य शिक्षा प्रणालियों के द्वारा उत्पन्न संकर शिक्षा प्रणाली है, जिसमें भारतीयता और भारतीय मूल्यों का लुप्त होना स्वाभाविक है। इस स्थिति में इस शिक्षा प्रणाली के कारण अनेक प्रकार के दुष्परिणाम, जैसे चरित्र हीनता, शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, अन्याय, भ्रष्टाचार, भाषावाद, राज्यवाद, अलगाववाद, जातिवाद, झूठ, नशाखोरी, बेईमानी, पनप रहे है। इसलिए भारतीय समाज व देश दिन प्रतिदिन शक्तिहीन हो रहा है। अनेक बार विश्व के देशों में भ्रष्टाचार को मापदंड मानकर मूल्यांकन किया गया है तो भारत का स्थान शर्मनाक जगह पर रहा है। यूँ तो इसके अनेक कारण हो सकते है, लेकिन यहॉ कि शिक्षा प्रणाली उसका मुख्य कारण है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का अभाव हो गया है। इस अभाव के कारण ही लोगो के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार तीव्र से फैल रहा है, जिसके नतीजे यह प्राप्त हो रहे है कि समाज में जो निर्धन वर्ग है वह दिन–प्रतिदिन निर्धन होता जा रहा है, जो सम्पन्न वर्ग है वह दिन–प्रतिदिन सम्पन्न होता चला जा रहा है। इस असमानता से समाज व देश का संतुलन बिगड़ रहा है, जिसके फलस्वरुप देश में बहुत बड़ा विद्यटन उत्पन्न हो रहा है और इसका एक मात्र श्रेय भारतीय शिक्षा पद्वति को जाता है।

संसार में बुद्व की शिक्षा ही एक ऐसी शिक्षा है जो नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का सार्थक एवं व्यवहारिक रुप प्रस्तुत करती है। यदि भारत की शिक्षा प्रणाली में बुद्व के द्वारा प्रतिपादित मूल्यों का समावेश कर दिया जाता है तो आधुनिक भारतीय शिक्षा निश्चित रुप से नैतिक मूल्यों से निहित होगा, जिसमें समस्त मनुष्य, समाज, देश एवं पर्यावरण सुख शांति पूर्वक रह सकेगें और बुद्व के साध्य ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'' की ओर अग्रसर होते हुए और मानव कल्याण करते हुए, विश्व शांति की स्थापना कर सकेंगें।

संर्दभ सूची :–

1. उपाध्याय, बलदेव : वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा मंदिर, वाराणसी, 1983।
2. कीथ, ए.बी. : बुद्विष्ठ फिलोसोफी सीलोन, वाराणसी, 1963।
3. ललित विस्तार : अनु.पी.एल.वैध, मिथिला दरभंगा,1958।
4. जातक अट्ठकथा : अनु, भिक्खु धर्मरक्षित भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, 1951।
5. अम्बेडकर बी.आर. : जातिप्रथा उन्मूलन, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1993।
6. रावत भ्रदशील : चरित्र निर्माण में पंचशील की भूमिका, भारतीय बौद्व महासभा, नईदिल्ली 2001।
7. चंचरीक कन्हैया.लाल : भगवान गौतम बुद्व जीवन और दर्शन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नईदिल्ली।
8. जायसवाल,सीताराम : शिक्षा दर्शन, प्रकाशन, केन्द्र, जयपुर, सीतापुर, 1991।
9. तिवारी सुभाषचन्द्र : प्राचीन तथा नवीन शिक्षण विधियॉ, भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी, 2001।
10. धर्मकीर्ति : बालोपयोगी, जातक कथाऍ, एमटी यूनिवर्सिटी प्रेस, नईदिल्ली, 2005।
11. सिंह रघुनाथ : बुद्व कथा, हिंदी प्रचार संस्थान, वाराणसी, 1968।

कबीर दर्शन का व्यापकता

डॉ. प्रणु शुक्ला, सहायक आचार्य हिंदी
राजकीय कन्या महाविद्यालय चौमूँ, जयपुर (राजस्थान)

शोध सार :–

प्रस्तुत शोध आलेख में हिंदी साहित्य में कबीर के दर्शन पर व्यापक दृष्टिपात किया गया है तथा बताया गया है कि किन बिंदुओं के आधार पर कबीर के दर्शन को हिंदी साहित्य में देखा जा सकता है। कबीर हिंदी साहित्य की वह अभूतपूर्व निधि हैं, साहित्य आकाश के देदीप्यमान सूरज हैं, जिनके बारे में कुछ लिखना सूरज को दीपक दिखाने के बराबर होगा, लेकिन फिर भी मैंने अपने आलेख में यह दुष्कर प्रयास किया है तथा कबीर के दर्षन को समाविष्ट रूप में पाठकों के सामने लाने का प्रयास किया है। मैंने अपने आलेख में कबीर के दर्शन से संबंधित समस्त पहलुओं को समेटा है तथा बताया है कि कबीर हिंदी साहित्य के भक्ति काल में प्रथम पूज्य क्यों है। कबीर का दर्शन विश्व साहित्य में अनूठा है, जिसे उन्हें सिद्ध तथा नाथ एवं हठयोग के माध्यम से पूर्ण किया है। इन सबसे परे सर्वप्रथम समाज सुधार उनका प्रमुख और प्रबल लक्ष्य था।

शोध आलेख :–

भारतीय जनमानस के नैतिक चरित्र निर्माण मैं हमारे संतो की अत्यंत मौलिक भूमिका रही है चाहे वे संत सगुण भक्ति धारा के हो या निर्गुण भक्ति धारा के अथवा सूफी संत धारा के। हमारे संतो के वचन लोकहितकारी हैं। अध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति दर्शन और साहित्य में दो प्रकार से हुई है अर्थात् विद्वानों व पंडितों ने इसे दो रूपों में बढाया –परम्परावादी व कठिन। जबकि संत कवियों ने इसे बोलचाल की भाषा का जामा देकर बिल्कुल साधारण बना दिया है, क्योंकि जो सबका है उसे सहज होना चाहिए। बाह्य साधनाओं को नकारते हुए ईश्वर को ह्रदय से प्रार्थना करना और अपनी मौज और आत्मा की मस्ती में डूबे रहना, इन सूफी व संतों की परंपरा रही है। इन्हीं भावों का पुट बाबा फरीद की रचनाओं में यत्र तत्र मिलता है। बाद में संत कबीर आदि संतों ने इसी प्रेम और मस्ती के संदेश को जन–जन तक पहुंचाया– कागा सब तन खाइयो चुन चुन खाइयो मांस।। दो नैना मत खाइयो मोहे पिया मिलन की आस।।

विरह की तड़प के सामने इन संतों ने मिलन के सुख को नकार दिया है क्योंकि वह जानते हैं कि प्रेम की पीड़ा ही दिल की सारी कलुषता को निर्मल कर देती है। मिलना किससे वह तो सदा मिला हुआ है "जो मृग को कस्तूरी।" संत कबीर भारतीय संत परंपरा के महान संत थे। संत कबीर की एकता को लेकर कोई मतभेद नहीं है दरअसल उस युग में जब धार्मिक ठेकेदार स्वार्थ के चूल्हे पर अपनी उन्माद रूपी रोटियां सेक रहे थे तब संत कबीर का प्रादुर्भाव हमें उस समय के बारे में बताता है जबकि उनकी कितनी आवश्यकता थी। वास्तव में आत्मा रूपी विरहणी को परमात्मा रूपी प्रियतम के प्रेम में इतना गाफिल कर लिया की तड़प विश्वव्यापी हो गई। कबीर के काव्य का आधार स्वान्तः सुखाय है। वह जो देखते हैं वही लिखते हैं उनका स्पष्ट कथन है –"मैं कहता आंखन की देखी तू कहता कागज की लेखी।" अनुभूति पर आधारित होने के कारणों का काव्य सहज स्वाभाविक ह्रदयस्पर्शी बन गया है। इन का संपूर्ण काव्य मुक्तक शैली में है, वह अपनी शैली के स्वयं निर्माता हैं। इनकी काव्य की भाषा जन भाषा है। कबीर का दर्शन सहज दर्शन है। यह दर्शन उस समय जब सिद्धों और नाथों का बाहुल्य था तब भक्ति के विविध स्वरूप स्वरूपों का प्राकट्य रामानंद ने करवाया था। रामानंद की इसी परंपरा को कबीर ने जीवित किया इसलिए इनके दर्शन पर नाथ संप्रदाय, सिद्ध संप्रदाय तथा रामानंद संप्रदाय का व्यापक प्रभाव पड़ता है हालांकि कबीर की वाणियों सिद्ध हुआ है कि वे कवि बाद में है पहले समाज सुधारक है। 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' ने कहा है– "जो ब्रह्म हिंदुओं के विचार पद्धति में ज्ञान मार्ग का एक निरूपण था उसी को कबीर ने सूफियों के ढर्रे पर उपासना का विषय ही नहीं, प्रेम का विषय भी बनाया और उसकी प्राप्ति के लिए हठयोगियों की साधना का समर्थन किया इस प्रकार उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ, सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पंथ खड़ा किया। उनकी वाणी में यह सब अवयव स्पष्ट लक्षित होते हैं।"[1] अब हम संत कबीर के दर्शन के बारे में बात करेंगे क्योंकि संत कबीर का दर्शन न केवल आत्मानुभूति का दर्शन है, बल्कि नस नाडी में भोगा गया दर्षन है, महज देखा गया नहीं। कबीर के दार्शनिक चिंतन को निम्न रूपों में देखा जा सकता है–

1–ब्रह्म – "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना ,
राम नाम का मरम है आना।
तथा कस्तूरी कुंडली बसै, मृग ढूंढै बन माहि।
ऐसे घट–घट राम हैं, दुनिया देखत नाहीं।।"[2]

कबीर ब्रह्म को संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त और संपूर्ण सृष्टि को ब्रह्म में व्याप्त कहते हैं "खालिक खलक, खलक में खालिक, पूरा रह्यो हो सब कोई।।" जिस प्रकार फूल में उसकी गंध परिव्याप्त रहती है उसी प्रकार ईश्वर सारे संसार में व्याप्त है फूल की गंध की अनुभूति की जा सकती है उसे आंखों से नहीं देखा जा सकता है उसी प्रकार सृष्टि में व्याप्त ब्रह्म की अनुभूति संभव है, प्रत्यक्ष दर्शन नहीं –

राजाराम कवन रंगे जैसे परिमल पूहुप संगे। "कबीर साधक थे– उनकी साधना के दो रूप हैं कर्म योग और हठयोग। वह कर्म योगी के समान संसार की मोहमाया से निर्लिप्त रहते थे उनकी कथनी और करनी में साम्य था। परंतु उन्होंने संसार के संघर्ष से पलायन का उपदेश कभी नहीं लिया वह उस से टक्कर लेने के पक्षपाती थे।"[3]

2 जीव – कबीर आत्मा को जीव प्राण मन बुद्धि एवं देह से विलक्षण मानते हैं। आत्मा जब शरीर के सहयोग से इंद्रियों के अधीन होकर अपने को भूल जाती है, तभी जीव कहलाती है। यह जीवात्मा शरीर में प्रवेश करते ही अपने वास्तविक रूप को विस्मृत करके अपनी स्मृति को खोकर भ्रांति स्वरूप विभिन्न प्रकार की हो जाती है। जीवात्मा माया होकर ही संसार में जन्म लेती है तथा मृत्यु को प्राप्त करती है। सांसारिक आकर्षणों में लीन होता है एवं शरीर के धर्म को अपना धर्म मानकर सुख दुख का अनुभव करने लगता है। परंतु जब अज्ञान का आवरण हट जाता है तो जीव ब्रह्म में अभेद हो जाता है। आत्म स्वरूप की विस्मृति के कारण ही द्वैत भाव का आभास होता है, अतः कबीर बार–बार अपने स्वरूप को पहचानने के लिए कहते हैं।

"आप ही आप विचार यह तब केता हुई आनंद रे" जिस प्रकार पानी से बर्फ बनती है तथा बर्फ पिघल कर पुनः अपने वास्तविक स्वरूप में पानी परिवर्तित हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञान युक्त जीव जब अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है तब माया का आवरण हट जाता है। अज्ञान मिट जाता है तो ब्रह्म और जीव में अभेद हो जाता है– पानी ही तैं हिम गया है भया,हिम ह्वै गया बिलाइ। जो कुछ था सो ही भया, अब कुछ कहा न जाई।।[4] यह शरीर पंचतत्वों को मिलाकर निर्मित किया गया है, किंतु समझने की बात यह है कि वह तत्व मूलतः क्या वस्तु है और उसी प्रकार यदि जीव तत्व को हम बहुधा क्रमबद्ध कह दिया करते हैं तो फिर कर्म कहां से आ गया सच तो यह है कि हरि मात्र ही सभी कुछ है।[5]

3. जगत– परमार्थिक दृष्टि से सभी संत जगत को स्वप्नवत मिथ्या मानते हैं। शंकराचार्य के "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" महावाक्य की भांति कबीर भी ब्रह्म की एकमात्र सत्ता स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार रस्सी में सर्प का भ्रम होता है, मृग को रेगिस्तान में प्रत्यक्ष जल का भ्रम होता है उसी प्रकार अविवेक के कारण ही जगत वास्तविक ज्ञात होता है– "रज्जू महि सर्प भासै, सीप मैं रूपौं यथौ।। मृग तृष्निका जल बुद्धि देवै विश्व मिथ्या है तथौ।।" कबीर जगत को बाजीगर की बाजी और माया का खेल मानते हैं जिसमें भूला हुआ जीव परम तत्व का विचार नहीं करता– 'माया मोह सकल संसारा यही विचार न काहू बिचारा।।' लोग अपने अज्ञान वर्ष इस झूठे सांसारिक सुख को सच्चा सुख मान लेते हैं तथा मन में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं जबकि संसार तो काल का चलाना है इसके कुछ प्राणी काल का ग्रास बन चुके हैं और कुछ उसकी पकड़ में जकड़े हुए काल का ग्रास बनने की प्रतीक्षा में है इस झूठे सुख को सुख सही मानते एक और संपूर्ण जगत को भ्रम मात्र, माया का प्रपंच, बाजीगरी की बाजी, रेन का सुख सपना, इत्यादि मानकर उसे क्षणभंगुर नाशवान अनित्य तथा मिथ्या मानते हैं और वहीं दूसरी ओर जगत को ब्रह्म का रूपांतरण ब्रह्म का दृश्य आत्मक रूप कहकर जगत को सत्य मानते हैं। अतः संतो के जगत विषयक विचार परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं परंतु सूक्ष्म दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो इसमें विरोध नहीं है जहां तक संसार से आसक्ति रखने का प्रश्न है सम्पूर्ण जगत को मायाजाल कहकर मिथ्या घोषित किया जिससे सामान्य प्राणी इसके जाल में फस कर अपने से दूर ना हट जाए दूसरी और व्यवहारिक दृष्टि से रखते हुए कबीर ने जगत की सत्ता को स्वीकार करते हुए उसे कर्तव्य का क्षेत्र माना है जहां प्राणी साधना द्वारा अपने साध्य तक पहुंचने में सफल हो सकता है।

4. मोक्ष – सभी संत आत्मा और परमात्मा के मध्य अद्वैत का भाव ही मुक्ति मानते हैं उनके अनुसार अद्वैत अवस्था ही मुक्ति है। कबीर ने कहा तत्व ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात अज्ञान का अनावरण हट जाता है समाप्त हो जाता है, यही मुक्ति है– "मोक्ष के लिए जीव का अभाव लुप्त हो जाना आवश्यक है तब जब तक सांसारिक कार्यों में जीव का कर्तव्य बोध होता है आपा का अत्यंतिक तिरोभाव नहीं हो जाता, तब तक उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। संत कवि माया की सत्ता और जीव ब्रह्म की एकता को स्वीकार करते हैं। इस एकता में माया बाधक है। ज्ञान से इस माया का नाश किया जा सकता है, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए वे विशिष्ट अतिथियों को की भक्ति भावना को तो स्वीकार करते हैं, किंतु उनकी द्वैत भावना को नहीं। संतों ने ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ज्ञान और भक्ति दोनों का सहयोग माना है ज्ञान भक्ति के अभाव में पंगु है।[6]

5. माया – संतों ने ब्रह्म और जीव में भेद उत्पन्न करने वाली प्रबल अवरोधक शक्ति के रूप में माया को पहचाना और माया के स्वरूप को बताकर जीवो को माया के आकर्षण से बचने के लिए प्रेरित किया संतों ने माया को बलेश्वर रूपा, बंधन रूपा तथा ज्ञान रूपा भी कहा है। माया के आकर्षण में उलझ कर जीव जन्म मरण के बंधन में फंसकर अनेक कष्ट उठाता है तथा अपने स्वभाव को भूल जाता है माया से भ्रमित होकर जीव शरीर एवं इंद्रियों को अपना स्वरूप समझ लेता है तथा इसी अज्ञान

के कारण वह अपने को करता भोक्ता आदि समझकर दुख उठाता है। कबीर माया को त्रिविध ताप दुख और संताप का ऐसा वृक्ष मानते हैं जिसमें शीतल छाया का नाम नहीं और जिसके फल अत्यंत खट्टे हैं जिसका तन भयंकर ताप संयुक्त है– माया तरुवर त्रिविध का साखा दुख संताप शीतलता सपने नहीं फल फीको तनी ताप।।

संसार के बंधन का मूल कारण माया ही है, अतः संसद संतो ने माया की अनेक प्रकार से बचना की है कंचन, कामिनी, धन, वैभव, पुत्र, कला सब माया के मूर्त रूप हैं। इनके अतिरिक्त काम, क्रोध, मोह, अहंकार भी माया के सहायक तत्व हैं, जिनके वशीभूत हो जीव ने अपने वास्तविक स्वरूप को विस्मश्त कर बैठता है निर्भय होकर ईश्वर की शरण में जाने से माया के बंधन से मुक्ति संभव है । "शंकर और कबीर के माया बाद में सबसे बड़ा अंतर यह है कि शंकर की माया केवल भ्रम मूलक है उसे रस्सी में सांप का या सीप में रजत का या मृगजल में जल का भ्रम हो सकता है। यह नाम रूपात्मक संसार असत्य होकर भी सत्य के समान भाषित होता है किंतु कबीर में इस भ्रम की भावना के अतिरिक्त माया को एक चंचल और छद्मवेशी कामिनी का रूप दिया है जो संसार को अपनी और आकर्षित कर वासना के मार्ग पर ले जाती है। माया एक विलासिनी स्त्री है।"7 मनुश्य की मानसिक अवस्था संस्कार योग्यता क्षमता आदि को देखते हुए अत्यंत प्राचीन काल से भारतीय साधना में परम पद प्राप्त करने के लिए चार साधना मार्ग प्रचलित हैं–

1. कर्म 2. ज्ञान 3. योग

4. भक्ति – प्रति व्यक्ति स्वयं अपनी आस्था एवं क्षमता अनुसार किसी भी मार्ग को अपना लेता है। संत साहित्य में इन सभी साधनों में एक अद्भुत समन्वय कर इनका सहज विकृत रूप सहित साधना के रूप में मिलता है। जिसके प्रति किसी भी मत अथवा संप्रदाय को मानने वाले के मन में विरोध नहीं है, न था। यह सहज साधना परंपरा में प्राप्त होते हुए भी संतों की सहानुभूति का प्रस्ताव प्राप्त कर एक नवीन रूप धारण किए हुए थी। जिसे न तो पूर्णता कोई नवीन साधना मार्ग कहा जा सकता था और न ही प्राचीन परंपरा का अनुकरण ही संतो की इस साधना में कर्म ज्ञान योग और भक्ति का सहज सुंदरम समन्वय है। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि "सगुन उपासक भक्तगण भगवान के विग्रह की परम परिक्रमा सेवा नाम जप आदि के द्वारा जो भक्ति दर्शाते हैं वह सभी सहज समाधि के साधक के साधारण आचरण द्वारा ही सिद्ध हो जाती है तथा फिर योगी लोग जिन क्रियाओं से परम लक्ष्य को प्राप्त करने का दावा करते हैं। वह भी उन्हें नहीं करनी पड़ती यही उनकी सहज समाधि है, जिसमें लौ लगते ही मन थक जाता है और वाणी मूक हो जाती है।" सहज साधना में न ज्ञान की आवश्यकता है और ना ध्यान की ना धारणा करने की, इसमें तीर्थ, व्रत, नेम अधिक करने की। इसी प्रकार से बाह्याडंबर की भी आवश्यकता नहीं है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "साधना के क्षेत्र में वे युग युग के गुरु थे और साहित्य के क्षेत्र में भविष्य सृष्टा सच्चे कर्मयोगी होने के कारण वह युग युग के गुरु थे उन्होंने संत काव्य का पथ प्रदर्शन कर साहित्य ..... 8"

कबीर तो सहज साधना में वेद पुराण पढ़ने की आवश्यकता नहीं समझते क्योंकि सहज योग द्वारा तो बिना पढ़े ही अनायास ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है– पद गुने मति होई मैं सहजे पाया सोई।। भक्ति पूर्वक राम नाम मेलो लगाने से भक्ति हद हो जाती है और सहज भाव से सहज समाधि लगाकर आत्म स्वरूप में परिचय हो जाता है – सहजे राम नाम लियो लाई राम नाम कहीं भक्ति दिढाई।

राम नाम जापा मनमाना तीन तो निज स्वरूप पहिचानो।। कबीर मन ह्रदय आचरण की शुद्धता या सहज साधना के मुख्य अंग मानते हैं अतः कबीर ने अपनी बानियों में मन साधना करके मन को निर्मल करने इंद्रिय संयम द्वारा आचरण की शुद्धता पर विशेष बल दिया है। "अपने कृतित्व को समाज से मिलाकर और अपने व्यक्तित्व को रचना से अभिन्न करके वे सच्चे अर्थों में वे सुकवि बनते हैं जिनके ऊपर जरा मरण के नियमों का असर नहीं होता कबीर इसी कोटि के रचनाकार हैं बडा रचनाकार अनुकरणीय नहीं होता पर यदि कोई अपना नाम हटाकर फिर उसकी नकल करना चाहें तो इसे उसके लिए छूट मिल सकती है। इस मायने में क्षेपक को बड़े कवि की उप रचना के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।"9

6. निर्गुण ब्रह्म की उपासना – संत काव्य पहली प्रवृत्ति निर्गुण ब्रह्म की उपासना रही है इनका निर्गुण ब्रह्म बौद्ध साधकों के शून्य से पृथक है यह सृष्टि के कण–कण में व्याप्त है तथा वहीं प्रत्येक जीवधारी की सांस में समाया हुआ है, वर्णन से परे है उसका केवल अनुभव किया जा सकता है इस कारण कबीर ने स्पष्ट कहा है –पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।। कहीं बे को शोभा नहीं देखत ही परवान।।

7. मिथ्या आडम्बरों व रूढियों का विरोध – कबीर ने मिथ्याडंबरों एवं रूढ़ियों का विरोध किया है। इसका प्रमुख कारण यह रहा है कि संतमत बिरयानी सिद्धू एवं हट योगियों के सिद्धांतों से पर्याप्त प्रभावित है इन शब्दों और योगियों की उन्हें सामाजिक बंधनों और आडंबर की कटु आलोचना की है। यही प्रवृत्ति कबीर के काव्य के अंतर्गत मिलती है। कबीर ने तिलक

छापा माला रोजा नमाज एवं योग की क्रियाओं को व्यर्थ एवं निसार बताया है और जो मानते थे कि उन्हे फटकार देकर सही मार्ग पर लाने का प्रयास किया है।

8. गुरु की महत्ता – संत काव्य में सभी संतो ने गुरु को विशेष महत्व दिया है अधिकांश संतों ने गुरु को ईश्वर के समान माना है संपूर्ण संत काव्य में गुरु के महत्व का प्रतिपादन अत्यंत सरल किंतु आकर्षक ढंग से हुआ है कबीर ने तो गुरु को गोविंद से अधिक महत्व प्रदान किया है –गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागू पाय।। बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताए।।

9. प्रेम की महत्ता – कबीर के काव्य में प्रेम के महत्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया गया है। भक्ति के मार्ग में प्रेम के मार्ग में कोई अंतर नहीं है। प्रेम का मार्ग स्वार्थ के त्याग अहंकार के त्याग और समर्पण है जो जितना समर्पण कर सकता है उतना ही बड़ा भक्त बन जाता है।

10. रहस्यवाद – प्रेम तत्व को महत्व देने के कारण ही संत काव्य में रहस्यवादी चेतना का विकास हुआ है वैसे तो संत काव्य में खंडन और मंडन की प्रवृत्ति के पर्याप्त दर्शन होते हैं किंतु प्रेम के एकांत साम्राज्य में पहुंचकर यह सब कुछ भूल कर "जल में कुंभ कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी" देखने लगते हैं सभी संतो की आत्मा प्रेमा अनुभूति से व्याकुल होकर ईश्वर प्राप्ति के लिए तड़पती रहती है। कबीर की वाणी में जिज्ञासा उत्सुकता एवं मिलन आदि रहस्यवाद की सभी आस्थाओं के दर्शन सरलता से हो जाते हैं।

11. नाम स्मरण एवं भजन पर जोर – गुरुद्वारा प्राप्त ईश्वर का नाम स्मरण करने से लगातार उनको वजन करने से ही मुक्ति संभव है यही धारणा सभी संतों की रही है वे मानते हैं कि धार्मिक अथवा आध्यात्म पोथी पढ़ने से व्यक्ति माया मोह के कारण बंधनों से मुक्त नहीं हो सकता इसी भावना के कारण कभी ने प्रेम के ढाई आखर पढ़ने की सलाह दी थी ना मिश्रण का महत्व बताते हुए कबीर कहते हैं– दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना राम नाम का मरम है आना।।

निष्कर्ष :–

अतः हम यह कह सकते हैं कि "कबीर की कविता में छंद अलंकार शब्द शक्ति आदि गुण हैं और संदेश देने की प्रवृत्ति प्रधान है ।इन संदेशों में आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा पद प्रदर्शन तथा संवेदना की भावना सन्निहित है। अलंकारों से सुसज्जित ना होते हुए भी उनके संदेश काव्य मय है कबीर भावना की अनुभूति संयुक्त उत्कृष्ट रहस्यवादी जीवन की संवेदनशील संस्पर्श करने वाले मर्यादा के रक्षक कवि थे।[10]"

संदर्भ सूची :–

1. शुक्ल आचार्य रामचंद्र– हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ क्रमांक 72, मलिक एंड कंपनी, नई दिल्ली।
2. दास श्याम सुंदर, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ क्रमांक–70 साहित्यकार जयपुर।
3. शर्मा राजनाथ, साहित्यिक निबंध में आलेख– संतमत और युग दृष्टा कबीर, पृष्ठ 42, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
4. दास श्याम सुंदर, कबीर ग्रंथावली पृष्ठ क्रमांक–25 साहित्यागार, जयपुर।
5. चतुर्वेदी परशुराम–कबीर साहित्य की परख, पृष्ठ–64,भारती भण्डार, (प्रयाग) इलाहाबाद।
6. शर्मा राजनाथ, साहित्यिक निबंध में आलेख संतमत और युग दृष्टा कबीर, पृष्ठ 35, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
7. वर्मा रामकुमार–कबीर का रहस्यवाद पृष्ठ–40, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद।
8. द्विवेदी हजारी प्रसाद, कबीर, पृष्ठ 39, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।
9. चतुर्वेदी रामस्वरूप हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ क्रमांक 41, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।
10. नगेंद्र डॉक्टर, हिंदी साहित्य इतिहास, पृष्ठ क्रमांक– 128, मयूर पेपरबैक्स नई दिल्ली।

संत साहित्य पर आचार्य रजनीश (ओशो) का दृष्टिकोण

डॉ. स्नेहलता निर्मलकर,
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी),
डॉ.सी. वी रामन. विश्वविद्यालय,
करगी रोड कोटा,बिलासपुर (छ.ग.)

शाहिद हुसैन,
पी.एच.डी. शोधार्थी
डॉ.सी. वी रामन. विश्वविद्यालय,
करगी रोड कोटा,बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश :–

विद्वानों ने संत शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ पर विभिन्न प्रकार के विचार अभिव्यक्त किए हैं :– संत शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार विमर्श करने वाले विद्वानों ने संस्कृत के सत्, सन्, शान्त आदि शब्दों की व्याकरण के आधार पर समीक्षा तथा विभिन्न प्रकार के प्रयोग एवं अर्थगत विभिन्नता की पर्याप्त खोज की है। 'संत' शब्द की अन्य सामाजिक परिभाषाएँ की जाती हैं, जैसे दयालु, सज्जन, परोपकारी, विवेकशील आदि। जब कोई व्यक्ति अपने भीतर शांत हो जाता है तो स्वमेव ही उस में दयालुता, परोपकारिता, सज्जनता, विवेकशीलता आदि गुण आ जाते है। हिन्दी काव्य के 1000 वर्षो के इतिहास में आज भी सामान्य जनों के मुख से संतो की वाणी, उनके दोहे व पद सहज ही सुनने को मिल जाते है। सत्य की पहचान के लिये जन सामान्य को आज भी संत काव्य का उदाहरण देते हुए देखा व सुना जा सकता है। 18वीं सदी के अंतिम के वर्षो में औघोगिक क्रांति की शुरूवात हई। वैज्ञानिकीकरण, मशीनीकरण, पाश्चात्यायी–करण की संकल्पना ने मानव के दिलोदिमाग को तनाव, अशांति एवं निराशा से भर दिया। ऐसे लोमहर्षक वातावरण की पृष्ठभूमि में आचार्य रजनीश (ओशो) का आगमन एक क्रांतिकारी घटना थी। ओशो ने अपने सत्य के अनुभव को अभिव्यक्त करने के लिये संत काव्य को माध्यम बनाया। 80 के दशक में रजनीश (ओशो) ने इन काव्यों को संतत्व की उसी ऊँचाई पर पहुँचा कर पुनः वही अर्थ किया जो इनका मूलार्थ था। आधुनिक मनुष्य और संतो के बीच ओशो एक तारतम्य बनाते हुए नजर आते हैं। यही कारण है कि आज के आधुनिक दौर में एक बहुत बड़े बुद्धिजीवी वर्ग के लिए ओशो साहित्य जीवन शैली का आधार हैं। ओशो की कुल 500 पुस्तकों में से 33 संतों पर 56 पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें से 20 मध्यकालीन संत हैं । इन मध्यकालीन संतों पर उनकी 38 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमे उन्होंनें अपना अभिनव दृष्टिकोंण प्रस्तुत किया है।

'संत' शब्द का अर्थ बड़ा ही व्यापक है। संत शब्द किसी भी साधु, महात्मा, पवित्रात्मा, या सुंदर आचार – विचार से रहने वाले व्यक्ति के लिए सामान्यता प्रयुक्त होता है, जो व्यक्ति 'सत्' रूपी परम तत्व का अनुभव कर ले वही संत है। इस प्रकार से सभी भक्त कवि संत हो सकते हैं, किंतु यहॉ संत शब्द का तात्पर्य उन निर्गुण संतों से है जो कबीर, रैदास और दादू आदि की परम्परा में आते है। विद्वानों ने संत शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ पर विभिन्न प्रकार के विचार अभिव्यक्त किए हैं :– संत शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार विमर्श करने वाले विद्वानों ने संस्कृत के सत्, सन्, शान्त आदि शब्दों की व्याकरण के आधार पर समीक्षा तथा विभिन्न प्रकार के प्रयोग एवं अर्थगत विभिन्नता की पर्याप्त खोज की है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ''संत शब्द हिन्दी भाषा के अंतर्गत एक वचन में प्रयुक्त होता है, किंतु यह मूलतः संस्कृत शब्द 'सन्' का बहुवचन है। 'सन्' शब्द भी अस् (अस् = होता) धातु से बने हुए 'सत्' का पुल्लिंग रूप है जो 'शत्' प्रत्यय लगाकर प्रस्तुत किया जाता है और जिसका अर्थ केवल होने वाला व रहने वाला हो सकता है। इस प्रकार संत शब्द का मौलिक अर्थ 'शुद्ध अस्तित्व' मात्र का बोधक है और इसका प्रयोग भी इसी कारण, उस नित्य वस्तु व परम तत्व के लिए अपेक्षित होगा जिसका नाश कभी नहीं होता जो सदा एक रस तथा अविकृत रूप में विद्यमान रहा करता है और जिसे 'सत्य' के नाम से अभिहित किया जा सकता है।''[1]

डॉ. हरवंशलाल शर्मा के अनुसार–''इधर कुछ दिनों से संत शब्द का प्रयोग पारिभाषिक और सीमित अर्थ में होने लगा है, परन्तु प्राचीन भारतीय वाङमय में इस शब्द का प्रयोग बड़ा ही व्यापक अर्थ में हुआ है।''[2] ''मानक हिन्दी कोश में संत शब्द के संस्कृत के संत से निष्पन्न मानते हैं हुए इसका अर्थ माना गया है – साधु, सन्यासी, विरक्त या त्यागी पुरूष, सज्जन और महात्मा तथा परम धार्मिक एवं साधु व्यक्ति।''[3] डॉ. आप्टे के कोश में भी दस अर्थ मिलते हैं, जिनमें मुख्य हैं सदाचारी, बुद्धिमान, विद्वान, साधु एवं पवित्रात्मा आदि।''[4]

कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जिन्होने संत शब्द को अंग्रेजी के शब्द 'सेंट' का समानार्थी और उसका हिन्दी रूपान्तर सिद्ध करने की कोशिश भी की। वहीं दूसरी ओर हिन्दी एवं संस्कृत साहित्यकारों ने शांत, शांति, सत् आदि से इसकी व्युत्पत्ति को सिद्ध किया है। श्रीमद् भागवत में इसका प्रयोग पवित्रात्मा के लिए किया गया है और यह बताया गया है कि ''तीर्थ'' जो कि संसार को पवित्र करते है, संत उन्हे भी पवित्र करने वाले होते हैं।''[5] इस तरह से 'संत' की अनेक परिभाषाएँ विद्वानों के द्वारा की गयी हैं, किन्तु शांत शब्द ही युक्तिपूर्वक जान पड़ता है। संभवतः पालि भाषा के उस 'शांत' शब्द से ही 'संत' शब्द निकला हो जिसका अर्थ निवृत्ति मार्गी या वैरागी है।

उपर्युक्त परिभाषाएँ उल्लेखनीय हैं क्योंकि जब कोई व्यक्ति अपने भीतर पूरी तरह शांत हो जाता है तब वह प्रकृति से पूरी तरह एक हो जाता है और जो व्यक्ति अपनी भावनाओं व संवेदनाओं को प्रकृति से जोड़ कर एक हो जाता है उसे ही ब्रह्मज्ञानी कहा जाता है। 'संत' शब्द की अन्य सामाजिक परिभाषाएँ की जाती हैं, जैसे दयालु, सज्जन, परोपकारी, विवेकशील आदि। जब कोई व्यक्ति अपने भीतर शांत हो जाता है तो स्वमेव ही उस में दयालुता, परोपकारिता, सज्जनता, विवेकशीलता आदि गुण आ जाते है। हिन्दी काव्य के 1000 वर्षो के इतिहास में आज भी सामान्य जनों के मुख से संतो की वाणी, उनके दोहे व पद सहज ही सुनने को मिल जाते है। सत्य की पहचान के लिये जन सामान्य को आज भी संत काव्य का उदाहरण देते हुए देखा व सुना जा सकता है। मध्यकालीन काव्य न केवल उस समय के लिए बल्कि अधुनातन काव्य के लिए भी आदर्श स्थापित करती है। 10वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर समकालीन काव्येतिहास के अंतर्गत भक्तिकालीन काल का अपना एक विशेष स्थान रखता है। हमारे संत कवि नक्षतों की भांति भक्तिकालीन काव्याकाश में अपनी आभा बिखरेते हुए नजर आते हैं। इन काव्यों के रचयिताओं का संसर्ग जब तक इनके साथ रहा, तब तक इनका मूल अर्थ और स्वरूप बना रहा, लेकिन संत कवियों के विदा होने के पश्चात् समय और परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण संतो का मूल मंतव्य पीछे छुट गया। पाठक, आलोचक व सृजक अपने अपने नजरिये से आवश्यकतानुसार संत काव्य को परिभाषित करने लग गये।

18वीं सदी के अंतिम के वर्शों में औघोगिक क्रांति की शुरूवात हई। वैज्ञानिकीकरण, मशीनीकरण, पाश्चात्यायी–करण की संकल्पना ने मानव के दिलोदिमाग को तनाव, अशांति एवं निराशा से भर दिया। ऐसे लोमहर्षक वातावरण की पृष्ठभूमि में आचार्य रजनीश (ओशो) का आगमन एक क्रांतिकारी घटना थी। ओशो ने अपने सत्य के अनुभव को अभिव्यक्त करने के लिये संत काव्य को माध्यम बनाया। 80 के दशक में रजनीश (ओशो) ने इन काव्यों को संतत्व की उसी ऊँचाई पर पहुँचा कर पुनः वही अर्थ किया जो इनका मूलार्थ था। जब संतो के काव्य पर ओशे की अभिनव दृष्टि पड़ती है तब यह माणि–कांचन संयोग देखने ही बनता है। आधुनिक मनुष्य और संतो के बीच ओशो एक तारतमय बनाते हुए नजर आते हैं। यही कारण है कि आज के आधुनिक दौर में एक बहुत बड़े बुद्धिजीवी वर्ग के लिए ओशो साहित्य जीवन शैली का आधार हैं। ओशो की कुल 500 पुस्तकों में से 33 संतों पर 56 पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें से 20 मध्यकालीन संत हैं। इन मध्यकालीन संतों पर उनकी 36 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमे उन्होंनें अपना अभिनव दृष्टिकोंण प्रस्तुत किया है। कुछ उदाहरणों के द्वारा उक्त तथ्यों को स्पष्ट एवं उजागर किया जा सकता है।

''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।''

संत कबीर दास जी के इस दोहे पर अपनी अभिनव दृष्टि डालते हुए ओशो कहते हैं कि – ''ढाई अक्षर हिन्दी में जो शब्द है– 'प्रेम' उसमें ढाई अक्षर है लेकिन कबीर का मतलब गहरा है। जब भी कोई व्यक्ति किसी के 'प्रेम' में गिरता है तो वहॉ ढाई अक्षर प्रेम के पूरे होते हैं। एक तो प्रेम करने वाला– एक, जिसको प्रेम करता है वह – दो, और दोनो के बीच में कुछ है अज्ञात – वह ढाई। उसे क्यों कबीर आधा कहते हैं? ढाई क्यों? तीन कह सकते हैं। आधा कहने का कारण है, बड़ा मधुर कारण है। कबीर कहते हैं कि प्रेम कभी पूरा नहीं होता, कितना ही पूरा हो जाए। तुम कभी तृप्त नहीं होते कभी ऐसा नहीं लगता कि बस आ गई पूर्ति, संतुष्ट हो गए। प्रेम कितना ही हो जाए, अधूरा ही बना रहता है। वह परमात्मा जैसा है – कितना ही विकसित हो जाए पूर्ण से पूर्णतर होता जाता है, फिर भी विकास जारी है।''[6] आम तौर पर इस दोहे का अर्थ करते हुए 'प्रेम' शब्द पर जोर दिया जाता है लेकिन ओशो ने 'ढाई' शब्द पर बल दिया है। उसके बाद सिद्ध किया कि प्रेम को ढ़ाई अक्षर क्यों कहा गया है।

''बोलै सेखु फरीदु पियारे अलह लगे''

संत फरीद की इस पद पर प्रकाश डालते हुए ओशो कहते हैं– ''मेरे प्यारों अल्लाह से जोड़ लो अपनी प्रीति'' ऐसा ही इसका अनुवाद सदा से किया गया है, लेकिन फरीद का गहन इशारा चुक गया है। मैं इसके अनुवाद में थोड़ा फर्क करना चाहता हूँ। शेख फरीद कहते हैं – प्यारों, अल्लाह से लग जाओ..... अब अल्लाह से लग जाना, यानि चारों तरफ अस्तित्व ने घेरा हुआ है, तू ही अलग – थलग है, अल्लाह तो लगा हुआ ही है, तू भी लग जा। अल्लाह ने तुझे ऐसे ही घेरा हुआ है जैसे मछली ने सागर को घेरा हो।''[7]

''थोथो जनि पछोरौ रे कोई, जोई रे पछोरौ जा में निजकन होई।
थोथी काया, थोथी माया, थोथा हरि बिन जनम गँवाया।
थोथा पंडित, थोथी बानी, थोथी हरि बिन सबै कहानी।।''

रैदास की इन पंक्तियों का अर्थ करते हुए ओशो कहते हैं – ''जो थोथा है उसे पछोर दो, फटक दो। व्यर्थ को जाने दो भीतर के कन को बचा लो। भीतर की आत्मा को बचा लो हिन्दु जाने दो, मुसलमान जाने दो, ईसाई जाने दो लेकिन धर्म की आत्मा को बचा लो। थोथी काया, थोथी माया, यहॉ थोथा बहुत है यहाँ शरीर भी थोथा है– अभी है अभी गया। सब थोथा है। इधर मौत आई उधर सब पड़ा रह जाएगा। कितना हिसाब लगाया था, कितनी आपा धापी की थी, कितने लड़े झगड़े थे, सब यहीं पड़ा रह जाएगा।''[8]

''अब मोहिं दरसन देहुँ कबीर।
तुम्हारे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत शरीर।

संत धरमदास के इस पद में कबीर शब्द पर विशेष प्रकाश डालते हुए ओशो कहते हैं – "कबीर शब्द दो अर्थ रखता है। एक तो कबीर धरमदास के गुरू हैं और कबीर सूफियों के परमात्मा के सौ नामों में एक नाम है। इसके अलावा कबीर का अर्थ होता है 'विराट'.... तो धरमदास कहते हैं, अब मोहि दरसन देहु कबीर। मेरे गुरू में तो तुमको देख लिया, इस झरोखे से तो तुमको देख लिया। अब तुम मुझे सीधा दर्शन दो, ओ विराट! अब मेरी आँखो में सीधे उतरो।''[9]

''बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मुरत साँवरी सुरत नैना बने विसाल।।
मोर मुकुट मकराकृति कुंडल, अरूण तिलक सोहे भाल''

ओशो मीरा के इस पद का अद्वितीय अर्थ करते हुए कहते हैं कि – ''कृष्ण साँवरे थे, ऐसा नहीं है। हमने इतना ही कहा है साँवरा कहकर कि कृष्ण के सौदंर्य मे बड़ी गहराई है, जैसे जहाँ जहाँ गहरी नदी होती है। वहाँ जल साँवला हो जाता है। ''मोर मुकुट मकराकृति कुंडल'' मोर के पंखो से बनाया हुआ मुकुट प्रतीक है इस बात का कि कृष्ण में सारे रंग समाए हैं। महावीर, बुद्ध, राम, में एक रंग है – कृष्ण में सब रंग है। इसलिए कृष्ण को हमने पूर्णावतार कहा है।''[10]

उपसंहार :–

वैसे तो मध्यकाल और आधुनिक काल के बीच दो सौ साल का फासला है परन्तु सत्यानुभूति पर न तो दूरी का प्रभाव पड़ता है, न व्यक्ति का और न ही वातावरण का। मध्यकालीन निर्गुण संतो ने अपने भीतर की गहराइयों में डूबकर जो अनुभव किया था, आधुनिक युग में ओशो ने उसी धरातल पर जाकर अनुभव इकट्ठा किया था। ओशो का मानना है कि इन संतो का लक्ष्य कभी भी काव्य लेखन नहीं रहा और न ही काव्य रचनाओं के द्वारा कोई पुरूस्कार अथवा लोक प्रियता प्राप्त करना था। वे अपनी इन काव्य पंक्तियों को माध्यम बना कर अपने साधकों व जनमानस को संदेश देना चाहते थें, उस पर आचार्य रजनीश (ओशो) की अभिनव दृष्टि मणि–कांचन संयोग स्थापित करती है। महाकवि आर.सी. प्रसाद सिंह लिखते हैं–''उपनिषद का कोई आर्श–ग्रंथ हो या गोरख–वाणी का गोरख धंधा, सहजो बाई के सहज पद हों या शिवसूत्र जैसा कठिन शैव दर्शन, कृष्ण की गीता हो या ईसा की बाइबिल। अपनी प्रखर मनीशा से युक्त प्रवाहपूर्ण भाषा एवं प्रसादमयी शैली में उन्हें पुष्पित पल्लवित कर ओशो ने एक ऐसी प्रांजल– प्राणोद्बोधक व्याख्या प्रस्तुत की है, जिससे लगता है कि प्रत्येक कृति का मूल प्रणेता ही साक्षात अपनी रचना की आप दही व्याख्या करने के लिए प्रस्तुत हुआ हो।''[11]

सन्दर्भ सूची :–

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ–04।
2. डॉ. हरवंश लाल शर्मा, सर्वात्म दर्शन, पृष्ठ– 5।
3. डॉ. रामचंद्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, खण्ड–5।
4. डॉ. व्ही. एस. आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ–579।
5. प्रायेणतीर्थाभिगमापर्देशोः स्वयंहि तीर्थानि मुनन्तिसंतः– भागवत 1/11/8।
6. ओशो, कहे कबीर दीवाना, रेबल बुक, पुणे, पृष्ठ–14।
7. ओशो,बोलै शेख फरीद, पृष्ठ–17,18।
8. ओशो, ऐसी भक्ति करै रैदासा, पृष्ठ–61।
9. ओशो, जस पनिहार धरै सिर गागर, पृष्ठ–132।
10. ओशो,मेरे तो गिरधर गोपाल, पृष्ठ–29।
11. ओशो, कहे कबीर दीवाना, रेबल बुक, पुणे, पृष्ठ–ग।

संत दर्शन का साहित्य व समाज पर प्रभाव

चैतराम यादव,
शोधार्थी
शा. दिग्विजय महाविद्यालय,
राजनांदगांव (छत्तीसगढ़)

डॉ. (श्रीमती) बी.एन. जागृत,
शोध निर्देशक
शा. दिग्विजय महाविद्यालय,
राजनांदगांव (छत्तीसगढ़)

सारांश :–

संत साहित्य जन साधारण का साहित्य है। संत कवि भारतियों के प्रतिनिधि कवि थे। उनकी विचार धाराएं जन सामान्य की विचार धाराओं से मेल खाती थी। जन साधारण की आशा–निराशाओं और सुख–दुख का पावन संगीत है संत साहित्य। संत साहित्य जीवन की क्षणभंगुरता, विषय सुख त्याग, आत्मा परमात्मा का संपूर्ण मिलन, घट घट निवासी ब्रह्म कल्पना माया पाश से मुक्ति, पूर्ण समर्पण जैसे तत्वों से ओत प्रोत है। संत जिस विचारधारा को लेकर अपनी वाणी की रचना में प्रवृत्त हुए है, वह अपनी भाव विभोर वाणी द्वारा आध्यात्मिक साधन तथा भक्ति अभ्युत्थान का कार्य किया है। संतो ने मानव जीवन पर जोर देते हुए उसको सार्थक करने हेतु सत्संग, नामस्मरण, भजन–कीर्तन, पूजन–अर्चन, गुरू महत्व, साधना महत्व, योग महिमा, सद्वचन, माया निरूपण, संसार की आसारता को दर्शाया है।

संत काव्य भावनात्मक एवं अनुभूति प्रवण जन काव्य है। संतो ने ''कागद की लेखी न मानकर आंखिन'' की देखी कहा है। संतो ने शास्त्रीय ज्ञान से दूर रहकर सहज, सांसरिक एवं व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया। संतो के जीवन दर्शन, चिंतन और काव्यधारा पर उपनिषदों का व्यापक प्रभाव है। संत काव्य और संत दर्शन पर नाथपंथ का भी प्रचुर प्रभाव है।

तत्कालीन सामाजिक जीवन को ध्यान में रखकर ही संतों ने अपनी वाणियों का सृजन किया हे। संत यांगियों के पर्दापण से समाज सब प्रकार के बाह्यडंबर की परंपरा से मुक्त हुए।

संतो की वाणी सहज है। कबीर, नानक, दादू, रैदास, रज्जब, आदि संतो ने समाज सुधार की साधना की थी। उनका लक्ष्य मानव कल्याण और मानव मात्र का एक्य था। संत साहित्य में नित्य तत्व अथवा सार तत्व विशेष प्रबल है, जो हमे पग–पग पर चेतावनी देता चलता है कि संसार असार है, शरीर क्षण भंगुर है।

विषय प्रवेश :–

संत साहित्य जन साधारण का साहित्य है। संत कवि भारतियों के प्रतिनिधि कवि थे। उनकी विचार धाराएं जन सामान्य की विचार धाराओं से मेल खाती थी। जन साधारण की आशा–निराशाओं और सुख–दुख का पावन संगीत है संत साहित्य। संत साहित्य जीवन की क्षणभंगुरता, विषय सुख त्याग, आत्मा परमात्मा का संपूर्ण मिलन, घट घट निवासी ब्रह्म कल्पना माया पाश से मुक्ति, पूर्ण समर्पण जैसे तत्वों से ओत प्रोत है। संत जिस विचारधारा को लेकर अपनी वाणी की रचना में प्रवृत्त हुए है, वह अपनी भाव विभोर वाणी द्वारा आध्यात्मिक साधन तथा भक्ति अभ्युत्थान का कार्य किया है। संतो ने मानव जीवन पर जोर देते हुए उसको सार्थक करने हेतु सत्संग, नामस्मरण, भजन–कीर्तन, पूजन–अर्चन, गुरू महत्व, साधना महत्व, योग महिमा, सद्वचन, माया निरूपण, संसार की आसारता को दर्शाया है।

संतो के जीवन दर्शन, चिंतन और काव्यधारा पर उपनिषदों का व्यापक प्रभाव है। संत काव्य और संत दर्शन पर नाथपंथ का भी प्रचुर प्रभाव है। संत कवियों का लक्ष्य काव्य रचना नहीं था, उनकी रचनाओं में जन–जन के हित और उनके उद्बोधन की भावना सन्निहित है। भावों के स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने प्रतीकों, उपमाओं, रूपकों की योजना अवश्य की है, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि काव्योंत्कर्ष अथवा काव्य सौष्ठव उनका साध्य नहीं था।

दार्शनिक विचारधारा :–

भारत में दर्शन शास्त्र का अध्ययन एक विशिष्ट कार्य है कारण यह है कि भारतीय दर्शन की धारा सुदूर वैदिक काल से अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती चली आई है। यूरोप आदि पाश्चात्य् देशों में दर्शन शास्त्र विद्वानों और पण्डितों के मानसिकोल्लास का साधन था। जिस प्रकार अन्य विषयों के अध्ययन में वे मन–मानी कल्पना किया करते है उसी प्रकार इस महत्वपूर्ण विषय की भी स्थिति है, परन्तु भारतवर्ष में दर्शन तथा धर्म का, तत्व ज्ञान तथा भारतीय जीवन का गहरा संबंध है।

दर्शन वह विद्या का नाम है जो सत्य एवं ज्ञान की खोज करता है। व्यापक अर्थ में दर्शन, तर्कपूर्ण, विधिपूर्वक एवं विचार की कला है। सत् एवं असत् पदार्थो का ज्ञान ही दर्शन है।

संत काव्य भावनात्मक एवं अनुभूति प्रवण जन काव्य है। संतो ने ''कागद की लेखी न मानकर आंखिन'' की देखी कहा है। संतो ने शास्त्रीय ज्ञान से दूर रहकर सहज, सांसरिक एवं व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया।

संतो का साहित्य एवं समाज पर प्रभाव :–

संतो के विराट व्यक्तित्व की भांति संत शब्द भी बहुत व्यापक है। दार्शनिक विचारों एवं मान्यताओं का संत साहित्यकारों पर पर्याप्त प्रभाव था। वे भारतीय दार्शनिक, साधकों और उनके मतों से पहले परिचित थे। संत साहित्य की दार्शनिक विचारधारा का स्वरूप उपनिषदों, सिद्धो, नाथो और सूफ़ियों की चिंतनशील अनुभूतियों से प्राप्त हुआ है। इस प्रकार अनेक युगों, अनेक साधकों की अनुभूतियों और अनेक दार्शनिक विचारधाराओं का सामंजस्य ही संत दर्शन की आधारशिला है। इसलिए संत दर्शन भारत की आत्मा है।

संतों के मत में अलौकिक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए एक सदगुरू का मार्ग अपेक्षित है। परमात्मा जगत् की प्रत्येक वस्तु में और प्रत्येक वस्तु उसमें समायी हुई है। संत कवियों ने अपनी वाणियों में गुरूदेव की महिमा को व्यक्त किया है। गुरूनानक, मलकूदास, नामदेव, दादूदयाल, रैदास, कबीर आदि संतों ने गुरू कृपा की आवश्यकता पर अधिक बल दिया है।

संत कवियों का सामाजिक दर्शन अत्यंत अपार था। उन्होंने तत्कालीन समाज की नाना गतिविधियों को देखा। उन्होने सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक, आर्थिक क्षेत्रों में होने वाले कलुषित वातावरण देखा है।

संत साहित्यकारों ने प्रेम की पावन गंगा को बहाया है। प्रेम की व्यापक महत्व प्रत्येक संत को स्वीकृत है। संतो के समाज दर्शन में हिन्दू–मुसलमान, ब्राह्मण–शुद्र, उच्च–नीच, राम–रहीम आदि का समन्वय देख पड़ता है। मानव जीवन के सहज रूप की प्रतिष्ठा और उनका अस्तित्व संत दर्शन का मूलाधार है। उन्होंने समाज में प्रचलित अनाचारों और मिथ्याडबरों को दिल खोलकर विरोध किया। आत्म पीड़ित जनता के दुख दर्दों में उन्होने राम बाण औषधि का काम किया हैं। उनके समय में प्रचलित मत–मतान्तरों में जिस प्रकार की विकृतियां आ गई थी। उन पर कठोर व्यंग्य करते हुए उन्होने उनकी जो खिल्ली उड़ाई है, वह निहसंदेह महीन मार करने वाली है।

समाज में व्यक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है, जिसे समाज का पारस्परिक व्यवहार संपन्न होता है। व्यक्ति के आचार–विचार के अनुरूप ही समाज की असलियत निर्मित होती है। व्यक्तियों से ही सामाजिक संस्कार का निर्धारण होता है। एक सच्चे समाज में स्वच्छता, न्याय, देश प्रेम, सत्य का समुचित पालन आदि अपेक्षित है। जो व्यक्ति असत्य बोलने लगता है अथवा असत्य व्यवहार करने लगता है, उसका अंतःकरण एक बार उसे अवश्य चेतावनी देता है। अच्छा आचरण और सद्व्यवहार, व्यक्ति–व्यक्ति और समाज को उन्नत बना सकता है। व्यक्ति का संस्कार ठीक हो जाए तो समाज भी ठीक हो जायेंगे।

सामाजिक चेतना :–

तत्कालीन सामाजिक जीवन को ध्यान में रखकर ही संतों ने अपनी वाणियों का सृजन किया हे। संत यांगियों के पर्दापण से समाज सब प्रकार के बाह्यडंबर की परंपरा से मुक्त हुए। संतो में कबीर ने हीं अपने समय की सामाजिक परिस्थिति को बदलने के लिए कठिन प्रयास किया। उन्होंने अपने समय के धार्मिक पाखण्डों का खंडन किया है और हिन्दू मुस्लिम द्वेष और जाति–पांति के भेदभाव की असत्यता और कृत्रिमता का प्रदर्शन किया। उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा से अपने समय की समस्याओं को समझने और सामाजिक विषमताओं को सुधारने का प्रयत्न किया है। इसके लिए उन्होंने साधारण सा मार्ग अपनाया।

हर एक समाज का विकास और उन्नति विभिन्न धर्म संप्रदायों के समन्वयकारी दृष्टिकोण में निहित है। मानव धर्म ही सबसे बड़ा धर्म है, उसके सामने बाकी सब धर्म नगण्य है। संतो ने साहिष्णुता पूर्णक सकारात्मक विचारों को अपनाया और सबको विकसित होने का अवसर दिया। यह भावना सच्चे और सुधारक मनुष्य की बौद्धिक चेतना को जागृत कराती है और यह विश्व धर्म की स्थापना के लिए सहायक होती है।

संतो की दार्शनिक विचारधाराओं में प्रमुख है, एकेश्वरवाद। उन्होने बराबर हिन्दू और मुसलमान दोनों का एक ही परमात्मा होने की बात बतायी है। गुरूनानक के अनुसार वह सत्य स्वरूप सबका सृष्टा, परम समर्थ, निर्भय, स्वयंभू आदि है। गुरूनानक का मत है कि पवित्र आत्मा की कल्पना करना सामाजिक जीवन के बिना निरर्थक हैं उनकी वाणियों में संसार में रहते हुए संसारिक मोह माया में न फंसने का आदेश है। ''उनका आदेश सांसरिक जीवन व्यतीत करते हुए संत का जीवन व्यतीत करना तथा संसारिक वस्तुओं का उपभोग करते हुए भी आध्यात्मिक जीवन बिताना था।

संत दादूदयाल ने भी उसकी ईष्वर की अभिन्नता की ओर संकेत किया है :–

बाबा नाही दूजा कोई।
एक अनेक नाऊ तुम्हारे मोपै ओर न होई।
अलह इलाही एक तूं तूं ही राम रहीम।

[1]

मिथ्याचार, आडंबर और कर्म कांडीय धर्म की स्थिति में मानव और मानवीय मूल्य शिथिल हो जाते है। भक्ति की साधना इसलिए मानव केन्द्रित है कि इसमें शास्त्रीय धर्म मानव को दबोच नहीं देता। तीर्थाटन स्थान आदि स्थूल औपचारिकता वाले धर्म से मानव धर्म बड़ा है। धर्म के नाम पर होने वाले बाह्याडंबरो के विरूद्ध कबीर ने आवाज उठाई है। उनके अनुसार तीर्थ स्नान आदि हरि स्मरण के बिना निरर्थक है।

कबीर तीरथ करि करि जग मुआ, डूंघै पाणी न्हाई।
रामाहि राम जपंतडां, काल घसीट्या जाई।।[2]

कबीर, गुरूनानक और दादूदयाल के द्वारा प्रवर्तित एकता के मशाल को अत्यंत दृढ़ता से रज्जबी ने अपने हाथों पर ले लिया। बाबा लालदास की रचनाएं भी कबीर के सिद्धांतो पर आधारित है। वे प्रेम और बंधुत्व के पूजारी है। उन्होंने सेवा के सिद्धांत को स्वीकार करते हुए सभी धर्मों के बीच एकता का सूत्रपात किया।

सुंदर दास भी एकता की कड़ी को विश्रृंखल होने नहीं दिया। उन्होंने कहा कि इस दुनिया में कोई भी किसी भी प्रकार के चिन्हन लेकर नहीं आया है। जन्म लेने के बाद ही ऐसा भेदभाव उत्पन्न हुआ है। वे सहज स्नेह में सभी को जोड़ना चाहते थे।

हिन्दू की हदि छांडि कै, तजी तुरक की राह।
सुंदर सहजै चीन्हियाँ, एकै राम अलाह।।[3]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि संत साहित्य के अधिकांश कवियों ने सामाजिक भाव को दृष्टि में रखकर ही अपनी वाणियाँ प्रस्तुत की है। संतो की वाणी सहज है। वह कोई साहित्यिक चेष्टा का परिणाम नहीं है। इसलिए ही कबीर, नानक, दादू, रैदास, रज्जब, आदि संतो ने पंथ या संप्रदाय खड़ा कर दिया। लेकिन उनका लक्ष्य धार्मिक सुधार की अपेक्षा समाज सुधार की साधना थी। उनका लक्ष्य मानव कल्याण और मानव मात्र का एक्य था। संत साहित्य में नित्य तत्व अथवा सार तत्व विशेष प्रबल है, जो हमे पग–पग पर चेतावनी देता चलता है कि संसार असार है, शरीर क्षण भंगुर है।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. केशव प्रसाद चौरसिया – मध्यकालीन हिन्दी संत विचार एवं साधना, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, पृष्ठ 77।
2. डॉ. राजेश श्रीवास्तव– हिन्दी साहित्य का प्रचीन इतिहास, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ 99, 103।
3. डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. हरदयाल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पेपर बैक्स, पृष्ठ 114, 116।
4. डॉ. विवके शंकर – हिन्दी साहित्य, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ एकेडमी, पृष्ठ 126।
5. डॉ. आर.के. पाण्डेय – प्राचीन हिन्दी काव्य, शताक्षी प्रकाशन, रायपुर, पृष्ठ 30।

प्रेरक कथा

ग्रीस का राजा प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात से मिलने पहुँचा। उसने उनसे प्रश्न किया– "कृपया ये बताएँ कि संसार में इतनी असमानता है, हर जगह विसंगतियाँ हैं, इनका निस्तारण कैसे हो सकता है?" सुकरात ने उत्तर दिया–"राजन! दुनिया भर की असमानता हटाने की आवश्यकता क्या है? यदि हम संसार के सारे पर्वत समतल कर दे तो पर्वतों पर रहने वाले प्राणी कहाँ रहेंगें और यदि संसार के सारे समुद्र और खाइयाँ पाट दी जाएँ तो मछलियाँ कहाँ रहेंगी? समुद्र व जल में रहने वाले अन्य प्राणी कहाँ रहेंगे? इसलिए ये सोचने के बजाय कि संसार की सारी असमानता हटा दी जाये, तुम अपने मन से इस भेदभाव को हटाने का प्रयत्न करो, तो तुम्हें सारी विसंगतियों में भी समरसता दिखाई पड़ने लगेगी।" सुखी जीवन का यही मार्ग है।

संकलित

कबीर का दर्शनिक विचारधारा

डॉ. कल्पना मौर्य
विभागाध्यक्ष हिन्दी,
आईएएसई मानद विश्वविद्यालय,चुरु (राजस्थान)

कबीर पढ़े–लिखे व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने स्वयं ही कहा है कि 'मसि कागद छूयौ नहीं कलम गही नहिं हाथ।' यही कारण है कि उनके दर्शनिक विचारों में सुशिक्षित विद्धानों जैसी व्यवस्था नहीं है, अपितु उन्होंने सुन–सुनाकर जो ज्ञान अर्जित किया था, उसी को अपनी अटपटी वाणी में व्यक्त कर दिया हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के षब्दों में –'कबीरदास कभी तो अद्वैतवाद की ओर झुकते दिखाई देते है। और कभी एकेश्वरवाद की ओर, कभी वे पौराणिक सगुण भाव से भगवन् को पुकारते है और कभी निर्गुण भाव से–असक्त में उनका कोई स्थिर तात्विक सिद्धांत नहीं था। कहा जा सकता है कि तात्त्विक दृष्टि से तुलसी के दर्शनिक विचारों में भी सुस्पष्टता का अभाव है, अतः कबीर को ही इस दृष्टि से दोषी नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपने गीतों के संबंध में लिखा है–

तुम्हे जिन जानौ गीत है, यहु निज ब्रह्म विचार
केवल कहि समुझाइया आतम साधन रे।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दों में, 'कबीर का ब्रह्म–निरूपण के ढंग पर होने पर भी अनेक धर्मो की ब्रह्म–भावना से प्रभावित है। जहां पर उन्होंने उपनिशदों की ब्रह्म–निरूपण की शैली को अपनाया है वहीं उन्होंने योगियों के द्वैताद्वैत विलक्षणवाद के ढंग पर भी ब्रह्म का वर्णन किया है। उनके ब्रह्म–निरूपण पर बौद्वों, सिद्धों और योनियों के शून्यवाद की ध ूमिल छाया भी देखी जा सकती है। सहजवादियों के सहज ब्रह्मवाद से भी वे प्रभावित हैं। वेदों के वर्णित योग में निर्देशित भर्तृहरि द्वारा निरूपित शब्द के भी वर्णन उनमें एक (एकाधिक) बार आए है। सूफियों के नूरवाद, इश्कवाद आदि को तो पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता हैं इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते है कि कबीर का ब्रह्म–निरूपण वैदिक एकेश्वरीय अद्वैतवादी होते हुए भी सर्वात्मवाद और परात्मवाद के अधिक समीप है। किन्तु अनेक स्थलों पर उसका स्वरूप अन्य विविध धर्मो की ब्रह्म–भावना भी संवारा गया है।''

कबीर के निर्गुण राम का स्वरूप :–

कबीर के ब्रह्म–सम्बन्धी निजि विचारों को प्रतिनिधित्व उनके द्वारा किया गया निर्गुण राम का स्वरूप–विवेचन स्वीकार किया जा सकता है, जिसके विषय में उन्होंने कहा है– **निर्गुण राम जपहु रे भाई, अविगत की गति लखी न जाई।** राम' शब्द के उल्लेख मात्र से हमारा ध्यान तत्क्षण ही दशरथ–पुत्र राम की ओर जाता है, विष्णु के अवतार के रूप में श्रद्धालु हिन्दुओं के आराध्यदेव बने हुए है। किन्तु कबीर पहले ही स्पष्ट कर देते है कि उनका अभिप्राय दषरथ पुत्र राम से नहीं हैः

दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।

इसके साथ ही वे यह भी स्पष्ट कर देते है कि उनका ब्रह्म या राम तो निर्गुण निराकार, अचिन्त्य, अविगत, अजन्मा और अलक्ष्य है। इसी प्रकार न तो उसने नारायण के रूप में बद्रीनाथ में ध्यान लगाया है और न परशुराम बनकर क्षत्रियों को सताया है, न तो उसने द्वारावती में शरीर त्याग किया है और उनका ज्योतिपिंड जगन्नाथ पुरी में गाड़ा गया है यह सभी तो ऊपरी व्यवहार है। इन सबसे जो अगम्य है, वही ब्रह्म के रूप में सारे संसार में व्याप्त है–

जनमै मरै न संकटि आवै, नांव निरंजन जाकौ रे।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसी माई बापौ रे।।

जो जन्म लेता है वह तो नाशधर्मी होने के कारण कबीर की दृष्टि से अधूरा है, जबकि कबीर का राम पूर्ण परब्रह्म है। उसके न नाम है न निषान, भूख–प्यास का गुण भी उसमें नहीं है। घट–घट में वही समाया हुआ है, किन्तु उसका मर्म कोई नही जानता। वह अनूप तत्त्व तो तीनों लोकों से अतीत है, त्रिलोक विलक्षण है :

राम कै नाइं नीसांन बागा, ताका मरम न जाने कोई।।
भूख त्रिशा गुन बाकै नांही घटघट अंतरि सोई।।

अपने आराध्य राम के रूप का और भी स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने आगे कहा है कि न तो उसके रूप है, न रंग न देह। वह तो बस निरंजन है निरंजन। उनके रूप–रंग–मुद्रा–माया कुछ भी नहीं है।

गोब्यंदे तू निरंजन तू निरंजन तू निरंजन राया।
तेरे रूप नहीं रेख नाहीं, मुद्रा नाहीं माया।।
रुग न जुग न स्याम अथरबन, बेद नहीं ब्याकरना।
तेरी गति तुही जाने, कबीर तो सरना।।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि कबीर के राम वे अवतारी राम नहीं है जो दशरथ पुत्र, सीता–पति और रावणारि थे। परन्तु यह राम या हरि कौन है? परब्रह्म, अपरब्रह्म, ईश्वर या और कुछ? उनका अल्लाह अलख निरंजन देव है, जो सेवा से परे है। उनका विष्णु वह है, जो संसार–रूप में विस्तृत है। उनका कृष्ण वह है जिसने संसार का निर्माण किया है उनका गोविन्द वह है जिसने ब्रह्माण्ड को धारण किया है। उनका राम वह है, जो सनातन तत्त्व है। उनका खुदा वह है, जो दस दरवाजों को खोल देता हैं 'रब' वह है जो चौरासी लाख योनियों का परबर दिगार है।

गुन में निरगुन, निरगुन मैं गुन वाट छांड़ि क्यूं बहिए।
अजर अमर कथै सब कोई, अलख न कथणां जाई।

कबीर की ब्रह्म भावना पर सर्वाधिक व्यवस्थित विचार डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने किया है। उनके अनुसार ब्रह्म–सम्बन्धि ा भावना तीन प्रकार की हो सकती है। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक।

डॉ. त्रिगुणायत के अनुसार जहां तक कबीर की ब्रह्म भावना का सम्बन्ध है वह पूर्ण आध्यात्मिक है। यह आध्यात्मिक दृष्टि उसी को प्राप्त हो सकती है, जिसने तर्क करना त्याग दिया है।

सर्वभूत एकै कर जान्या, चूके वाद विवाद।

यही आध्यात्मिक भावना है। अद्वैतवाद इसी आध्यिात्मिक दृष्टि का परिणाम है। जीवात्मा और परमात्मा का अद्वैतभाव ही मुखरित हुआ है। आत्मा और परमात्मा में बूंद और समुद्र जैसा संबंध मानते हुए उन्होंने कहा है कि –

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
बूंद समानी समुद्र मैं, सो कत हेरी जाइ।

प्रकृति या जगत् को भ्रम या असत्य मानते हुए उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि इस प्रकृति की स्थिति ब्रह्म–रूपी जल से बने हिम के समान है, जो पुनः उसी में निमग्न हो जाता हैः

पाणी ही तैं हिम भया, हिम है गंगा बिलाइ।
जो कछु था सोई भया, अब कछु कहा न जाइ।

डॉ. सरनामसिंह शर्मा ने कबीर द्वारा जगत् के स्वरूप–सम्बन्धी विचारों का विवेचन करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि कबीर के अनुसार, यह समग्र जगत् नाम रूपात्मक है। देष और काल इसकी सीमाएं है। रूप का नाम रखा जाता है। जब तक रूप है, तभी तक नाम भी सार्थक है। इसलिए कबीर कहते है 'रूप के विनष्ट होने पर किसका नाम रखोगे?'

यह अनेक नाम–रूपों वाला जगत् 'पंचतत्त्व' से निर्मित है। वस्तुतः जगत् कहने–सुनने के लिए बना है, परमार्थतः यह असत् है। इसमें जो 'नानात्व' दृष्टिगोचर हो रहा है, वह भ्रम के कारण है जो मनुष्य इसके तात्त्विक स्वरूप से परिचित होते है, उनको इस नानात्व की प्रतीति नहीं होती । जिस प्रकार अनेक घड़ों में एक ही मिट्टी लगी है, उसी प्रकार अनेक रूपों में एक ही तत्त्व है। कबीर का 'अविगत' (अव्यक्त) 'राम' या 'ब्रह्म' से पृथक् नहीं है। उनके एक पद की पंक्ति से इसकी पुष्टि हो जाती है :

अविगत अकल अनुपम देख्या, कहता कह्या न जाई।
सैन करै मन ही मन रहसै, गूंगे जानि मिठाइ।

पंच तत्वों के 'संयोजन' से जगत उत्पन्न होता है और वियोजन से प्रलय होती है । अंततः कहा जा सकता है कि कबीर के दर्शनिक विचारों पर अधिकांशतः वेदान्त या सिद्धों (नाथों, सहजयानियों और निरंजनियों) की मान्यताओं का प्रभाव रहा है, जबकि उन पर वैष्णवों और सूफियों की दर्शनिक मान्यताओं का भी आंशिक प्रभाव रहा है। उनके दर्शनिक विचार अपने इस दोहे के पूर्णतः अनुकूल हैं किः

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाइ।
सार–सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाइ।

अर्थात् उन्होंने अपने समकालीन प्रायः सभी धार्मिक सम्प्रदायों के दर्शनों के सारतत्त्व को अपनाकर अपनी विचारधारा का निर्माण किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. कबीर ग्रंथाथली सम्पादक – श्यामसुन्दर दास।
2. हिन्दी गद्य – डॉ. नगेन्द्र।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. रामचन्द्र शुक्ल।
4. संस्कृति के चार अध्याय – डॉ. रामधार सिंह दिनकर।
5. डॉ. महावीर प्रसाद द्विवेदी – कबीर।

भारतीय दर्शन में संत साहित्य का प्रभाव
(संत घासीदास एवं सतनाम धर्म के विशेष सन्दर्भ में)

कु. चन्द्रप्रभा महिश्वर,
शोधछात्रा
पंडित रविशंकर विश्वविद्यालय,
रायपुर, छत्तीसगढ़

डॉ. सपना शर्मा 'सारस्वत',
शोध निर्देशक,
शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातकोत्तर
स्वशासी महाविद्यालय दुर्ग(छत्तीसगढ़)

शोध सारांश :–

सतनाम धर्म – समस्त धर्मों का मूल है समस्त धर्मों की उत्पत्ति सतनाम धर्म से हुई है। गुरु घासीदास ने वर्ण–जाति आधारित ब्राह्मणवाद को चुनौती दी और छत्तीसगढ़ में समता आधारित सतनामी समाज का निर्माण किया। इस शोध–पत्र में दलित एवं वंचित की पृष्ठभूमि से लेकर सतनाम दर्शन की अभिव्यक्ति की गई है। यह शोधपत्र शोधार्थियों के लिए जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही साहित्यिक विषय में रुचि रखने वाले विद्वान के लिए भी।

गुरु घासीदास जी ने अपने सामाजिक सुधार के मिशन का प्रथम उद्देश्य दलितों के उद्धार का बनाया था। सतनाम पंथ धर्म के पुर्नसंस्थापक गुरु घासीदास बाबा के एक वाणी ''मनखे–मनखे एक समान'' को जान लेना पर्याप्त है।''मनखे–मनखे एक समान'' एक पंथ मात्र के लिए गुरुवाणी नही वरन, मानव समुदाय का वास्तविक सिद्धांत है। जो छुआछूत, जातिवाद, ऊंचनीच, धार्मिक संघर्ष, के साथ ही झूठे धार्मिक सिद्धांतो के लिए ब्रम्हास्त्र है।''मनखे–मनखे एक समान'' उन सभी कुटिल सिद्धांतों के अस्तित्व का अंतिम निदान है जो मानव को मानव से ऊंच–नीच होने का कपोल कल्पित झूठा प्रमाण प्रस्तुत करने का शड्यंत्र करती है। गुरु घासीदास बाबा के प्रभाव से लगभग सभी जातियों के लोग सतनामी बने थे। जिसमें चमार, सुनार, लुहार, गड़रिया, यादव, अहीर, तेली, कुम्हार, जाट, कुर्मी, बढ़ई आदि की विषेश रूप से भागीदारी थी।

सतनाम धर्म में अंधविश्वास एवं झूठी मान्यताओं का कोई स्थान नहीं है। गुरूघासीदास ने कहा है कि किसी के कहने को बिना परखे मानना उचित नहीं । किसी बात को परखकर मानना ही सत्य को धारण करना है। बिना सत्य के धर्म का असित्तव नही है। उन्होंने कहा है –''हे संतों मैं जो कह रहा हूं उसे सत्य की कसौटी पर कसकर, सत्संग की अग्नि में तपाकर , कर्म की तुला में तोलकर प्रत्यक्ष देख लो। अगर खोटा हो तो त्याग देना अगर खरा हो तो अपना लेना। आगे उन्होने कहा है कि ''मेरे बाद मेरी पूजा मत करना। मेरी बातों को जो खरा लगे, पालन कर अपना जीवन को सफल बनाना। बस यही मेरी सच्ची पूजा होगी'' ।

भारत में दलित एवं वंचित साहित्यः सतनाम दर्शन के परिपेक्ष्य में :–

''प्रस्तुत शोध पत्र भारत में दलित एवं वंचित साहित्यः सतनाम दर्शन के परिपेक्ष्य में'' शीर्षक दलित एवं वंचित साहित्य की अवधारणा पर विमर्श प्रस्तुत करती है। एक ओर इस शोधपत्र में वर्तमान संदर्भ में सामाजिक न्याय की नई राह खोज रहे दलितों, वंचितों की समस्याओं व उनकी वर्तमान स्थिति का वर्णन है। सतनाम धर्म – समस्त धर्मों का मूल है समस्त ध ार्मों की उत्पत्ति सतनाम धर्म से हुई है। गुरु घासीदास ने वर्ण–जाति आधारित ब्राह्मणवाद को चुनौती दी और छत्तीसगढ़ में समता आधारित सतनामी समाज का निर्माण किया। प्रस्तुत अध्ययन उन वंचित पिछड़े वर्ग पर आधारित एक प्रयास है, जिन्हें आज सामाजिक न्याय के आधार पर विषेष सुविधा की आवश्यकता है। इस शोध–पत्र में दलित एवं वंचित की पृष्ठभूमि से लेकर सतनाम दर्शन की अभिव्यक्ति की गई है। प्रस्तुत अध्ययन में दलितों, वंचितों पर अध्ययन को केन्द्रित किया गया है। यह शोध पत्र शोधार्थियों के लिए जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही साहित्यिक विषय में रुचि रखने वाले विद्वान के लिए भी।

भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक देश है, जो समानता एवं एकता को महत्व देता है। भारत देश विशाल होने के कारण विविधताओं से भरा पड़ा है। यहाँ अनेक जाति, धर्म, सम्प्रदाय के लोग निवास करते है। विविधताओं का यह अन्तर सरलता से जटिलता की ओर बढ़ता जाता है। भारतवर्ष की संस्कृति प्राचीन है एवं परम्पराओं व मान्यताओं की विशेष महत्ता है। भारतीय समाज जाति–व्यवस्था की पराकाष्ठा है। आदिकाल से ही मानव समाज के मध्य असामानता व्याप्त रही है, ऐसे समाज जहां वास्तविक रुप से उसके सदस्यों में समानता हो कल्पना मात्र है। भारतीय हिन्दु समाज का सम्पूर्ण जीवन धर्म के इर्द–गिर्द घुमता रहता है जिसमें कर्तव्यों का पालन सर्वोपरि है। भारतीय हिन्दु समाज का आधार वर्ण व्यवस्था है, जिसने अछूतों को जन्म दिया भारतीय समाज में छुआछुत और भेदभाव जैसे रोग सालों पुराने है। प्राचीन काल में तो जाति के स्थान पर चार वर्ण थे– ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र। यह व्यवस्था कर्म पर आधारित थी, परन्तु कालान्तर में वर्ण–व्यवस्था जन्म पर आधारित जाति–व्यवस्था में परिणत हो गई। आज यही जाति–व्यवस्था भारतीय समाज में अनेक समस्याओं का कारण बन गई है। शुद्र के अन्तर्गत समाज के ऐसे सदस्यों को सम्मिलित किया गया था जो मानसिक एवं शारीरिक दोनों दृष्टियों से

अविकसित होते थे। शुद्र वर्ग की जातियों को निम्न माना जाने लगा और इन्हें बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा। यहा तक की इनका स्पर्श भी घृणास्पद हो गया। इनको अस्पृश्य कहा जाता था। गाँधी जी ने इनके लिए "हरिजन" शब्द का प्रयोग किया।

हमारा भारतीय समाज दो भागों में बटाँ है, एक ओर समाज का सुविधाभोगी वर्ग है जो सम्पन्न, सबल, शिक्षित विकसित व उच्च वर्ग से आते हैं एक ओर समाज का दूसरा वर्ग भी है जहाँ पिछड़ा, बेसहारा, बेरोजगार, शोषित लोगों का ही बसेरा है। जिन्हें हम दलित व वंचित वर्ग के नाम से जानते है। भारतीय समाज में दलित वह है, जो जन्म से ही जाति या वर्ण–व्यवस्था के कारण हजारों सालों से सामाजिक न्याय और मानव अधिकारों से वंचित है। दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है– दलन किया हुआ। इसके तहत वह हर व्यक्ति आ जाता है जिसका शोषण–उत्पीड़न हुआ है। म्लेच्छ, अछूत, दास तथा न जाने और कितने शब्दों से पुकारे जाने वाला यह दलित अपने अधिकार से दूर रहा। दलित वह हैं जो अस्पृश्यता जैसी बिमारी से ग्रस्त है।

प्राचीन समय में दलितों की बस्ती उच्च जाति वालो की बस्ती से बिल्कुल अलग होती थी जहां से गुजरने की भी उन्हे मनाही थी। दलित भारत के सबसे वंचित सामाजिक–आर्थिक समूहों में से हैं। प्राचीन परम्परा, सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक पिछड़ेपन से ग्रस्त, अभी भी विकास के मार्ग तक नही पहुँच पायें है, सुविधाओं से वंचित है, पिछड़ा है, शोषित है, पराधीन है। दलितों की स्थिति समाज में निम्न रही है, उच्च जाति के लोग दलितों के साथ भोजन करने या उनकी बिरादरी में शादी–ब्याह से कतराते रहे हैं। यह विडंबना ही है, ''कि समस्त प्राणियों की संरचना एक जैसी ही होते हुए उन्हे अलग–अलग वर्णो और जातियों में बाटँ दिया गया।'' वर्ण–व्यवस्था को गुण और कर्म के आधार पर बाँटने वाला इस कट्टर समाज ने इन्हें सभी प्रकार के अवसरों से वंचित किया। भारतीय संविधान में इन्ही जातियों को अनुसूचित जाति नाम से जाना जाता है।

प्राचीन काल से ही धार्मिक क्षेत्र में अनुसूचित जातियों को ईश्वर की पूजा, छूने या महाकाव्यों को पढ़ने तथा मन्दिरों में घूसने के अधिकार से वंचित रखा गया था (घुर्ये:1961)। धर्म तथा शास्त्रों पर ऊँची जाति का एकाधिकार था और यदि शूद्र या अस्पृश्य इस परम्पराओं को न मानता था तो उसे सार्वजनिक स्थान पर पीटकर मार डाला जाता था। अनेक धार्मिक ग्रन्थों का तनिक स्पर्श अथवा मन्दिर में प्रवेश सम्पूर्ण वातावरण को दूषित अथवा अस्वच्छ कर सकता था।

लिंग आधारित भेदभाव समाज में सदियों से व्याप्त है। पुरुषों की स्थिति स्त्रियों से सदैव ऊँची रही है, इस दृष्टि से दलित समाज अछुता ना रहा। इस जातिव्यवस्था के परिणाम स्वरूप हिन्दु समाज में अनुसूचित जाति की महिलाओं की दशा तो और दयनीय रही। जातिगत भेदभाव, अशिक्षा, गरीबी, शोषण, हिंसा, अत्याचार, परम्पराओं, रूढ़िवादिता और रीति रिवाजों से इन महिलाओं की दशा और दयनीय हो गयी। स्त्री शिक्षा भी वर्ग आधारित थी।

गुरु घासीदास जी ने अपने सामाजिक सुधार के मिशन का प्रथम उद्देश्य दलितों के उद्धार का बनाया था। सतनाम पंथ धर्म के पुर्नसंस्थापक गुरु घासीदास बाबा के एक वाणी ''मनखे–मनखे एक समान'' को जान लेना पर्याप्त है। ''मनखे–मनखे एक समान'' एक पंथ मात्र के लिए गुरुवाणी नही वरन, मानव समुदाय का वास्तविक सिद्धांत है। जो छुआछूत, जातिवाद, ऊंचनीच, धार्मिक संघर्ष, के साथ ही झूठे धार्मिक सिद्धांतो के लिए ब्रम्हास्त्र है। ''मनखे–मनखे एक समान'' उन सभी कुटिल सिद्धांतों के अस्तित्व का अंतिम निदान है जो मानव को मानव से ऊंच–नीच होने का कपोल कल्पित झूठा प्रमाण प्रस्तुत करने का शड्यंत्र करती है। गुरु घासीदास बाबा के प्रभाव से लगभग सभी जातियों के लोग सतनामी बने थे। जिसमें चमार, सुनार, लुहार, गड़रिया, यादव, अहीर, तेली, कुम्हार, जाट, कुर्मी, बढ़ई आदि की विषेश रूप से भागीदारी थी।

भारतीय सामाज में स्वतंत्रता आन्दोलन दौरान हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने इस कलंक पूर्ण प्रथा से मुक्त कराने का यथासाध य प्रयास किया। दलित समाज के विकास में महात्मा ज्योति राव फुले और डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर का बहुत बड़ा योगदान रहा है। 1851 में अछूतों के लिए पहली पाठशाला खोली और 1864 में विधवा विवाह सम्पन्न कराया। सावित्री बाई फुले को दलित समाज की पहली भारतीय शिक्षिका बनने का गौरव प्राप्त है। डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर ने महिलाओं को पुरूशों के समान बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए हिन्दु कोड बिल प्रस्तुत किया और समाज में क्रांति ला दी। हिंदु कोड बिल के प्रस्ताव है–बहुपत्नी विवाह गैरकानूनी, तलाक को कानूनी मान्यता, विधवा पुर्नविवाह का अधिकार, महिला को पिता व पति की संपत्ति में अधिकार, बाल विवाह गैरकानूनी एवं सती प्रथा गैरकानूनी आदि।

अस्पृश्यों के उद्धार व इन दुर्बल वर्गो की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पर बल देने के लिए आर्य समाज, ब्रम्ह समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं तथा राजाराममोहन राय, रवीन्द्रनाथ, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द आदि समाज सुधारक प्रतिबध्द रहे। स्वतंत्रता पश्चात् सरकार ने दलितों के उत्थान अनेक प्रावधान व कार्यक्रम बनाएं। दलित, वंचित को उनके अधिकार दिलाना ही स्वतंत्रता आंदोलन का सबसे पहला लक्ष्य था, दलित को सामाजिक

न्याय दिलाने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचिबद्ध किया गया, ताकि देश के विकास में इनकी भागीदारी सुनिश्चित कि जा सके। यह भी सत्य है, कि जब वह हिन्दू–धर्म के खोखले आदर्शों, संस्कृति व परम्परा को समझने लगे, तब उन्होने इस व्यवस्था के विरुद्ध खड़े होने का साहस किया। और आज हमारा दलित समाज का उभरकर सामने आया है। परिणामस्वरुप कुछ परिवर्तन दिखने लगे हैं। वंचित समाज के लोगो की आर्थिक हालत में कुछ सुधार हुआ है। पढ़–लिख कर कुछ लोग सम्पन्न भी हुए है। अब यह उच्च वर्ग की गुलामी से काफी मुक्त भी हुए है। अनुसूचित जातियों की स्थिति में संवैधानिक प्रावधानों के कारण आज बेशक कुछ हद तक सुधार भी हुआ है। लेकिन यह चिंता का विषय है, कि इतने प्रयत्नों के बाद भारतीय संविधान में सामाजिक लोकतंत्र स्थापित करने का जो लक्ष्य रखा गया था, वह मात्र एक स्वप्न सा बना हुआ है। कुछ अल्प लोगो को छोड़कर अनुसूचित जातियों की बड़ी संख्या आज भी निम्न व दयनीय स्थिति से जूझ रही है। वास्तविक समस्या तो मानव के जड़–बुद्धि एवं सामाजिक बुराइयों में विद्यमान है। संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद यह मानसिकता विभिन्न रूपों में प्रकट होती है।

भारतीय संविधान में यह प्रावधान किया गया कि जाति के नाम पर, भारत के किसी भी नागरिक के साथ भेद–भाव नहीं किया जायेगा परन्तु यह प्रावधान केवल संविधान के पन्नों में ही सीमट के रह गया। अतीत की नही आज की बात है। वंचितों के साथ हत्या, अत्याचार, बलात्कार, मारपीट की घटनाएं आम है। वर्तमान स्थिति यह है कि जाति व्यवस्था समाज में गहराई से जड़ें जमाए हुए है। भारतीय समाज व्यवस्था में यह सुनिश्चित करना होगा कि विकास की दरों का लाभ समाज के सक्षम वर्गों के साथ–साथ ऐसे वर्गों का भी उचित प्रतिनिधित्व हो, परन्तु यह विड़मबना ही है कि यह लाभ भी दलितों और वंचितो तक पूर्ण रुप से नही पहुंच पाया उनकी दुर्दशा स्वतंत्रता के पाँच दशकों पश्चात् भी लगभग यथावत् बनी हुई है। विकास की प्रकिया में इनके पिछड़ेपन का एक महत्तवपूर्ण कारण यह है कि लम्बे समय तक, सामाजिक शोषण, दमन की शिकार रहते हुए, शिक्षा से भी वंचित रही। वर्तमान समय में दलित शिक्षा के प्रति जागरुक है और उच्च शिक्षा में दलितों की संख्या में वृध्दि भी हुई है, परन्तु उच्च शिक्षा में उनका प्रतिनिधित्व संतोषजनक नही है। उनकी संख्या उतनी नहीं है जितना कि होना चाहिए था। दलितो को मिलने वाले आरक्षण पर होने वाली प्रतिक्रिया अक्सर विपरीत होती है। भेदभाव और सांप्रदायिकता जैसे गंभीर मुद्दों को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने की जरूरत है परन्तु यह नहीं हो पा रहा है। सरकार के इतने प्रयास व प्रावधानों के बावजूद आज भी उच्च जाति के लोग द्वारा दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता हैं। जाति व्यवस्था का अस्तित्व किसी ना किसी रुप में सही पर आज भी समाज में विद्यमान हैं। तमाम सुधार कार्यक्रमों के बावजूद सामाजिक, आर्थिक शैक्षिक पिछड़ेपन और पक्षपात, स्वेच्छाचारी एवं प्रशासनिक बुद्धिहीनता जैसे कारणों से वंचित कुछ पिछड़े वर्गों की स्थिति जस की तस बनी हुई है, वे सामाजिक संरचना में आज भी पिछड़े है।

आज भी यह देखने को मिलता है कि शिक्षित वर्ग भी देश और समाज की समस्याओं को जानने का प्रयास नही करता और अपनी मूलभूत समस्याओं से वह अनजान हैं। अतः उन्हे ज्ञान होना चाहिए कि हमारे देश की समस्या क्या है, चाहे वह समस्या दलितों, वंचितो के शोषण और बहिष्कार की हो, चाहे लिंग आधारित विभेद की हो, जिनके हितों की सुरक्षा के लिए और त्वरित सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए विशेष विचारों कार्यक्रमों व प्रयासों की आवश्यकता है। क्योंकि जब तक हमारे देश का आनेवाला कल इस समस्या से अनभिज्ञ रहेगा सामाधन असंभव सा प्रतित होता है। अतः स्कूलों, व महाविद्यालयों में छात्रों को, औपचारिक शिक्षा के साथ–साथ नैतिक और सामाजिक शिक्षा देना भी सबसे ज्यादा जरूरी है, शिक्षा के समान अवसर, आर्थिक सुरक्षा, मूल्य आधारित शिक्षा, सामाजिक. सांप्रदायिक और लिंग विभेद जैसी समस्याओं से अवगत कराने वाली शिक्षा–प्रणाली को देश में लागू करने से देश में न केवल शिक्षा के स्तर में सुधार आएगा बल्कि साक्षरता के दर भी वृध्दि होगी।

स्पष्ट है मुख्य धारा से अलग रहने के कारण हमारे समाज का एक बड़ा हिस्सा विकास की धारा में पीछे छुट गया। हमारे भारतीय समाज में दलित के साथ जाति और वर्ण पर आधारित सामाजिक भेदभाव रहा है। और यही कारण है कि दलित वर्ग समाज में सर उठाकर खुद को दलित–वर्ग कहने पर हिचकिचाता है। वह अपने अधिकारो के लिए भी हिम्मत नहीं उठा पाता। एक ओर हमारा भारत देश का सपना है कि वह विश्व की महाशक्ति बने किन्तु भारतीय समाज को झकझोड़ने वालें छुआछुत और भेदभाव जैसे रोग आज भी जड़ें जमाये हुए है। अपनी सालों पुरानी मानसिकता सोच व नजारिया से समाज बाहर नही आ पा रहा है। अंतिम रुप से कहे तो, हमारे भारतीय समाज में, छुआछूत प्रथा जीवित है। नकस्लवाद की तरह, छुआछूत प्रथा, जिसे कानूनी रुप से अपराध घोषित कर दिया गया था, आज भी खुले और दबे–छुपे रूपों में ही सही अपने अस्तित्व में बनी हुयी है।

अकेले सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों से एकीकरण व एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता है, अतः आज जरूरत है, तो ऐसे जनसहयोग की जो वास्तव में इन दलितों को इनकी

दयनीय स्थिति से ऊबार सकें। हम उम्मीद कर सकते हैं, कि दलित वर्ग का संघर्ष एक दिन उन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए बाध्य करेगी और वह विकास की ओर अग्रसर होंगे।

संदर्भ सूची :–

1. सिहं, घनश्याम (1990) अनुसूचित जाति व्यक्तिक संरचनाशान्ति प्रकाशन पुराना बैरहना, इलाहाबाद पृ.11–14, 110।
2. डॉ. रवीन्द्र कुमार. भारत में दलित वर्ग और दलितोद्धार आंदोलन (1900 ई. – 1950 ई.)।
3. अग्रवाल, पुरुषोत्तम. हरिजन से दलित. वाणी प्रकाशन।
4. http://www.satnamdharm.co.in/
5. https://www.punjabkesari.in/
6. http://www.dalitaandolanpatrika.com/ हिंदी– साहित्य–में–दलित–/चेतना।

प्रेरक कथा

एक संत का एक शिष्य था। वह रोज उनसे प्रश्न करता– "गुरूदेव! मुझे कुछ ऐसा ज्ञान दें, जिसका उपयोग मैं जीवन भर कर सकूँ।" उसके प्रतिदिन प्रश्न करने पर भी संत ने उसको कोई उत्तर नहीं दिया। आखिरकार एक दिन थक कर वह संत से बोला – "गुरूदेव! आप मुझे कोई शिक्षा दे ही दीजिए या मुझे कहीं और जाने दीजिए।" इस बार संत बोले– "अच्छा तुझे जाना ही है तो नगर में सुवंत नामक सराय का व्यवस्थापक रहता है, उसके पास जा। वह जो सिखाए, वही सिखकर आना।"

शिष्य बे–मन से उसके पास गया, रास्तें में सोंचता रहा कि जो मैं इतने बड़े संत नहीं सीख पाया, वह एक सराय वाले से कैसे सिख पाऊँगा? पर गुरू आज्ञा मानकर वह उसके पास पहुंचा और तीन दिन में ही वापस लौट आया। वापस लौटकर वह संत से बोला –"गुरूदेव! आपने भी मुझे कहाँ भेज दिया। वह व्यक्ति तो सुबह पाँच बजे से बरतन साफ करता है और रात दस बजे तक माँजता ही रहता है। ज्ञान की एक भी बात नहीं करता है।" संत बोले– बेटा! यही सिखने तो तुझे भेजा था। जैसे बरतन को रोज मांजने की आवश्यकता होती है, वैसे ही मन को नित्यप्रति साफ रखने की आवश्यकता है। यदि ये साफ रहेगा तो इस में ज्ञान स्वतः ही उतर आएगा।" आत्मपरिष्कार ही आत्मज्ञान का एकमात्र माध्यम है।

संकलित

भारतीय दर्शन में समता का संदेश

डॉ. अभिनेष सुराना,
प्राध्यापक (विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग)
शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर,
स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दुर्ग छत्तीसगढ़

डॉ. सरिता मिश्र,
अतिथि व्याख्याता (हिन्दी विभाग),
शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर,
स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दुर्ग छत्तीसगढ़

दर्शन वह ज्ञान है जो परम सत्य और प्रकृति के सिद्धांतों और उनके कारणों की विवेचना करता है। दर्शन यथार्थता की परख के लिए एक दृष्टिकोण है। दार्शनिक चिन्तन मूलतः जीवन की अर्थवत्ता की खोज का पर्याय है। भारत में दर्शन का प्रादुर्भाव वैदिक काल से ही है, 'वेद' भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य आदि के मूल स्रोत हैं, ऐसामाना जाता है कि वेद किसी मानव द्वारा लिखित ग्रंथ नहीं है ये वो ज्ञान है जो स्वयं भगवान ने चार ऋषियों को सुनाया था। वेदों की संख्या चार बताई गई है :–

1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. सामवेद 4. अथर्ववेद

भारतीय दर्शन तत्वतः आध्यात्मिक है, भारत में दर्शन और धर्म परस्पर आश्रित माने जाते हैं, यहां धर्म कट्टर विश्वासों का घर नहीं है बल्कि एक सजीव अनुभव है। धर्म आध्यात्मिक सत्य को प्राप्त करने का व्यवहारिक उपाय है, दर्शन सत्ता की मीमांसा करता है और उसके स्वरूप को विचार के द्वारा पकड़ता है जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है, इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय दर्शन एक बौद्धिक विलास नहीं है, बल्कि एक आध्यात्मिक खोज है।

समानता को स्थायी और सार्वभौम अवधारणाओं की श्रेणी में रखा जाता है, दो या दो से अधिक लोगों या समूहों के बीच सम्बन्ध की एक स्थिति ऐसी होती है जिसे समानता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, लेकिन एक विचार के रूप में समानता इतनी सहज और सरल नहीं है, क्योंकि उस सम्बन्ध को परिभाषित करने, उसके लक्ष्यों को निर्धारित करने और उसके एक पहलू को दूसरे पर प्राथमिकता देने के एक से अधिक तरीके हमेशा उपलब्ध रहते हैं। भारत में दर्शन जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष रहा है। भारतीय सोच में व्यक्ति का महत्व और उसका मूल्य सर्वोपरि रहा है और इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता को उसके अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु अनिवार्य माना गया। इसलिए उसमें समाज रचना को लेकर जो भी विचार विमर्श हो सकता था वह इसी रूप में कि समाज की व्यवस्था में ऐसा क्या हो जिससे उसमें रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके अन्तिम लक्ष्य की यात्रा आसान हो जाए। सामाजिक समरसता और व्यक्ति के अपने लक्ष्य व चेष्टाओं से जुड़े रहने की तन्मयता को ध्यान में रखकर ही हिन्दू समाज के ढांचे को कोई रूप दिया जा सकता था। इस तरह समाज में जिनके पास ज्ञान है वे समाज में लोगों को शिक्षा देने का काम करें, जिनमें शौर्य व साहस के गुण हों वे समाज को सुरक्षा प्रदान करने का काम करे, जिसमें उद्यमिता का गुण है वे समाज में उत्पादन और वितरण की व्यवस्था सम्हाले और जो सेवाभावी हो वे समाज के अन्य लोगों की सुख–सुविधा के लिए काम करे, इस तरह समाज में चार तरह के कर्मों के सम्पादन हेतु चार तरह के व्यक्ति समूह अर्थात, वर्ग या वर्ण का विचार किया गया और उन्हें उनमें पाए जाने वाले गुण तथा उनके लिए निर्धारित कर्मों के आधार पर नाम दिया गया, सम्भवतः व्यक्ति हित और समाज–हित के विचार से ही 'वर्णाश्र' धर्मव्यवस्था की परिकल्पना की गई, श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि–'चातुरवर्ण्य मया सृष्टं गुण–कर्म विभागषः'।

आज ये प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो यगा है क समाज में समता के आदर्श को कैसे प्राप्त किया जाए। व्यक्ति के मौलिक महत्व और उनके सममूल्य होने के अर्थ की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि धर्म, संविधान और कानून सब व्यक्ति के लिए है किन्तु व्यक्ति उन सबके लिए नहीं। उच्चतम न्यायालय ने भारतीय संविधान में समता के मूलभूत अधिकार की व्याख्या करते हुए कहा है कि समानता का अर्थ 'समान लोगों के बीच समानता' है। इसका सीधा सा अर्थ यह है कि किसी एक वर्ग के अन्तर्गत आने वाले लोगों के बीच भेदभाव नहीं किया जा सकता, किन्तु असमान वर्गों के व्यक्तियों के बीच अन्तर करते हुए किसी को अवसर का लाभ देना तर्कदृष्टि से उचित है।

डॉ.राधाकृष्णन ने ऑक्सफोर्ड में अपने एक भाषण में कहा था कि 'मनुष्य मनुष्य का दार्शनिक हो गया है, एक नया (Man has become the philosopher of man. A new humanism in on the horizon. Bu this time it embraces the whole of the mankind's). गांधी जी ने एक बार यह कहा था कि 'राष्ट्रीयता का मेरा विचार यह है कि मेरा देश मर जाये जिससे कि मानवजाति जिन्दा रह सके। (My idea of nationalism is that my country may die so that the human race may live) यह वाक्य गांधी जी के मानवतावाद का द्योतक है, उनका मानवतावाद सम्पूर्ण मानव जाति की एकता तथा अखण्डता पर बल देता है। उनके

शिक्षागत मानवतावाद की एक और विशेषता है–'मनुष्य की असीम शक्ति पर विश्वास' वे मानव को परिस्थितियों का दास नहीं मानते हैं और न उसे प्रगतिशील जीव ही समझते हैं, वरन् इससे अधिक उसे सर्जनात्मक, मौलिक एवं आध्यात्मिक सत्ता मानते है।

मनवतावाद की मूल्यमीमांसा में स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि सत्य वह है जिसे व्यष्टि और समष्टि दोनों का हित सधे और असत्य वह है जिससे दोनों का अहित हो, स्वामी जी मनुष्य को ईश्वर का मंदिर मानते थे और मानव सेवा का सबसे बड़ा धर्म। इनके अनुसार मनुष्य को मन, वचन,कर्म से शुद्ध होना चाहिए। अपनी जीविका ईमानदारी से कमानी चाहिए। दीन–हीनों की सेवा करनी चाहिए और इस प्रकार अपने को शुद्ध एवं निर्मल बनाकर योग– साधना को योग्य बनाना चाहिए।

उपराष्ट्रपति एम वेंकैया नायडू मानते हैं कि भारत के निर्माण का आधार मूलतः सहिष्णु सभ्यता है और भारतीय दर्शन की तुलना में किसी और दर्शन या धर्म में समानता के सिद्धांत को इतने मौलिक रूप में नहीं अपनाया गया है। भारत में ध ार्मिक स्वतंत्रता पर हालिया रिपोर्ट का जिक्र करते हुए उपराष्ट्रपति ने दोहराया कि भारत एक ऐसी भूमि है जो विविध विचारों और दर्शन की जननी है, जो हर समय फली–फूली है।

विज्ञान ने आज देश और काल की दूरी बहुत हद तक मिटा दी है। हजारों मील की दूरी को आज विज्ञान ने कुछ ही घंटो में तय करने का साधन प्रस्तुत कर दिया है। आँख और कान के लिए आज बहुत हद तक दूर और समीप का भेद नहीं रहा। परन्तु यह तथ्य है कि देश और काल की दूरी पर विजय पाने वाला मानव दूसरे मानव से पहले की अपेक्षा अधि ाक दूर होता जा रहा है, इस दूरी को हटाने की क्षमता विज्ञान में नहीं दर्शन में है। भारतीय दार्शनिक मानव और मानव में ही नहीं प्राणी मात्र में उससे भी आगे पदार्थ मात्र में एक समान अविनाशी परम पुरूष को देखने का निर्देश कर गये हैं, ऊँचे–ऊँचे सिद्धांतों के निर्माण की अपेक्षा आज मानव निर्माण पर ध्यान देने की आवश्यकता है। मानव निर्माण का अर्थ है मानव को भेद में अभेद मूलक दर्शन के आधार पर समानता, सहिष्णुता और सहृदयता को सोचने का अभ्यासी बनाना।

बहरहाल, भारतीय मनीषियों के उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का उद्भव हुआ, उसने दूर–दूर के मावनों के आध्यात्मिक कलुशता को धोकर पवित्र नित्य शुद्ध–बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है।

संदर्भ सूची :–

1. शोधपत्र – भारतीय दर्शन की अंतःधारा–अनुराग पाण्डेय इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश–स्वामी विवेकानंद, रामकष्ण मठ
3. भारतीय दर्शन का मूल सिद्धांत है मानव समानताः उपराष्ट्रपति (एम.वेंकैया नायडू)
   Navbharattimes.indiatimes.com
4. Shodhganga.inflibnet.ac.in
5. Webdunia – अनिल विद्यालंकार

भारत में दलित एवं वंचित साहित्य संत परंपरा के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. आंचल श्रीवास्तव, सहा. प्राध्यापक हिन्दी
डॉ.सी.व्ही. रमन विश्वविद्यालय, करगी रोड़ कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सामाजिक क्षेत्र में व्यवहार एवं व्यवस्था की दृष्टि से भले ही दलित एवं वंचित शब्द का प्रचलन आयुक्त हो किन्तु मेरी दृष्टि में साहित्य के क्षेत्र में इसका प्रयोग मैं उचित नहीं मानती। मुझे आज तक ऐसा साहित्य नहीं मिला जिसे पाठकों एवे श्रोताओं ने इसलिए पढ़ने और सुनने से इंकार कर दिया हो कि वह किसी छोटी जाति के व्यक्ति या किसी दलित या वंचित व्यक्ति ने लिखी है बल्कि इसके विपरीत मुझे श्रेष्ठतम और लोकप्रिय साहित्य के लेखक ऐसे लोग मिले जिन्हें समाजिक दृष्टि से वंचित या दलित माना जाता है या ऐसे लोग जिनका दृष्टिकोण उदात्त या मानववादी रहा है संत परंपरा के परिप्रेक्ष्य में यदि साहित्य सृजन के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हम पाते है कि हिन्दी साहित्य में भक्ति आंदोलन के पुरोधा रामानुज और उनके शिष्य रामानंद के वेदांती सिद्धांत मूलतः मानवतावादी और सुधार आंदोलन से अनुप्राणित थे रामानुज का कथन था कि समस्त मानव समाज के लिए ईश्वर से अपनत्व स्थापित करना एवं भक्ति के माध्यम से शाश्वत सुख का अनुभव करना संभव है। रामानंद ने पूरे भारत वर्ष का भ्रमण कर ब्राहमणों के एकाधिकार और जाति प्रथा का खंडन किया ये उनका सहज, सरल मंत्र था

''जांत–पांत पूछै नहिं कोई।
हरि को भजय, सो हरि का होई।।

उनके बारह शिष्य थे इनमें से रैदास चर्मकार थे, धर्मदास अछूत जात किसान थे, सेनापति एक नाई थे और कबीर नीची जाति के जुलाहा थे यद्यपि महावि गोस्वामी तुलसीदास जाति से ब्राहमण थे किन्तु जन्म के साथ ही उन्हें समाजिक एवं धर्मजन्य प्रताड़नाओं का शिकार होना पड़ा। मूल– नक्षत्र में जन्म लेने के कारण उन्हें माता–पिता ने घूरे में फेंक दिया गया। उन्हें राक्षस योनि का कहा गया। जन्म से ही भांति–भांति की प्रताड़नाओं का सामना उन्हें करना पडा। राजपूताना में भक्ति आंदोलन के नेता दादू भी एक नीची जाति के बुनकर थे। महान संत गुरूनानक एक मामूली व्यापारी के पुत्र थे। मराठी कवि नामदेव दर्जी थे एवं तुकाराम नीची जाति के व्यापारी थे कुल मिलाकर यदि भक्ति आंदोलन के इतिहास पर समीक्षात्मक दृष्टि से विचार किया जाए तो निष्कर्ष निकलता है कि कहीं भी भक्ति आंदोलन का नेतृत्व ब्राहमणों या पुरोहितों अथवा उच्च वर्णो वाले अभिजाल्य लोगों ने नहीं किया।

भक्ति आंदोलन की पूर्व पीठिका लगभग 721 ईसवी में उस समय से प्रारंभ हो गई थी जब इस्लाम धर्म व्यापार के माध्यम से भारत पहुंचा था। यहूदी, ईसाइयों से पहले आ चुके थे। ईसाई धर्म फादर टॉमस द्वारा भारत में आया इस काल में प्रायः सभी धर्मो में युगानुख परिस्थितियों के अनुसार धर्म, सम्प्रदायों एवं उपसम्प्रदायों को निर्माण होने लगा। इसी क्रम में वैष्णव धर्म ने भागवत सम्प्रदाय की स्थापना की इसके माध्यम से भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ। हिंदू धर्म के अंतर्गत वैष्णव के सिवाय शाक्त और गाणपत्य की गणना की जाती हैं। इसी क्रम में उल्लेखनीय है कि धीरे– धीरे समाज पंडे, पुरोहितों द्वारा फलाए गए पारलौकिक फल की आशा में लोक–लौकिक मर्यादाओं के बंधन में फंसते गए। तीर्थ और मंदिर धीरे–धीरे व्यापार के केन्द्र से लगने लगे। पंडे और पुरोहितों के आचार व्यवहार जोर–जबरदस्ती एवं मनमानी के स्तर तक उतर आए। परिणाम स्वरूप इन धार्मिक आंदोलन का सूत्रपात हुआ। जिनके सूत्रधार एवं कवियों का उल्लेख में पूर्व में किया जा चुका है।

भक्ति आंदोलन के नेता न तो पंडे पुरोहित थे और न ही मठाधीश आराम–तलब पदलोलुप समाज सुधारक थे वे एक सामान्य मनुष्य की तरह जनता की बीच रहकर अपने व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व से समाज को नई दिशा देने की ओर सक्रिय थे। वे कठिन परिश्रम द्वारा अपना जीवन–यापन करते थे उदाहरण थे कबीर कपड़ा बुनते थे उनका मत था धार्मिक जीवन का अर्थ आलस्य में समय गंवाना नहीं है हर भक्ति को परिश्रम करके स्वयं अपनी रोटी कमानी चाहिए, दूसरो की सहायता करनी चाहिए और सरल जीवन व्यतीत करना चाहिए। धन संपदा एक करने में कबीर का विश्वास नहीं था। उनका कहना था ''साई इतनी दीजिए जा में कुटुम्ब समाए, मैं भी भूखा न रहूं, साधू न भूखा जाए।''

इसी प्रकार गुरूनानक देव का मत था कि ''उन लोगों के चरण स्पर्श करने की जरूरत नहीं जो अपने को कहते गुरू और पीर है लेकिन भीख मांगते फिरते है उन लोगो ने ही जो अपने परिश्रम से अपनी जीविका चलाते है और दूसरों के साथ अपने श्रम के फलों को मिल बांट कर खाते है वे ही लोग सच्चा मार्ग पा लिए है।'' भक्ति आंदोलन के ये संत कवि अपने अनुनायियों से जीवन में सादगी,सरतला तथा समाजिक आचरण में दया और प्रेम की मांग करते थे। गोस्वामी तुलसीदास ने धर्म की महत्वा स्थापित करते हुए लिखा है कि ''परहित सरसि धर्म नहीं भाई, परपीड़ा सम नही अधमाई।''

भक्ति आंदोलन के संतो एवं कवियों ने सभी धार्मिक पाखंडो को प्रबल विराधे किया कवियों में कबीर इसके अग्रणी थे कबीर ने जन्म आधारित जाति संबंधी भेद–भाव की कड़ी निंदा की। उन्होंने कहा ''ऐसा क्यों है कि कोई शूद्र कुल में जन्म ले और जन्म भर शुद्र ही बना रहे? कोई स्वयं ही जनैव बनाए और उसे आचरण कर उच्च बन जाए। इससे तो संसार गडबड़ी ही फैली अगर तुम ब्राहमण हो तो किसी दूसरे प्रकार से क्यों न जन्में ''रे ब्राम्हन तू ब्राम्हनी जाया तो और मारग ते क्यों नहीं आया।'' वे कहते थे वे लोग जो ऊंच–नीच की बात करते है वे डूब चुके है। नष्ट हो गए है। मिट्टी एक ही है और कुम्हार भी एक ही है। एक ही सृष्टा है सब भिन्न–भिन्न रूप एक ही चाक पर गढ़े गए है।'' गुरूनानक देव ने भी कहा ''एक नूर ते सब जग उपजा कौन भले कौन मंदे। कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों दोनों ने ही कर्म–कांडो की हंसी उड़ाई है उन्होंने कहा ''पवित्र घाटो पर पानी के अलावा और कुछ नहीं है मैं जानता हूं वे निरर्थक है क्योंकि मैं उनसे स्नान कर चुका हूं सभी मूर्तियां र्निजीव है वे बोल नीं सकती। मैं यह बात जानता हूं क्योंकि में उनके सामने वर्षो जोर–जोर से रोया गिडगिडाया हूं पुराण और कर्म केवल शब्द है मैंने उनका पर्दा उठते देखा है।'' वे आगे कहते है मुसलमान जो पांच नमाज पढते है वे सब बेकार है क्योंकि उनकी इबादत सिर्फ एक दिखावा और ढोंग है जबकि उनके मन में इस सारे समय का ढोंग रचकर कॉजी गरीबों को बताता है और उनकी भलाई करने की बजाए उन्हें नुकसान पहुंचाता है कबीर ने जी कुछ कहा अपने व्यापक अनुभव और मानवीय संवेदनाओं के परिप्रेक्ष्य में कहा वे कहते है। ''तू कहता कागद की कहनी मैं कहता ऑखिन की देखी।।'' कबीर तो दावा करता है कि ''ये शरीर एक चुनरी की भांति है जिसे परमात्मा रूपी जुलाहे ने गढकर हमें दिया है। किन्तु हम सब परमात्मा के इस अनमोल उपहार का दुरूपयोग कर रहे है वे कहते है

''झीनी भीनी मस्त चुनरीया यही चुनरी संतन ने ओढी सब मैली कर दीनिह चुनरियां,
दास कबीर जतनने ओढ़ही की तस रख दीनि चुनरियां जस''

कबीर के शिष्य दादू राजपूताना के एक गरीब बुनकर परिवार में पैदा हुए अपने गुरू के समान उन्होंने ने भी सुक्तियों के रहस्यवाद और हिन्दूओं के स्कत्ववाद को समायोजित किया उन्होंने कहा ''तुम अलग–अलग संप्रदायों के मांग करते हो? यह पृथ्वी और आकाश, जल और वायु, दिन और रात, चंद्रमा और सूर्य सदैव ईश्वर की सेवा में लगे रहते है ये सब किस संप्रदाय के है? ये उस अदृश्य सत्य उस ईश्वर के होने के अतिरिक्त और किसी संप्रदाय के नहीं।'' रैदास एक चर्मकार थे। वह अपने आपको पूर्णतः ईश्वर को अपने समर्पित कर देने के समर्थक थे वे कहते थे हरि में सब कुछ है और हरि ही सबकुछ है उनका कथन था कि ''तूने मुझे भ्रम की जंजीरों से जकड़ दिया है मैंने भी तुझे प्रेम पाश में जकड़ लिया है मैं अपने को मुक्त करने की चेष्टा कर रहा हूं किन्तु मैं जब स्वतंत्र हो जाऊंगा तो तेरी आराधना कौन करेगा।'' इसी प्रकार महाप्रभु चैतन्य ने संकीर्तन को हरेक व्यक्ति के लिए लोकप्रिय बनाया उनका कथन था कि ''जाति पर आधारित धार्मिक प्रणालियों को छोड़कर सच्चा वैष्णव निराश होकर कृष्ण की शरण लेता'' उनके तीन प्रधान शिष्य थे खज, सनातन और हरिदास तीनों मुसलमान थे । महाप्रभु चैतन्य ने बंगाल में संत ज्ञानेश्वर और नामदेव, तुकाराम ने और रामदास ने महाराष्ट्र में गुरूनानक देव और सिख संतो ने पंजाब में भक्ति आंदोलनो की शुरूआत की।

इस प्रकार हम देखते है कि जहां तक प्रश्न संत परंपरा के परिप्रेक्ष्य में भारत में दलित एवं वंचित साहित्य का प्रश्न है वह मूलतः समाजिक परिप्रेक्ष्य में उच्च जातियों एवं अमीर लोगों द्वारा अपने से ही छोटी जातियों और लोगों के प्रति किए गए असमानता एवं शोषणपूर्ण व्यवहार से उपजा प्रतीत होता हैं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में जातिवादी प्रथा के उद्‌भव ने इस आग में घी का काम किया और मानव समाज को उच्च और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया और इस असमानता और उपेक्षा अन्याय और समाजिक विसंगतियों के विरोध में जिस साहित्य का सृजन हुआ उसे हम दलित एवं वंचित साहित्य की श्रेणी में रख सकते है इस व्यापक परिप्रेक्ष्य को विचार किया जाए तो वे सारे संत और साहित्य, जिसका उल्लेख पूर्व मे किया जा चुका हैं। दलित एवं वंचित साहित्य की श्रेणी में किया जा सकता है यद्यपि दलित साहित्य का उदभव बौद्ध काल से माना जाता हैं तथापि इसका पूर्ण विकसित स्वरूप बीसवी शताब्दी के पूर्व से दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि कतिपय विद्वान संत साहित्य को दलित एवं वंचित साहित्य स्वीकार नहीं करते तथापि यदि उनकी बात स्वीकार की जाए तो मात्र आक्रोश की अभिव्यक्ति या समाजिक विसंगतियों का विरोध तक ही दलित साहित्य सीमित हो जाएगा। अतः मेरा मानना है कि ऐसा समस्त साहित्य जिसका दृष्टिकोण व्यापक मानवता हो जो मानव का मानव के प्रति अत्याचार असमानता ऊंच–नीच और मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाली भावनाओं का विरोध करें। जिसका दृष्टिकोण व्यापक मानवतावादी और सर्वहितकारी हो वह साहित्य दलित एवं वंचित साहित्य की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। चाहे वह किसी भी व्यक्ति द्वारा लिखा गया हो।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. दामोदरन, के, भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुलस पहि लंशिंग हाउस प्रा.लि. दिल्ली।
2. वाल्मीकी, ओमप्रकाश, 2013, दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ दिल्ली राधाकृष्ण प्रकाशन।

भारतीय दर्शन एवं नारी समानता

डॉ. श्रद्धा हिरकने, सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
डॉ.सी.व्ही. रमन विश्वविद्यालय करगी रोड़ कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश :–

भारतीय दर्शन अथाह समुद्र की तरह है, जिसमें विभिन्न वेदों के साहित्य का संकलन किया गया है। भारत कभी भी महिला विरोधी नहीं रहा तथा वैदिक संस्कृति या धार्मिक साहित्य में कहीं भी ऐसा नहीं सिखाया गया की महिलाओं का अपमान करना या उन्हें दबा कर रखना चाहिए। भारतीय दर्शन में महिलाओं को समानता का स्वरूप माना है तथा इसमें उन महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में सोचने को मजबूर किया है। समानता के सिद्धांत में कई ऐसे मुद्दे हैं जिन पर विवाद उभरकर सामने आते हैं। जैसे समानता और स्वतंत्रता का मेल एक समस्या है। इसी प्रकार समानता का सिद्धांत बिलकुल सही है कि समान लोगों के साथ समान व्यवहार होना चाहिए। परन्तु मूर्खो और बुद्धिमानों, कायरों और साहसियों, अनपढ़ और शिक्षितों, स्त्रियों और पुरूषों मूर्खो और गौरे को एक सा कैसे माना जा सकता है। ऐसे कई तर्क देकर समता के आदर्श का विरोध किया जाता है।

प्रस्तावना :–

भारतीय दर्शन का केन्द्र बिन्दु मूलतः वेद ही है, वेद से आरम्भ होकर ब्रह्मग्रंथों तथा आरण्यकों से होती हुई यह दार्शनिक विचारधारा उपनिषदों में प्रौढ़ और परिपक्व रूप में व्यक्त हुई है। उपनिषदों में ब्रह्म, आत्मा जीव, जीवात्मा, पंचकोशामय देह, जगत, माया, बंधन और मौक्ष जैसे गूढ़ गंभीर आध्यात्मिक विषयों पर से गंभीर चिंतन हुआ है, कही न कही जीवन के प्रति एक आस्था वेदों में हैं। यही विचार और व्याख्याएँ दर्शन की ठोस आधारभूमि बनीं है।

दर्शन शब्द को शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार से व्याख की है। विभिन्न दर्शनों के प्रणेताओं और अन्य विचारकों ने भी दर्शन शब्द को अपने–अपने ढंग से अर्थ देने का प्रयास किया हैं। दर्शन शब्द दृष्टि से निकला है, जिसका अर्थ है देखना या सोचना। एक नए दृष्टी से देखना और सोचना ही दर्शन का प्रथम चरण है। व्युत्पति के दृष्टी से दर्शन शब्द का अर्थ है– ''दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'' अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए। हम क्या सोचते हैं? क्या करते हैं? क्या हम अपने कर्तव्यों का पलन करते हैं? क्या जीवन को सुचारू रूप से चलाने हेतु सुन्दर मार्ग की तलाश करते हैं? ये सभी हमारी देखने और सोचने पर निर्भर करता है।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि हमारे 'जीवन' का तथा 'भारतीय–दर्शन' का परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। ये दोनों ही एक ही लक्ष्य को सामने रखकर एक ही मार्ग पर साथ–साथ चलने वाले दो पथिक है। इन दोनों की सत्ता एक ही कारण पर निर्भर है। उस चरम तत्व का सैद्धान्तिक रूप हमें दर्शन–शास्त्रों में मिलता है, किन्तु व्यावहारिक रूप तो अपने जीवन में ही मिलता है और ये दोनों ही रूप मिलकर हमें उस परम तत्व के पूर्ण रूप का अनुभव कराते हैं। दुख का आत्यन्तिक नाश या जन्म और मरण से सदा के लिए मुक्त होना ही तो सभी का चरम लक्ष्य है। अतः जितने कार्य, छोटे से छोटे और बड़े से बड़े, हम कर सकते हैं, वे सब इसी एकमात्र लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही करते हैं। इसी प्रकार की प्राप्ति के साधन है। इनके द्वारा ही हमें उस परम पद का साक्षात्मकार होता है। इसीलिए इन को हम 'दर्शन' या 'दर्शन–शास्त्र कहते है।

भारतीय दर्शन किस प्रकार और किन परिस्थितियों में अस्तित्व में आया, कुछ भी प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना स्पष्ट है कि उपनिशद काल में दर्शन एक पृथक शास्त्र के रूप में विकसित होने लगा था। तत्त्वों के अन्वेशण की प्रवृत्ति भारतवर्ष में उस सुदूर काल से है, जिसे हम ''वैदिक युग'' के नाम से पुकारते हैं। ऋग्वेद के अत्यन्त प्राचीन युग से ही भारतीय विचारों में द्विविध प्रवृत्ति और द्विविध लक्ष्य के दर्शन हमें होते हैं। प्रथम प्रवृत्ति प्रतिभा या प्रज्ञामूलक है तथा द्वितीय प्रवृत्ति तर्कमूलक है। प्रज्ञा के बल से ही पहली प्रवृत्ति तत्त्वों के विवेचन में कृतकार्य होती है और दूसरी प्रवृत्ति तर्क के सहारे तत्त्वों के समीक्षण में समर्थ होती है। लक्ष्य भी आरम्भ से ही दो प्रकार के थे–धन का उपार्जन तथा ब्रह्म का साक्षात्कार। प्रज्ञामूलक और तर्क–मूलक प्रवृत्तियों के परस्पर सम्मिलन से आत्मा के औपनिशदिष्ठ तत्त्वज्ञान का स्फुट आविर्भाव हुआ। उपनिशदों के ज्ञान का पर्यवसान आत्मा और परमात्मा के एकीकरण को सिद्ध करने वाले प्रतिभामूलक वेदान्त में हुआ। भारतीय मनीशियों के उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह उद्भूत हुआ, उसने दूर–दूर के मानवों के आध्यात्मिक कलेश को धोकर उन्होंने पवित्र, नित्य–शुद्ध–बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। इसी पतितपावनी धारा को लोग दर्शन के नाम से पुकारते हैं। अन्वेशकों का विचार है कि इस

शब्द का वर्तमान अर्थ में सबसे पहला प्रयोग वैशेषिक दर्शन में हुआ।

भारतीय दर्शन मानव मात्र के लिए प्रकाशमान स्त्रोत है, जिसके द्वारा प्रशस्त किए हुए मार्ग पर चलकर मानव जीवन अपनी उन्नति के सोपान पार करता है। आज हम जानते हैं कि हमारा वर्तमान जीवन कितना भी घृणित और दुःखी क्यों न हो, फिर भी हम सन्मार्ग पर चलते हुए जिस प्रकार अपने भविष्य के जीवन को उज्जवल और सुखमय बनाने की आशा करते हैं और इसी कारण विभिन्न धार्मिक कार्य करते हैं, उसी प्रकार भारतीय दर्शन संसार के दुःखमय जीवन से विरक्ति को दिखाता हुआ क्रमशः भविष्य के प्रकार और आनंदमय अवस्था के मार्ग में हमें अग्रसर करता है। ज्यों–ज्यों इस मार्ग में हम अग्रसर होते हैं, त्यों–त्यों हमारे अंतःकरण का अनादि कर्म और वासनाओं से उत्पन्न मल दूर होता जाता है और क्रमशः ज्ञान विकसित होने लगता है, तथा परमानंद का आभास मिलने लगता है। दार्शनिक चिंतन का मुख्य लक्ष्य जीवन के क्लेशों को दूर करने का उपाय ढूंढना है। साथ ही साथ भारतीय दर्शन का लक्ष्य तर्क से परे पहुंचना और नीति से परे पहुॅचना भी रहा है।

प्राचीन समय में महिलाओं को पुरूषों से निम्न माना जाता था। इस समय में महिलाओं को शिक्षा का अधिकार प्राप्त नहीं था। वह केवल पुरूषों के अधिन होकर कार्य करता था। जिस भारतीय दर्शन में महिलाओं की स्थिति का वर्णन किया गया है, वह वास्तव में बहुत दैयनीय दशा से अपना जीवन यापन करने में मजबुर थे।

किसी सभ्यता की आत्मा को समझने तथा उसकी उपलब्धियों एवं श्रेष्ठता का मूल्यांकन करने का सर्वोत्तम आधार उसमें महिलाओं की दशा का अध्ययन करना है। स्त्री–दशा किसी देश की संस्कृति का मानदण्ड मानी जाती है। समुदाय का महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक आधार रखता है। हिन्दू समाज में इसका अध्ययन निश्चयतः उसकी गरिमा को इंगित करता है। हिन्दू सभ्यता में महिलाओं को अत्यन्त आदरपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

भारत की प्राचीनतम सभ्यता, सैन्धव सभ्यता के धर्म में माता देवी को सर्वोच्च पद प्रदान किया जाना उसके समाज में उन्नत स्त्री–दशा का सूचक माना जा सकता है। ऋग्वैदिक काल में समाज ने उसे आदरपूर्ण स्थान दिया। उसके धार्मिक तथा सामाजिक अधिकार पुरुषों के ही समान थे। विवाह एक धार्मिक संस्कार माना जाता था। दम्पति घर के संयुक्त अधिकारी होते थे। यद्यपि कहीं–कहीं कन्या के नाम पर चिन्ता व्यक्त की गयी है तथापि कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ पिता विदुषी एवं योग्य कन्याओं की प्राप्ति के लिये विशेष धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान करते हैं।

कन्या को पुत्र जैसा ही शैक्षणिक अधिकार एवं सुविधायें प्रदान की गयी थीं। कन्याओं का भी उपनयन संस्कार होता था तथा वे भी ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करती थीं। ऋग्वेद में अनेक ऐसी महिलाओं के नाम मिलते है जो विदुषी तथा दार्शनिक थीं और उन्होंने कई मन्त्रों एवं ऋचाओं की रचना भी की थी। विश्वारा को "ब्रह्मवादिनी" तथा "मन्त्रद्रष्ट्री" कहा गया है जिसने ऋग्वेद के एक स्तोत्र की रचना किया था। घोशा, लोपामुद्रा, शाश्वती, अपाला, इन्द्राणी, सिकता, निवावरी आदि विदुषी महिलाओं के कई नाम मिलते हैं जो वैदिक मन्त्रों तथा स्तोत्रों की रचयिता हैं।

वैदिक काल से ही महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करना उचित होगा। सबसे पहले बात करते हैं ऋगवेद की जो सबसे प्राचीन है। ऋगवेद के अन्दर लोपमुद्रा नामक महिला का वर्णन आता है। यह विदर्भ की राजकुमारी थीं। लोपमुद्रा को उनके पिता ने बहुत पढाया, लिखाया तथा विद्वान बनाया एवं उन्हें सभी शास्त्रों का ज्ञान दिया। इन्होने अपनी मर्जी से ऋषि अगस्त्य से विवाह किया। यही नहीं इन्होने बाद में ऋशि अगस्त्य को गृहस्थ जीवन का मोल भी समझाया। क्या ऐसी महिला जो पिता तथा पति दोनों के साथ अपनी मर्जी से रही तथा पढ़ी लिखी एवं विवाह भी अपनी मर्जी से किया दबी कुचली कहलाई जायेगी, यह सोचने योग्य प्रश्न है? पर पश्चिमी नव नारीवादी आन्दोलनों से निकले लोग यही कहते हैं के भारत में महिलाओ को शुरू से दबाया गया है। ''प्राचीन भारत में महिलाओं को बराबरी का दर्जा दिया जाता था तथा उनके पढने लिखने, बाहर जाने या विवाह करने पर कोई रोक टोक नहीं थी।''

चन्द्रगुप्त मौर्या ने धनानंद की बेटी से प्रेम विवाह किया था जिसमे दोनों का ही समान रिश्ता था। भारत के वेदों में 8 प्रकार के विवाहों का वर्णन है जिनमे प्रेम विवाह से लेकर स्वयंवर तक को बराबर स्थान दिया गया है, फिर भारत की संस्कृति महिला विरोधी कैसे है। शिवाजी के दरबार में एकबार कोई मुगल राजा की स्त्री को पकड़ कर ले आया तब शिवाजी ने कहा – यह स्त्री हमारे लिए माता सामान है तथा इसे ससम्मान वापस भेज दिया जाए। यही नहीं शिवाजी को महान शासक बनाने के पीछे उनकी माता जीजाबाई का बहुत बड़ा हाथ था। शिवाजी से लेकर झांसी की रानी तक कभी महिलाएं इस देश में दबायी नहीं गयीं। फिर यह बात के भारत की संस्कृति महिला विरोधी थी, एकदम गलत प्रतीत होती है। यही नहीं महाभारत में भी सबसे ताकतवर भीष्म को भी मतस्यकन्या के कारण जीवनभर कुंवारा रहने तथा राजा ना बनने की प्रतिज्ञा लेनी पड़ी थी। क्या यह सब स्त्रियाँ कहीं से कमजोर नजर आती हैं ?

इन सभी तथ्यों से यह साबित होता है के प्राचीन भारत में, भारत की संस्कृति में या भारत के हिन्दु धर्म में कभी महिलाओं को दबाने या शोषण की बात नहीं कही गयी थी। यह सब तब शुरू हुआ जब भारत पर विदेशी मुगल आक्रमण शुरू हुए। उस समय जब जीते हुए राज्य की महिलाओं को उठा कर उनसे बलात्कार एवं जबरन शादियाँ शुरू हुई– उस समय कई राजपूत महिलाओं ने पति की मृत्यु के तुरंत बाद जोहर करके स्वयं को भी जलाना शुरू किया जैसे रानी पद्मावती इत्यादि। कई जगहों पर बलात्कार आदि से बचाने के लिए बाल विवाह जैसी कुप्रथाएं भी मुगल आतंक से बचने के लिए शुरू हो गयीं।

इसी तरह अंग्रेजो ने दहेज हत्या को दहेज प्रथा का नाम दिया। जबकि असलियत में भारत में स्त्री धन नाम की एक प्रथा रही थी जिसमे पिता की संपत्ति पर जितना अधिकार पुरुष का होता है उतना ही महिला का भी ऐसी मान्यता थी। इसी आधार पर पिता अपनी पुत्री के हिस्से का धन उसकी शादी के समय अपनी पुत्री को दे दिया करता था तथा बाकी बचा धन पुत्र के लिए रखता था। इसका दुरूपयोग तब होने लगा जब अंग्रेजों ने लूट कर भारत के लोगों को कंगाल बना दिया तथा उनकी उलटी शिक्षा पद्दति में पढ़कर लोग लालची तथा पैसे के लोभी हो गए। पहले तो वस्तु विनयम की व्यवस्था थी अतः पैसे का लोभ ही नहीं था मगर बाद में अंग्रेजो ने पैसे का लालच फैलाया तथा गरीबी के कारण लोगों ने शादी में पैसा मांगना शुरू कर दिया और इस कारण कई महिलाओं की हत्याएं हुई। मगर इसका भारत की संस्कृति या धर्म से कोई लेना देना नहीं था और जैसे जैसे भारत पढता लिखता जा रहा है यह दहेज हत्याएं भी खत्म होती जा रही हैं।

महिला समानता दिवस प्रत्येक वर्ष '26 अगस्त' को मनाया जाता है। न्यूजीलैंड विश्व का पहला देश है, जिसने 1893 में महिला समानता की शुरुआत की। भारत में आजादी के बाद से ही महिलाओं को वोट देने का अधिकार प्राप्त तो था, लेकिन पंचायतों तथा नगर निकायों में चुनाव लड़ने का कानूनी अधिकार 73वे संविधान संशोधन के माध्यम से स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के प्रयास से मिला। इसी का परिणाम है कि आज भारत की पंचायतों में महिलाओं की 50 प्रतिशत से अधिक भागीदारी है।

न्यूजीलैंड दुनिया का पहला देश है, जिसने 1893 में 'महिला समानता' की शुरुवात की। अमरीका में '26 अगस्त', 1920 को 19वें संविधान संशोधन के माध्यम से पहली बार महिलाओं को मतदान का अधिकार मिला। इसके पहले वहाँ महिलाओं को द्वितीय श्रेणी नागरिक का दर्जा प्राप्त था। महिलाओं को समानता का दर्जा दिलाने के लिए लगातार संघर्ष करने वाली एक महिला वकील बेल्ला अब्जुग, के प्रयास से 1971 से 26 अगस्त को 'महिला समानता दिवस' के रूप में मनाया जाने लगा।

आजादी के बाद यदि 1949 से आज के आंकड़े देखे जाएँ तो महिलाओं का जीवन स्तर, साक्षरता दर, व्यापार तथा समाज के हर क्षेत्र में उनका दबदबा बढ़ता ही चला गया है। भारत की प्रधानमंत्री से लेकर राष्ट्रपति एवं मुख्यमंत्री, राज्यपाल तक महिलाएं बन चुकी हैं। केरल जैसे राज्यों में महिलाओं की संख्या पुरुषों से भी अधिक है एवं पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों में तो सदियों से स्त्री–प्रधान समाज रहा है जहाँ बारात लेकर महिलाएं जाती हैं एवं पति महिला के साथ उनके घर जाता है। इसी तरह छत्तीसगढ़, झारखण्ड, ओड़िसा एवं मध्यप्रदेश के कई आदिवासी इलाकों में भी सदियों से पुरुष और महिला की स्त्री सामान ही रही है तथा उनके कामो में भी भेदभाव नहीं है। ऐसे ही बिहार के मैथिलि क्षेत्र में महिलाएं घर सँभालते हुए भी अपना वर्चस्व पुरुषों से नीचे नहीं होने देती बल्कि कई जगहों पर पुरुषों को उनकी बात माननी पढ़ती है। हाल ही में महिलाओं की स्थति में सबसे बुरे माने जाने वाले हरियाणा और राजस्थान में भी बेटी बचाओ अभियान के तहत काफी काम हुआ है तथा लिंगानुपात में महिलाओं का प्रतिशत अभूतपूर्व रूप से बढ़ा है। यही नहीं हरयाणा की कई बेटियों ने जैसे साक्षी मलिक, साइना नेहवाल, फोगट बहनों आदि ने देश के लिए खेलों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की है। 1990 के बाद से लगभग आधा दर्जन भारतीय युवतियां मिस वर्ल्ड या मिस यूनिवर्स के खिताब से नवाजी जा चुकीं हैं। बॉलीवुड और टीवी सीरियलों की ख्याति इतनी अधिक है की एक समय में अफगानिस्तान का क्राइम रेट रात को सिर्फ इसलिए कम हो जाता था क्योंकि उस समय लोग 'क्योंकि सास भी कभी बहुत थी' में तुलसी (स्मृति इरानी) को देख रहे होते थे। आज बाल–विवाह और सती या जौहर जैसी चीजे लगभग शून्य हैं। यही नहीं मुस्लिम महिलाओं के लिए भी भारत में अब तीन तलाक जैसे मुद्दों पर उनके हक में फैसले आने शुरू हो गए हैं।

निष्कर्ष :–

मानव जीवन और भारतीय दर्शन का परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठतापूर्ण है। ये दोनों ही एक ही लक्ष्य को सामने रखकर एक ही मार्ग पर साथ–साथ चलने वाले दो पथिक हैं। इन दोनों सत्ता एक ही कारण पर निर्भर है। उस चरम तत्व का सैद्धातिक रूप हमें दर्शन–शास्त्रों में ही मिलता है, किन्तु व्यावहारिक रूप तो अपने जीवन में ही मिलता है और ये दोनों ही रूप मिल कर हमें उस परम तत्व के पूर्ण रूप का अनुभव कराते हैं। दुःख का आत्यन्तिक नाश या जन्म और मरण से

सदैव मुक्त होना सभी का चरम लक्ष्य है। यदि हिन्दुओं की या भारत की संस्कृति सचमुच इतनी ही खराब होती तो आजादी के बाद भी हालत वैसी ही रहती जैसी विदेषी लोगों की गुलामी के समय थी मगर आजादी के बाद भारत फिर उस दिशा में चल पड़ा जिस दिषा में भारत मुगल और अंग्रेजी आक्रान्ताओं के आने के पहले था। अतः खोट भारत या भारतीय संस्कृति में नहीं बल्कि गुलामी के समय हुए अत्याचारों तथा अत्याचारियों में थी। यह बात सीधे तौर पर नजर आती है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. महिला समानता दिवस (हिन्दी) वेबदुनिया। अभिगमन तिथिरू 22 जुलाई, 2015।
2. भट्टाचार्य एस.एन. – ''भारतीय इतिहास कोष'', लखनऊ, 2001।
3. चौहान आई.एस. – ''भारत में सामाजिक परिवर्तन'', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1990।
4. देसाई नीरा – ''वूमेन इन मॉडर्न इण्डिया'', वोरा एण्ड कम्पनी प्रकाशन, बम्बई, 1957।
5. खन्ना संतोष – ''महिला विधि भारती'', विधि भारती परिषद्, नईदिल्ली, 2005।
6. प्रभु आर.के. (संग्राहक) – ''समाज में स्त्री का स्थान और कार्य'', नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1959।
7. मैक्समूलर F. – ऋग्वेद सायण भाष्य सहित सम्पादक, 1890–92, 5 भाग वैदिक संषोधन मण्डल–पूना।
8. हरिवंश पुराण – स. भारतीय ज्ञान पीठ काशी – 1962।
9. उपाध्याय रामजी – प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, इलाहाबाद–1966।
10. त्रिपाठी चन्द्रबली – भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास, उत्तर प्रदेश–1967।
11. डा. सिंघल लता – भारतीय संस्कृति में नारी (स्मृति ग्रन्थों के विशेष संदर्भ में) दिल्ली 1991।
12. शर्मा गजानन – प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी इलाहाबाद–1971।
13. थापर रोमिला – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास अनुवाद आदित्यनारायण सिंह दिल्ली 2001।

प्रेरक कथा

राजा अश्विनीदत्त को अपने महल, धन–संपत्ति व रानी से अत्यंत मोह था। उनका यह मोह शनैः–शनैः बढ़ता जा रहा था और इस कारण उन्होंने राजकार्य पर ध्यान देना बंद कर दिया था। यह देखकर प्रधानमंत्री बहुत परेशान हुये और वे अपनी चिंता कुलगुरु संत नागानंद के समक्ष रखने पहुॅचे। मंत्री के अनुरोध पर कुलगुरु राजा से मिलने राजमहल आए। राजा ने उनका भव्य स्वागत किया। उन्हें अनेकानेक उपहार भी भेंट किए। प्रत्युत्तर में कुलगुरु ने राजा को एक कमल का पुष्प भेंट किया और उनसे कहा– "राजन्! तुम्हारा उपहार कमल की पंखड़ियों के भीतर हैं।" राजान ने कमल की पंखड़ियॉ हटाईं तो उन्हें वहॉ एक भौंरा मरा दिखाई पड़ा। वे कुलगुरु से इस उपहार का अर्थ समझ नहीं पाए। उनकी उत्सुकता को भॉपकर कुलगुरु बोले– राजन् यह साधारण भौंरा नहीं हैं, यह राजभौंरा है। इस भौरें में इतना सामर्थ्य होता है कि वह चाहे तो कठोर लकड़ी को छेदकर निकल जाए, परन्तु वहीं भौंरा कमल पर आसक्त हो जाता है तो उसकी पंखड़ियों के मध्य फॅसकर अपनी जान गॅवा बैठता है। राजा को कुलगुरु का कथन समझ में आ गया और वे मोह छोड़कर प्रजापालन–कर्त्तव्य में जुट गए।

संकलित

भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव : आचार्य विद्यासागर जी महाराज द्वारा रचित महाकाव्य 'मूकमाटी' के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. अभिनेष जैन, (हिंदी विभाग)
दिल्ली पब्लिक स्कूल, बिलासपुर (छ0ग0)

धरा में भारतभूमि, ज्ञान विभूति प्रसूता रूप में ख्यात है। वर्ण–व्यवस्था हो या आश्रम व्यवस्था; यह जीवन संतुलन चर्या जन्म सार्थक करने की दिशा में सार्थक पथ–प्रशस्तक लगती है। राई–रत्ती लेश मात्र भटकाव जीवन सिंधु पोत को प्रकाश स्तंभ स्वरूपी संत और उनके अनुभवजन्य वाणी संकलन साहित्य जन–जन के अतृप्त हृदय व मानस की क्षुधा तृप्ति साध ान बनती रहीं। दर्शन सिद्धांतों ने जन रव, दूरांचल, एकांतवासी, अधुनातन ज्ञान–विज्ञान से दूर मानव समूह के अनुभवहीन, लक्ष्यहीन, संघर्षी जीवन को भी विशिष्टताओं से युक्त किया। भारतीय दर्शन की जीवंत पाठशाला स्वरूप उदाहरण के रूप में माता शबरी का प्रेम हो या आदिवासी बालक एकलव्य की गुरू के प्रति आस्था से पूर्ण साधना के स्पष्ट चिह्न कहे जा सकते हैं जिन्होंने किसी धर्म, पंथ, मठ और ध्वजा के बंधन से परे कला, प्रेम श्रद्धा और समर्पण को साहित्य में अमर बना दिया।

भारतीय दर्शन में मनुष्य के जीवन और मरण के नित्य कार्य को समझाने के लिए अनेकानेक सिद्धांत कहे–सुने गए। कभी तो मन भी यह मानने तैयार नहीं होता कि सृष्टि का रचयिता सूक्ष्म रूप में रहकर सृष्टि कैसे रच सकता है ? माना कि दुग्ध में नवनीत और घृत समाहित है परंतु मंथनोपरांत ये उपादान पुनः दुग्ध में परिवर्तित नहीं हो सकते। 'मूकमाटी' में ये सिद्धांत तो मानने में कोई बुराई नहीं है। क्योंकि जब हम ये कहें कि जगत में कर्म बंधन ही जीवन यात्रा के उच्च–निम्न सोपान या संस्तरण निर्धारक बनते हैं। यही भेद तो है जो हमें मुक्ति पथ के लिए प्रेरित करता है। बीज वपन और फल प्रस्फुटन भी कर्म फल के सिद्धांत के लिए पुष्टिकारक है। कुछ अल्प दर्शनशास्त्री जैन दर्शन को नास्तिक मानकर प्रचारित करते हैं। परिणाम कुछ और ही है वह यह कि श्रमण–संस्कृति के सम्पोशक जैन–दर्शन ने पूर्ण आस्था व विश्वास के साथ परमेश्वर को परम सत्ता व आराध्य के रूप में भी स्वीकारा है, सृष्टि कर्ता स्वरूप में नहीं। जैन दर्शन, नास्तिक दर्शनों को सही दिशाबोध देने वाला एक आदर्श आस्तिक दर्शन है। यथार्थ में ईश्वर को सृष्टिकर्ता के रूप में मानना ही उसे नकारना है, और यही नास्तिकता है। गीता के पांचवे अध्याय की 14–15वीं कारिकाओं में :–

''न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्वते।।
नाऽऽदत्ते कस्याचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।

प्रभु–परमात्मा के जगत के कर्तापन को (स्वयं लोक कर्ता नहीं बनते), कर्मों–कार्यों को और कर्मफलों की संयोजना को नहीं रचते है; परंतु लोक का स्वभाव ही ऐसा प्रवर्त रहा है। वे विभु किसी के पाप एवं पुण्य को भी ग्रहण नहीं करते। अज्ञान से आच्छादित ज्ञान के कारण ही लोक के प्राणी मोहांध हो रहे हैं यही भाव'तेजोबिन्दु उपनिषद' की निम्न कारिकाओं से सुस्पष्ट होता है –

''रक्षको पिष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तु कारणम्।1
संहारे रुद्र इत्येवं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु।'2 (तेजोबिन्दुपनिषद्,5/51 तथा 52)

ऐसे ही कुछ मूलभूत सिद्धांतों के प्रकटीकरण हेतु कृति 'मूकमाटी'का सृजन हुआ। सोई चेतना को जगाने, जन्माचरण के अनुरूप उच्च–नीच रूप परिवर्तन को स्वीकारते हुए शुद्ध सात्विक भावों से संबंधित जीवन को धर्म कहा है जिसका उद्देश्य सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और शिक्षा जगत में आ रही कुरीतियों को दूर करते हुए, शुभ संस्कारयुक्त करने के साथ–साथ भोग पर योग की महत्ता प्रतिपादित करना है।

आश्रम व्यवस्था के संबंध में धर्ममय अर्थोपार्जन तथा वंशबेलवृद्धि पल्लवन, भावयुक्त कामेच्छा पूर्ति उपरांत वानप्रस्थ फिर संन्यासाश्रम का जीवन दर्शन भारतवर्ष की अनूठी प्रेरणा थी। बहुतेरे तो बाल ब्रम्हचारी रहते हुए जीवन भोग से परे रहकर साधु संत भावभक्ति में रमण करते और जीवन मूल्यों को ओजस्वी वाणी से प्रकट करते। ये भाव लोकतत्व की अमिट विरासत दर्शन चिंतन का विषय बनने लगे। संत साहित्य की भाव गंगा में बौद्ध साहित्य और जैन साहित्य का भी अनूठा स्वरूप रहा जिस पर आज भी देश–विदेश में शोध के विषय बनते रहे। इसी परंपरा में संत शिरोमणि 108 जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी

महाराज द्वारा रचित अनेक ग्रंथों में से एक 'मूकमाटी' का ऐसा गहन दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है । ऐसा स्वरूप जो पंचतत्व के वास्तविक स्वरूप से दिग्दर्शन कराता है।

'मूकमाटी' महाकाव्य चार–खंडों में विभक्त किया है–

खण्ड 1 संकर नहीं : वर्ण–लाभ

खण्ड 2 शब्द सो बोध नहीं : बोध सो शोध नहीं

खण्ड 3 पुण्य का पालन : पाप–प्रक्षालन

खण्ड 4 अग्नि की परीक्षा : चांदी–सी राख

प्रथम खण्ड संकर नहीं : वर्ण – लाभ :– इसमें मिट्टी की प्राथमिक दशा को देखा जा सकता है जिसमें दोष रूप में कंकड़ और छोटे बड़े पत्थर जैसे अनेक दोष देखे जाते हैं। कुम्हार जिस निर्दोष मिट्टी की प्राप्ति चाहता है वह प्रकृति के बेमेल तत्वों को हटाकर दोष रहित और कोमल माटी बनाकर ही मंगल घट निर्माण के लिए अनिवार्य गुण चाहता है।

''वर्ण का आशय/ न ही रंग से है/न ही अंग से
वरन/चाल–चरण, ढंग से है।
यानि !
जिसे अपनाया है
उसे/जिसने अपनाया है
उसके अनुरूप/अपने गुण–धर्म–
कृरूप–स्वरूप को
परिवर्तित करना होगा।
वरना
वर्ण–संकर दोश को
वरना होगा !..... (मूकमाटी, पष0,68)

खण्ड दो–शब्द सो बोध नहीं : बोध सो शोध नहीं

यह चेतन मात्र पुस्तकीय ज्ञान से ही ज्ञानी नहीं होता। हम यूँ कहें कि –

'पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।' बल्कि अक्षर ज्ञान ही बोध कराने में समर्थ है यह मानने के बजाय यह भी चेतन मान ले कि शोध वृत्ति ही बोध का मूलाधार है। मिट्टी भी प्रेम जल पाकर कंकड़ों से रहित होकर रौंदी जाती और कष्ट सहती है। कण–कण में जब तक प्रेम रूपी जल का संचार प्राणतत्व न बन जाय वह नए रूपाकार को कैसे स्वीकार सकती है। यही तो जीव की वर्तमान जीवन दर्षन की मूलावस्था से संबद्ध लगती है। जैसे –

''लो, अब शिल्पी/कुंकुम–सम मृदुं माटी में
मात्रानुकूल मिलाता है/छना निर्मल–जल।
नूतन प्राण फूँक रहा है/ माटी के जीवन में।
करूणामय कण–कण में,.....
माटी के प्राणों में जा, पानी ने वहाँ/नव–प्राण पाएँ हैं
ज्ञानी के पदों में जा/अज्ञानी ने जहाँ/नव–ज्ञान पाया है।'' (मूकमाटी, पृ0 117)

सही तो है, जब हम ज्ञानी के चरणों में मिट्टी के तरह समर्पित नहीं होते नए ज्ञान की प्राप्ति कैसे ? कौन कहता है कि माटी में मूक संदेश नहीं छिपा है। ये लो मिला न नवदर्शन जो पुरातन होकर भी सजीव सचेतन मुक्तिप्रदाता बन रहा है।

''आना,जाना,लगा हुआ है
आना यानि जनन–उत्पाद है,
जाना यानि मरण–व्यय है
लगा हुआ यानि स्थिर–ध्रौव्य है (मूकमाटी, पृ0 230)

लो, हो गया न विचारों के धरातल पर नया चिंतन। जैसे– उच्चारण यदि 'शब्द' मात्र है, जिसके सर्वांगीण भावार्थ के गहन–गूढ़ार्थ को समझना 'बोध' है जिसे अनुभूत करते हुए सदा आचरण में बनाए रखने की प्रक्रिया में रखना 'शोध' है।

खण्ड तीन–पुण्य का पालन : पाप–प्रक्षालन

इस खण्ड में समुद्र में पाई जाने वाली सीपी भी धरा से संबद्ध अभिन्न अंग है जिसके अंक में मुक्ता का वास अनायास नहीं है। इसमें धरती के उपादान जल के तपने, मेघ बनकर पुण्य दशा में सीपी में समाने की घटना भी पुण्य कर्म का विधान माना गया है।

''मौलिक मुक्ताओं का निधान सागर भी है
कारण कि
मुक्ता का उपादान जल है,
यानि–जल ही मुक्ता का रूप धारण करता है'' (मूकमाटी, पृ0 236)

मानव भी सीपी सम हृदय में पुण्य कर्म के मुक्ति मुक्ता को तभी पा सकता है जब प्रेम जल तपस्या से तपकर प्रभु कृपा रूप में विशेष अवस्था में भक्त पर बरसने लगे। तभी तो आत्मा की मुक्ति मुक्ता हृदय में पनपती है।

''जल और ज्वलनशील अनल में
अन्तर शेष रहता ही नहीं/साधक की अन्तर/दृष्टि में।
निरन्तर साधना की यात्रा/भेद से अभेद की ओर
वेद से अवेद की ओर/बढ़ती है, बढ़ना ही चाहिए। (मूकमाटी, पृ0 320)

खण्ड चार–अग्नि की परीक्षा : चाँदी–सी राख

साधक की साधना उस कुम्हार की तरह मानी गई है जिसने अपने सारे जीवन को तपाने और आकार देने के लिए सर्वस्व लगा दिया। बबूल की लकड़ी अवे में जलने के लिए तैयार है। कुम्हार अवे में अपक्व घट को तपाना चाहता है पर घड़े की अंतर्दशा की ओर किसकी दृष्टि जाती है ? घट आँच पर निरंतर पकने तैयार है भी या नहीं। ऐसी ही अवस्था नए साधक की भी देखी जा सकती है। इस अंतिम खण्ड में संत काव्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता और सार्थकता को प्राप्त करता, जिज्ञासा भरता दिखाई देता है।

''मेरे दोषों को जलाना ही/मुझे जिलाना है
स्व–पर दोषों को जलाना/ परम–धर्म माना है संतों ने।

• • •

''मुझमें जल–धारण करने की शक्ति है
जो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है,
उसकी पूरी अभिव्यक्ति में/तुम्हारा सहयोग अनिवार्य है।'' (मूकमाटी, पृ0 330 व 335)

इस खंड का सार प्रस्तुत करना कृति के साथ सर्वथा अन्याय प्रतीत होता है। फिर भी कुछ भाव देखें तो कुछ पक्ष हमारे सामने प्रस्तुत हैं। ऐसी साधना का परिणाम जब कुम्हार अवा में घट तप चुका है, राख हटती है, चांदी सी सफेद राख तले छिपा कुछ नया स्वरूप घट का।

''ज्यों–ज्यों राख हटती जाती,
त्यो–त्यों कुम्हकार का कुतूहल
बढ़ता जाता है, कि
कब दिखे वह कुषल कुम्भ .....।'' (मूकमाटी, पृ0 358)

लो घट तैयार है, पारखियों के हाथों में सात बार बजाया जा रहा है। स्वर भी तो उठेंगे ही । इन स्वरों में कैसी मधुर ध्वनियों का संसार के सार का पूर्ण भाव लेकर प्रकट हो रहा है।

''सा .....म यानि (सारे गम)
सभी प्रकार के दुख
प.....ध यानि पद–स्वभाव

और/नि यानि नहीं–

दुख आत्मा का स्वभाव–धर्म नहीं हो सकता,

मोह – कर्म से प्रभावित आत्मा का (मूकमाटी, पृ0 363)

जीवन के अंतरमन के संघर्श को विस्तार से समझना और 'मूकमाटी' काव्य को समझना उच्चकोटि के साहित्यकार और विद्वान के लिए ऐसी कसौटी है–जिसने इसे पढ़ा वह वैसा ही अनुभूत हुआ जैसे मेरी नजरों में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' जी की काव्य साधना 'असाध्य वीणा' के गुंजरित भाव। जिसमें प्रत्येक जन अपनी–अपनी भावनानुकूल पार उतरते हैं।

'मूकमाटी' महाकाव्य का सृजन आधुनिक भारतीय साहित्य की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। सर्वप्रथम तो यह कि माटी जैसी अकिंचन, पद दलित और तुच्छ मानी जानी वाली वस्तु को महाकाव्य का विषय बनाने की कल्पना ही नितांत अकल्पनीय है। माटी की तुच्छता से चरम भव्यता के दर्शन करके उसकी विशुद्धता के उपक्रम को मुक्ति की मंगल–यात्रा के रूप में ढालना कविता को आध्यात्म के साथ अ–भेद की स्थिति में पहुँचाना है। यह काव्य कर्म मात्र न होकर दार्शनिक संत की आत्मा का संगीत है–संत जो साधना के जीवंत प्रतिरूप हैं और साधना, जो आत्म विशुद्धि की मंजिलों पर सावधानी से पग धरती हुई, लोक मंगल को साधती है। ये संत तपस्या से अर्जित जीवन दर्शन को अनुभूति में रचा–पचा कर सबके हृदय में गुंजरित कर देना चाहते हैं। निर्मल वाणी और लक्ष्यपूर्ण संप्रेषण का जो भावोद्गार गुरूदेव के प्रवचनों में प्रवाहित हो उठता है– उसमें मुक्त छंद की गहन आकांक्षा और काव्यानुभूति की अंतरंग लय समन्वित करके आचार्य श्री ने काव्य का रूप दिया है।

मन में यह जिज्ञासा उठना अस्वाभाविक नहीं है कि 'मूकमाटी' को महाकाव्य की श्रेणी में रखा जाए या खंड काव्य या मात्र काव्य। इसे महाकाव्य की परंपरागत परिभाषा के चौखटे में जड़ना संभव नहीं है परंतु यदि गहनता से विचार करें तो चार खंडों तथा 550 पृष्ठों में समाहित यह रचना परिमाण की दृष्टि से यह महाकाव्य की सीमाओं को छूता है। काव्य का पहले पृष्ठ से ही महाकाव्य के अनुरूप प्राकृतिक परिदृष्य मुखर हो जाता है–

''सीमातीत–शून्य में'/ नीलिमा बिछाई,

और.....इधर.....नीचे/निरी नीरवता छाई है?

–– –– ––

भानु की निद्रा टूट तो गई है

परंतु अभी वह/लेटा है/माँ की मार्दव गोद में.....

प्राची के अधरों पर/ मन्द मधुरिम मुस्कान है.....''

इसी परिप्रेक्ष्य में कुमुदिनी, कमलिनी, चाँद,तारे, सुगंध, पवन, सरिता तट और माटी जीवंत हो उठते हैं–

''सरिता–तट की माटी

अपना हृदय खोलती है/माँ धरती के सम्मुख!'' (मूकमाटी,पृ0–3)

यह सारा प्राकृतिक परिदृष्य इस बिंदु पर आकर एक मूलभूत दार्शनिक प्रश्न पर केंद्रित हो जाता है

''इस पर्याय की इति कब होगी

बता दो, मा ..... इसे !.....

कुछ उपाय करो माँ !/ खुद अपाय हरो माँ !

और सुनो,/विलम्ब मत करो

पद दो, पथ दो/पाथेय भी दो, माँ !'' (मूकमाटी, पृ0 4–5)

सार में हम तो यही कह सकते हैं कि गुरु तो प्रवचन ही दे सकते हैं, 'वचन नहीं।' आत्मोद्धार पुरुषार्थ से हो सकता है अविनश्वर सुख वचनों से बताया नहीं जा सकता । वह तो साधना से प्राप्त आत्मोपलब्धि है। साधु की देशना है–

''विश्वास की अनुभूति मिलेगी

अवश्य मिलेगी/ मगर

मार्ग में नहीं, मंजिल पर

और

महा–मौन में डूबते हुए संत .....

और,

माहौल को अनिमेष निहारती–सी / मूकमाटी .....' (मूकमाटी,पृ0 553–554)

'मूकमाटी' काव्य को जीवन दर्शन के सार रूप में देखना और अनुभूत करना निश्चय ही अनूठा अनुभव होगा। यह महाकाव्य हिंदी, अंग्रेजी, कन्नड़, गुजराती, बंगला और मराठी अनुवादों में भी हुआ। जिस पर अब तक अनेक डी0–लिट्, पीएच0–डी तक हो चुकी हैं। 'मूकमाटी'महाकाव्य के पृष्ठ 169–170 पर मुद्रित कविता के अंश म0प्र0 राज्य शिक्षा केंद्र भोपाल द्वारा निर्मित कक्षा नवमीं की हिंदी विशिष्ट 'नवनीत' नामक पाठ्यपुस्तक 2018–19 में कविता का स्वरूप एवं विकास पाठ में पद्य साहित्य का इतिहास शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित हुई। बस्तर विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़ के एम0ए0 के पाठ्यक्रम में तथा भोज विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल होना भी एक सौभाग्य का विषय रहा है।

(इस आलेख के लिए लेखन सामग्री, हेतु प्रेरणा तथा आधार आचार्य श्री विद्यासागर एप में 'मूकमाटी' महाकाव्य फाइल के प्राक्कथन से उल्लिखित तथा ज्ञानपीठ प्रकाशन के 14वें संस्करण, 2016 में प्रकाशित हुआ था। सचित्र संस्करण 2018 में प्रकाशित हुआ था। जिसका बेहतरीन प्राक्कथन माननीय लक्ष्मीचंद्र जी जैन ने सितंबर 1988, दिल्ली पर्युषण पर्व ने लिखा। जो आज भी प्रेरणा पाथेय बनकर उपस्थित होता है।)

प्रेरक कथा

एक बार राजा अपने राज्य में घोषणा करवाता है कि उसे योग्य मंत्री की तलाश है, तीन युवक सभी परीक्षाओं को पास कर अंतिम परीक्षा में पहुॅचते है। राजा तीनों युवकों को एक–एक बीज देता है, तीन महीने बाद इस बीज से जो पौधा बनेगा उसे लेकर आना तब मैं मंत्री की घोषणा करुंगा तीन माह बाद तीनों युवक राजमहल में पहुॅचते है, तीसरे युवक का हाथ खाली रहता हैं। राजा से रुबरु होने पर पहले दो युवक कहते है, राजा साहब हमने आपका दिया हुआ बीज लगाया और नियमित रुप से उसे खाद पानी देते रहे, और उस बीज से यह बड़ा पौधा तैयार हो गया हैं। राजा तीसरे युवक से पूछते है तुम्हारा बीज कहॉ है तुम पौधा लेकर नहीं आये। युवक मुस्कराते हुये जवाब देता है, राजा साहब आपने जो बीज दिया वह सड़ा हुआ था, उसमें से पौधा नहीं आया। राजा यह बात सुनते ही उस तीसरे युवक को मंत्री बनाने की घोषणा कर देता है, क्योंकि राजा ने तीनों युवकों को जो बीज दिया था वह सड़ा हुआ था। पहले और दूसरे युवक ने झूठ बोला इसलिये राजा ने तीसरे युवक को मंत्री बनाने की घोषणा की।

संकलित

संत काव्य में दलित चेतना

डॉ. लोकेश्वर प्रसाद सिन्हा, सहायक प्राध्यापक
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

हिंदी साहित्य में दलित चेतना मध्यकाल के निर्गुण संत कवि रैदास और कबीर से होती हुई 'हीरो डोम' और 'अछूतानन्द' तक आयी है। प्राचीन काल में हमारा समाज चार वर्णों में विभक्त था– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र प्रथम वर्ण के साथ–साथ दूसरा और तीसरा वर्ण भी कभी नहीं चाहा कि यह चतुर्थ वर्ण (शुद्र) आगे आये, उन्नति करे दलित वर्ग को सदियों तक शोषित रखा गया तीनों वर्णो की सेवा करना, निम्न से निम्न काम करके तीनों वर्णो को प्रसन्न रखना दलित वर्ग का काम था। धीरे–धीरे दलित वर्गो में जागृति आई दलित साहित्य सृजन करके इनकी रक्षा करने का प्रयास किया गया। हिन्दी का निर्गुण भक्ति आंदोलन दलित वर्ग का क्रांतिकारी शंखनाद था। इसलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्तिकाल को 'हिन्दी साहित्य का स्वर्ग युग कहा है'। दलित चिंतक डॉ. आनंद वास्कर लिखते हैं कि– ''भक्ति काल में निर्गुण धारा के संत कवियों ने जाति–पांति का खण्डन करते हुए वृहद मानवता का पक्ष लिया तो तुलसीदास जैसे लोकप्रिय भक्त कवि ने वर्ण–व्यवस्था के ताने बाने को बनाये रखने पर जोर दिया। अधिंकाश निर्गुण कवि दलित ही थे अतएव उन्हें हिन्दी का सच्चा दलित कवि कहा जा सकता है। कबीर, रैदास ऐसे ही कवि थे।'[1]

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग की कविता में दलित वर्ग की दुर्देशा को काव्य के क्षेत्र में क्रांति प्रस्थापित करते हुए दलित–वर्ग की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक मुक्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य–ध ाारा में राष्ट्रीयता की व्यापक पृष्ठभूमि को निभाते हुए दलित वर्ग का चित्रण गहरी सहानुभूति एवं तीव्रता के साथ हुआ है। छायावादी काव्यधारा मे अपने सामाजिक और ऐतिहासिक जीवन की अभिव्यक्ति है, पीड़त और दलितों के अत्यधिक करीब रहे हैं। प्रगतिवादी काव्य धारा, प्रयोगवादी काव्य एवं नई कविता में दलित वर्ग का व्यापक चित्रण पाया जाता है। इस काल के कवियों ने दलितों की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दुर्दशा का मार्मिक चित्रण बड़ी ही गहराई के साथ किया गया है।

समाज में राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक आडम्बर एवं आर्थिक शोषण से मानव की स्थिति दयनीय होती जा रही थी । साथ ही साथ देश में नए विचारक, चिंतक और सुधारक निर्माण हो रहे थे, जिनकी प्रेरणा से उपेक्षित, पीड़ित, दीन–हीन दलित मानव अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील हो उठा। 3 वीं शताब्दी में संतों का युग शुरु हुआ, जिन पर सिद्धों और नाथ योगियों का प्रभाव साफ दिखाई देता है। इन भक्तों ने निर्गुण भक्ति के माध्यम से सामाजिक असमानता, जात–पांत, ऊँच–नीच, भेदभाव, कर्मकाण्ड और ब्राह्मणबाद पर सीधी चोट करते हुए समानता, सदभाव और भाई–चारे पर जोर दिया। संत रैदास, कबीर, गुरुनानक, दादू दयाल, नामदेव आदि संतों ने सरल हिन्दी भाषा में दोहे, भजन तथा अन्य छदों मे रचनाएँ की, जिनका जनमानस पर व्यापक प्रभाव पड़ा। संतों के विचारों से दलित वर्गों में चेतना आयी और अपनी खोई हुई सांस्कृतिक परम्परा को पुनः आत्मसात करने लगा।

सामाजिक समता के अग्रदूत संत रैदास ने भारतीय समाज के दलित पीड़ित वर्ग को नया जीवन दान प्रदान किया। उनमें आत्म सम्मान जागृत किया। साथ ही समाज मे ऊँच–नीच, जात–पात के भेद को मिटाने तथा समानता, प्रेम, आपसी भाई–चारा, सदाचार व नैतिकता का संदेश दिया। संत रविदास का कहना था कि सृजनकर्ता ईश्वर है। उसने सभी को एक ही मिट्टी से बनाया है। सब ईष्वर की ही सन्तान है। इसलिए सब समान है।

''रविदास एकै ब्रह्म का ,होई रहयो सगल पसार।
एक माटी सब घट सृजै , एकै सभकू सरजन हार।।''[2]

रैदास वर्ण–व्यवस्था के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि वर्ण या व्यवसाय के आधार पर कोई ऊँचा और कोई नीचा नहीं था।

''रविद्‌ास एकहि नूर सो, जिमि उपज्यों संसार।
ऊँच–नीच केहि विधभये, बाम्हन, सूद्द चमार।।''[3]

संत रैदास जाति के चमार थे, पर उन्होने अपनी आध्यात्मिक शक्ति से काशी के पण्डे, पुजारियों, संतों और सामन्तों को प्रभावित किया और अछूत जाति के लोगों में स्वाभिमान जागृत किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में 'कह रविदास खलास चमारा' का उद्‌घोष कर आत्म ग्लानि में डुबी दलित जातियों के प्रति आत्म–गौरव बढ़ाया।

''मस्जिद से कछु छिन नहीं,
मन्दिर सी न कछु प्यार।
दोऊ मह अल्लाह राम नहीं,
कह रविदास खलास चमार।''[4]

संत रैदास ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों समाजों में व्याप्त कठमुल्लापन पर प्रहार किया। उन्नका कहना था कि मंदिर और मस्जिद महज दिखावा है। इनके द्वारा धर्म के नाम पर दुकानदारी चलाई आती है। ईश्वर दोनों में से किसी में भी नहीं रहता। इनके नाम पर के ठेकेदार लोगों को ठगते हैं।

''मस्जिद से कुछ घिन नाही, मन्दिर सो नहिं पिआरे,
दोऊ महि अल्ला राम नहिं, कह रविद्धास चमार।।''
''कृष्ण करीम राम हरि राघव, जब लग एक न पेशा।
वेद कतेब कुरान पुरातन, सहज एक नहि बैघा।।''[5]

डॉ. बाबा साहेन अम्बेंडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, महू के आचार्य रामगोपाल सिंह अपने ग्रंथ 'संत रविदास का सामाजिक दर्शन' में लिखते हैं– ''दरअसल वे जाति व्यवस्था के इसलिये खिलाफ थे, क्योंकि वे अनुभव करते थे कि यह सामाजिकता की भावना समाज को नौंटती है। लोग जात–पात के झगड़े में उलडे रहते हैं। इसलिये उनमें मानवता का विकास नहीं हो पाता।''[6]

रैदास जी का जीवन दर्शन ही उपदेश है। कर्म मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है, धर्म में व्याप्त कर्मकाण्ड नहीं, रैदास धार्मिक हैं, पर अन्ध भक्त नहीं है, बल्कि कर्म के बल पर धर्म की मर्यादा स्थापित करने में विश्वास रखते हैं। तभी तो रैदास जी कहते हैं कि– ''मन चंगा तो कटौती में गंगा।''[7]

संत शिरोमणि रैदास के विषय में जितना कहा जाए उतना ही कम है। लेकिन यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि इनकी बानी, साखी तथा भजन– कीर्तन, बोल जितनी तत्कालीन परिस्थितियों में उपयोगी रहा है, उतना ही आज के समाज के लिये भी प्रासंगिक है। संत के जीवन से संबंधित बहुत से लिखित सामग्री प्राप्त है, जिसमें भगवान रविदास की सत्यकथा, 'रविदास रामयाण', 'रविदास जी सत्य स्वभाव, रैदास पुराण, रैदास और रैदास की पश्चिमी जैसे लिखित दस्तावेज हैं। आधुनिक संदर्भ में नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिये अपरिहार्य एवं अभिष्ट है ।

मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में मूल्यों के संकट के दौर में जब धार्मिक रुढियाँ, जातीय दंभ, पाखंड और असमानता का बोलबाला था, संत रविदास के समकालीन कबीरदास ने निर्गुण–निराकार ब्रह्म की उपासना द्वारा समाज के उपेक्षित लोगों में नवाजागरण का युगघोष किया। निर्गुण भक्ति को उन्होने सामाजिक समता, सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। शोषित और दिशाहीन जन मानस में उनका ज्ञान–भक्ति का प्रचार – प्रसार धार्मिक – सामाजिक एकता का आधार बना। संत कबीरदास की वानियों ने समाज को जोड़ने में जो महती भूमिका निभाई वह भारत के सामाजिक इतिहास की एक बेजोड़ घटना है।

संत कबीरदास जिस युग में पैदा हुए थे, तन इस्लाम अपने पैर जमा चुका था। सूफियों और मौलबियों का समाज पर गहरा प्रभाव था। ब्राह्मण और पुरोहित बर्ग ने साधारण जनता कौ आडम्बरों और रुढ़ियों के बंधन में जकड़ रखा था। छोटी जातियों को धार्मिक ग्रंथ तथा विद्या पढ़ने का अधिकार नहीं था। पूजा, उपासना, भक्ति आदि पर पंडे–पुजारियों का एक छत्र अधिकार था। इसे रविदास ने तोड़ा। रविदास जैसे संतों ने भक्तिते के द्वार भानच मात्र के लिए स्वोल दिये। उनकी भक्ति पूर्ण रचनाएँ– बिमल, शुभ्र– शीतल प्रेम की दयोतक है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उनका धार्मिक रचना संसार आत्मानुभूति का साहित्य है, जिसमे समता और सामाजिक क्रांति का संदेश है। जिस वर्ग का वे नेतृत्व करते थे, उसमें वर्ग–चेतना उत्पन्न करने में उन्हें भारी सफलता मिली, इसे नकारा नहीं जा सकता। इसलिए संत कवियों की वैचारिक क्रांति सफल कही जाएगी।

जिस समय कबीर का जन्म हुआ सामाजिक जीवन बहुत ही चिन्ताजनक था। समाज पतन की दिशा में था, वह छूताछूत और जात–पांत के बंधन में बुरी तरह जकड़ा हुआ था। कबीर ने सामाजिक कुरुतियों को दूर कर आशा और विश्वास का संदेश दिया। लाखों दलितों, शोषित पीड़ित जनों का उद्धार किया ।

कबीर ने जहाँ धार्मिक और दार्शनीक क्षेत्र में सुधार लाने का प्रयास किया है, वहीं उन्होंने समकालीन जीवन में परिव्याप्त जातिगत ऊँच–नीच और भेदभाव की भावना, छूआछूत की भावना, दुराचार की समस्या ओगीद कुप्रवृत्तियों पर तीव्र

प्रहार किया। दलित चेतना की दृष्टि से कबीर की उक्तियाँ इतनी अधिक मार्मिक है कि वे कबीर कालीन सामाजिक कुरीतियाँ हीं नहीं, अपितु आधुनिक कालीन सामजिक कुरीतियाँ पर भी पूर्णतः चरितार्थ होती है। छूआछूत की समस्या पर यद्यपि तीव्र कुठाराघात आधुनिक काल में गाँधी जी द्वारा किया गया, किन्तु इस दिशा में कबीर भी पीछे नहीं उन्होने कहा –

''पंडित दढेखहु मन में जानी

कहु धौं छूति कहाँ से उपजी, तबहि छूति तुम मानी।''[8]

जाति–सम्प्रदाय, ऊँच–नीच के आधार पर मनुष्य–मनुष्यों में भेद करना हर दृष्टि से अपराध है। मध्ययुग में इन अनेक अंधकार, अज्ञान रुपों का विरोध किया संतों ने। कबीर, नानक, दादू, रैदास, मलूक, सहजोबाई आदि सन्तों की सुदीर्घ परम्परा ने इस अज्ञानान्धकार को मिटाने की चुनौती दी। इस चुनौती के पीछे पुनः उनके पास अध्यात्म ज्ञान का सबल आधार था। मनुश्य के भौतिक जगत को सँवारने की चिन्ताएँ थी, तो साथ ही आध्यात्म का पूर्ण ज्ञान का चिन्तन भी था।

इसी धरती और विश्व को सँवारने–सँभालने की चिन्ताएँ ही सन्तों की वाणी में मुखर है। सन्तों ने प्रेमभाव, भक्तिभाव, दयाभाव, सद्भाव आदि की बात सदा की है क्योंकि 'प्रेमभाव' ही मनुष्य होने की, उसकी श्रेष्ठता की कसौटी है, प्रमाण है। प्रेम, दया सहजता को जहाँ इन्होंने नैतिकता के स्तर तक उठा दिया है, वहीं जतिगति, ऊँच–नीच के विचारों को, आडम्बर पूर्ण आवरण को अस्वीकार किया है, अनैतिक मानकर इनका इतना तिरस्कार किया है। कबीर का कथन, इस संदर्भ में द्रष्टव्य है –

''मेरे संगी दोइ जणौ, एक वैष्णों एक राम।

वो है दाता मुकति का, वो सुभिरावे नाम।।''[9]

रामभक्त–वैष्णों और राम–बस ये दो ही सच्चे साथी है–संघाती है। राम यदि मुक्ति देने बाला है– आनन्द से भागने वाला है तो वैष्णव उस राम का स्मरण करने वाला है, सतसंगी है।

''दुराचारी वैष्णो बुरा, हरिजन तहाँ न जाई।''[10]

मध्ययुगीन संतों ने अनेक सामाजिक बुराइयों का अति मुखर विरोध किया है। वर्ण व्यवस्था, जाति–पाति और सम्प्रदायगत भेद–भाव या विरोध बडी सटीक तर्कशक्ति से किया है जिसने आगे उन्हें निरुत्तर कर दिया है। बल्कि कई जगह पर तो ऐसे लोगों की स्थिति हास्यापद बना दी है। कबीर की उक्ति में कैसी प्रहारक शक्ति हैं–

''जो तू बाभन बाभरी जाया, तौ आन राहै काहेना आय।

जो तूँ तुरक तुरकनी जाया, ती भीतर खतना क्यों न कराया।।[11]

संत कबीर ने असीम अपेक्षा, अपमान, दरिद्रता, भूख देखने–भोगने के बाद भी मनुष्य और प्राणीमात्र के लिए अटूट धैर्य, आस्था, विश्वास, आत्मसम्मान के ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए है, जो विश्व साहित्य में अनुपम है। इस संसार में किसी भी देश, जाति में ऐसे उदाहरण दुर्लभ है। व्यक्ति की और समाज की मुक्ति सबके साथ सम्मिलित रूप में स्वीकार करने पर, हाथ के काम को भगवान की सच्ची पूजा मानकर, मन को गंगा जैसा निर्मल बनाकर मनुष्य भगवान से भी बड़ा हो सकता है। यह कोई अचम्भा नहीं न गर्वोक्ति, बल्कि सहज – स्वीकृत, अनुभूति सत्य का विनप्र कथन है –

''कबीरा मन निर्मल भया, जे सी गंगा नीर।

पीछे–पीछे हरि फिरें, कहत कबीर–कबीर।।''[12]

कबीर और कबीर के पथ का अनुसरण करने वाले बाद के सन्तों ने मनुष्य की मनुष्यता को जगाने, उन्नत करने, संवेदनीयता के उजाले से जड़ता के भौमिकता के अंधेरे को काटने के बड़े सफल प्रयास किये हैं। कबीर ने तो यहाँ तक कह दिया –

''शून्य मरै, अनपा मरि, अनहढ़ हूँ मरिजाए।

राम स्नेही न मरे, राह कबीर समुझाए।।''[13]

संत कबीर वे समाकालीन सनतो नामदेव, रैदास, तुकाराम आदि ने अनेक सामाजिक कुराईयों का अति पुखर विरोध किया है।

गुरूनानक देव में लेकर सिखों के दसवें गुरू गोविन्द सिंह ने ब्राह्मणवाद कर्मकाण्ड और माननीय भेदभाव के खिलाफ वाणी लिखकर सन्तों के कार्य को आगे बढ़ाया। सिखां के पवित्र ग्रंथ ''श्री गुरूप्रन्थ साहित्य' में 34 दलित सन्तों की वाणियों संकलित की गई हैं जिनमें संत गुरू रैदास एवं सन्त कबीर साहब की वणियों को विशेषता दी गई है। दलितों को समाज में सम्मान दिलाने में सिख गुरूओं का महान योगदान है।

गुरूनानक ने वर्णव्यवस्था को ठुकराते हुए कहा –

''नीचा अन्द नीच जात, नीची हूँ अति नीच।
नानक तिनके संग साथ, बड़िया सीधु किया रीस।।
चार चरण इक वरण कराओं।
पैरी पण्डया जग करवह्य,
वाहे गुरू का काम जमाओं।''[14]

सन्तों की वाणी में जो विचार आए हैं, वे भी समता मूलक हैं। सदभाव, आत्म भाव के गर्भ से पैदा हुए हैं। उनमें समाहित चेतना लोकवादी और समता मूलक है। सन्तों का सारा सोच आत्म–परमात्म की दिशाओं वाला होने से कहीं, किसी प्रकार का भेद नहीं मानता। आर्थिक, सामाजिक संघर्ष के विचार उनकी वाणी में नगण्य है। सन्तों ने अपने–अपने सम्प्रदाय की सीमाओं को भी स्वीकार नहीं किया। तत्कालीन परिस्थितियों में मुस्लिम समाज में ऊँच–नीच का भेदभाव कम ही था, क्योंकि सामाजिक दृष्टि से प्रत्येक मुसलमान बराबर का दर्जा रखता था, किन्तु हिन्दू समाज में एक हिन्दू तथा कथित उच्च और दूसरा निम्न स्तर का माना जाता था।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. आनंद वास्कर : हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, पृ. 349।
1. डॉ. आनंद वास्कर, हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, पृ. 349।
2. आचार्य रामगोपाल सिंह, सन्त रविदास का सामाजिक दर्शन डी, अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका का अंक–10, 2002, पृ. 25।
3. आचार्य रामगोपाल सिंह, सन्त रविदास का सामाजिक दर्शन डी, अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका का अंक–10, 2002, पृ. 25।
4. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, संत भाखे रविदास स्मारिका 2004, भारतीय दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, पृ. 13–14।
5. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, संत भाखे रविदास स्मारिका 2004, भारतीय दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, पृ. 30।
6. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, संत भाखे रविदास स्मारिका 2004, भारतीय दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, पृ. 26।
7. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, संत भाखे रविदास स्मारिका 2004, भारतीय दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, पृ. 34।
8. डॉ. शुकदेव सिंह, कबीर, बीजक; पृ. 125।
9. डॉ. बलदेव वंशी, ज्ञान के अस्त्र के कबीर–परम्परा ने लड़ी दलितों की लड़ाई, ''पूरा कबीर में उद्घृत'', पृ. 258, प्रथम संस्करण 2002 में।
10. डॉ. बलदेव वंशी, ज्ञान के अस्त्र के कबीर–परम्परा ने लड़ी दलितों की लड़ाई, ''पूरा कबीर में उद्घृत' पृ. 258. प्रथम संस्करण 2002 में।
11. डॉ. बलदेव वंशी, ज्ञान के अस्त्र के कबीर–परम्परा ने लड़ी दलितों की लड़ाई, ''पूरा कबीर में उद्घृत' पृ. 259. प्रथम संस्करण 2002 में।
12. डॉ. बलदेव वंशी, ज्ञान के अस्त्र के कबीर–परम्परा ने लड़ी दलितों की लड़ाई, ''पूरा कबीर में उद्घृत' पृ. 262. प्रथम संस्करण 2002 में।
13. डॉ. बलदेव वंशी, ज्ञान के अस्त्र के कबीर–परम्परा ने लड़ी दलितों की लड़ाई, ''पूरा कबीर में उद्घृत' पृ. 264. प्रथम संस्करण 2002 में।
14. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, दलित साहित्य का आंदोलन, दलित साहित्य दशा और दिशा में उद्घृत, पृ. 21।

कबीर दर्शन का समाज पर प्रभाव

श्रीमती मंजू कनौजिया, शोध छात्रा
कल्याण पी.जी. महाविद्यालय, सेक्टर –7, भिलाई (छ.ग.)

सारांश :–

आदिकाल से शिक्षा का विविध प्रकार से विकास एवं प्रसार होता रहा है। यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है कि हमारी इस पावन भारत भूमि पर मानव कल्याणार्थ एवं उसको सुसंस्कृत बनाने के लिए अनेक मुनीषियों ने दार्शनिक, शिक्षा शास्त्री, शांति रक्षक, धर्म प्रवर्तक, गणितज्ञ, विज्ञानी, साहित्यकार और न जाने कितने रूपों में अपनी सेवाऐं प्रदान की है। संत कबीर का जन्म संवत् 1427 में आजमगढ़ जिले के बेलहारा नामक गांव मे हुआ था। कबीर की मृत्यु संवत् 1575 मगहर में हुई थी। कबीर के सिद्धांत का मुख्य जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है जो सभी धर्म मानते और कहते है – स्वयं को पहचानों। संत कबीर कहते है कि जीवन दर्शन वह व्यापक प्रत्यय है जहॉ पर दार्शनिक अपने अनुभवों को प्रव्यक्षीकरणों परान्त उनका बौद्धीकरण कर देता है। जीवन दर्शन सैद्धांतिक तथा परिकल्पनात्मक है, जो प्रत्येक व्यक्ति का जीवन दर्षन उसके अनुभव जगत का हर साहित्यकार अपनी रचनाओं में संस्कृति को अभिव्यक्त करता है।

हमारे भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था, जाति–पाति शिक्षा संस्थाऐं समाजिक मूल्य, राजनैतिक परिवर्तन, नारी की स्थिति आदि सभी क्रिया कलापों का वर्णन हमें तत्कालीन साहित्य में मिल जाता है। संसार के महानतम् धर्मग्रंथों, रामायण, महाभारत, रामचरित मानस, गीता आदि मे तत्कालीन समाज तथा संस्कृति का ही वर्णन है। साहित्य द्वारा हम व्यक्ति में आनन्द आकर्षण और अनुराग उत्पन्न करना चाहते है। जो उसकी भावनाओं को उदांत बना सके और वह आत्मानुमुक्ति कर सकें। संस्कृति साहित्य में सुरक्षित रहती है और इस दृष्टि से यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं है कि पाठ्यक्रम का स्त्रोत साहित्य का अक्ष्य भण्डार भी है। तात्कालीन अस्त–व्यस्त राजनीतिक तथा धार्मिक अवस्था ही समाज की शोचनीय स्थिति के मूल में कार्य कर रही थी। देखा जाऐ तो साधारण जनता अशिक्षित थी। मध्यकालीन यूरोप की भॉति भारत के लोग भी मंत्र–तंत्र के चमत्कारों मे विश्वास रखते थे। आडम्बरों की विडम्बरा पराकाष्ठा पर आ चुकी थी । इस उसय जनता में अन्ध ाविश्वासों पर अत्यधिक श्रद्धा थी । उस समय समाज में नारी का मान भी कम होता जा रहा है।

फिरोज ने अपनी आत्मकथा में लिखा है– स्त्रियों का संतों की कब्र पर जाना बन्द करवा दिया गया, क्योंकि वहॉ उन्हें पथ भ्रष्ट करने के लिए अनेक चरित्रहीन पुरूष भी जाया करते थे।

जीवन की अवधारणा :–

संसार का मानव ने अपनी बुद्धि का पूर्ण रूप सं प्रयोग कर नये–नये आयाम स्थापित नही किये होते तो वे पशुओं की श्रेणी से उभरकर 'सभय' न होता । मानव ने सभ्यता के विकास में चिन्तन मनन तथा दूरदर्शिता के नित नये उद्धेश्य निर्धारित किये और उनको प्राप्त करने के लिए योजना के अनुसार कार्य किया। प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव अलग होने गये और उसकी विचारधारा भी अलग होती गई। मानव के द्वारा अर्जित अनुभव एवं बौद्धिक विश्लेषण उसे नवीन धारणाओं, सिद्धांतों और मूल्यों के विकास में सहायता करने लगे। जीवन के अनुभवों बौद्धिक विश्लेषणों एवं चिन्तनों को फलस्वरूप विचारधारा का जन्म होता है वह व्यक्ति का जीवन दर्शन कहलाता है। हम जानते है– दर्शन और जीवन का अतीत घनिष्ठ संबंध है जीवन का आधार है, जीवन दर्शन का प्रधान वर्ण्य विषय है। दोनों की सत्ता एवं दुसरे पर आश्रित है पहले के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं, दूसरे के बिना पहले का अस्त्तिव नहीं । ''जीवन के पहलू दर्शन का प्रभाव है'' जब तक जीवन की सत्ता है, उसका अस्तित्व और उपयोगिता है। सतत् क्रियाशील इस प्राणदायिनी प्रणाली के अभाव में न तो दर्शन का ही अस्तितव रहता है और न जीवन का । दोनों ही निश्चेष्ट और निर्जीव हो जाते हैं।

कबीर का जीवन दर्शन :–

मानव की सार्थकता और महत्ता का प्रमुख आधार उसका जीवन दर्शन है। कवि की सृजनशीलता–कविता कला है, व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है और व्यक्ति का मूल अंश उसका जीवन दर्शन ही है। मूलतः कवि रसन और रमणीयता वादी दृष्टि का व्यक्ति होता है। अतः उसे दर्शन के तत्व, तर्क और बुद्धि से नहीं अपितु अनुभूति से प्राप्त होते है। कवि के दर्शन को समझना ही उसकी सृजनात्मकता के आधार का साक्षात्मकार है। उनका व्यक्तित्व, साधक, दार्शनिक भक्त और ज्ञानी के बहुआयामी कारकों से ओत–प्रोत था। संत कबीर का जीवन दर्शन मूलतः सृजन और रसन की दृष्टि से भी निश्चित रूप से आध्यात्मिक प्रेम दर्शन है। उनकी सृजनात्मक प्रतिभा तथा रसात्मकता के दर्शन होते है।

संत कबीर ने स्पष्टः कहा है कि सभी धर्मो का मूल अपने अन्तःकरण एवं अपनी आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप

तक लाना है। मानव को हरहाल में खुश रहना चाहिए। संत कबीर का कहना है कि दर्शन और बौद्ध मतों में से किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि ईश्वर अंश आत्मा को कैसे ईश्वर में विलीन किया जाऐ। जप–तप, नियम कर्म–काण्ड आदि सभी दिखावा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि कैसे हम पाखण्डों से निकल अच्छाइयों के मार्ग पर जाए। संत कबीर साम्प्रदायिक मान्यताओं का विरोध करते है। वे पंडित, मौलवी और अन्य धर्मार्थी के कुकृत्यों पर प्रहार करते है। कबीर का मानना है कि गलत किसी के द्वारा भी किया जाऐ गलत है, चाहे फिर वह पंडित हो या मौलवी। कबीर ग्रन्थीय ज्ञान को तब तक बेकार समझते है जब तक वह आत्मानुभूति के स्तर परन हो। कबीर कथित ज्ञानी मनुष्य को उसे ग्रंथ के समान मानते है। जो चन्दन का भार वहन करता है। परन्तु उसकी सुगन्धि से अनुभव नहीं होता।

संयम अनुशासन और साधना के पर्याय कभी के देखो और चिंताओं के मूल्य में असत्य और अज्ञान की प्रमुख भूमिका अनुभव की अपने युग को धर्म दर्शन वर्णाश्रम ऊंच–नीच वेद शास्त्र टॉप धन और यमन की अंधेरी भटकाव भरी गलियों में भटकते हुए देखकर कभी ने समाज उत्थान और लोक कल्याण की भावनाओं को केंद्र में रखकर अपनी वाणी से जनसामान्य को पथ प्रदर्षक की भांति प्रदान किया कबीर द्वारा प्रस्तुत समाजिक आदर्शों को पाकर मध्ययुगीन भारतीय समाज ने नवजीवन प्राप्त किया था इतिहास यह समाज आदर की स्थापना और अज्ञान में डूबे जन समाज को शिक्षित बनाने के कबीर के संकल्प में ज्ञान और ज्ञानी के प्रति अतिरिक्त सम्मान प्रभावित होता है जाति वर्ग से संबंधित पुस्तकीय ज्ञान से परे, अनपढ़ माने जाने वाले कबीर व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिए ज्ञान को अपरिहार्य मानकर चलें। व्यक्ति की मुक्ति अथवा समाज का रूढ़ियो बुराइयों समस्याओं एवं चुनौतियों आदि सभी के लिए ज्ञान प्राप्त करने को पहली शर्त माना है। संत कबीर ने अपनी वाणी के माध्यम से भाषा में समाज को अनेक महत्वपूर्ण पहलुओं पर अपने अनुभवों को सार्वजनिक किया तथा समाजसेवी अपेक्षा की उनके अनुभवों को सात्मसात् कर मानव कल्याण से सराबोर रहे। कबीर को तत्कालीन समय की पाखंड परिस्थितियों ने चौतन्य किया कि वे अपने विचार स्वातंत्रय से काम लेकर सब धर्मों के उपयोगी तत्वों का संग्रह कर सरल और सहज धर्म पालन करें और कबीर में ऐसा किया सभी ने स्पष्ट कहा कि सरलतम समाज को निर्देशित करने का कार्य मुझे धार्मिक ठेकेदारों सारण करना पड़ा शर्म का अनुभव कबीर ने अनुभव किया कि निर्लज्ज कामुकता व्यक्ति को बना देती है साथ ही वह शर्म का अनुभव करने के बजाय वासनात्मक आह्वाद साद से परिपूर्ण हो जाता है अतः व्यक्ति को कामुकता से कैसे बचना चाहिए। कबीर पर नारी से अनुराग को बताते हैं और चेतावनी देते हैं कि अगर कामुकता से इस मार्ग पर गया तो उसका नाश मनुश्य अवश्यंभावी है कबीर का यह उपदेवश आज आज के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक हैं कबीर का सांसारिक जगत मिथ्या का सिद्धांत पूर्णता है प्रासंगिक है क्योंकि आज विश्वशांति का कारण मौलिक सुख साधनों की उपलब्धि में होड़ कहो ना यह स्वार्थ है अज्ञान वश व्यक्ति अथवा समूह अथवा स्पष्ट दूसरों के सुख साधनों का अतिक्रमण करता है और यह देती है अमेरिका वियतनाम प्राचीन भारत पर राष्ट्र अमेरिका और पश्चिमी एशिया के रास्तों पर इसीलिए आक्रमण कर सकें यही कारण है कि विश्व भर में में राजनैतिक तनाव और बंदियां होती है इस भौतिकवादी धारणाओं को अध्यात्म में द्वारा संतुलित किया जा सकता है और विश्व में स्थापित करके उसको विनास के पद से हटाया जा सकता है।

समाज पर प्रभाव :–

आधुनिक भारतीय समाज में अनेक बुराइयां हैं। डॉ. सैयदैन के जी ने भारतीय समाज के बारे में कहा है कि उसे भारत एवं मध्य पूर्व तथा जनसंख्या इसके सामने समस्याओं के बड़े बड़े पहाड़ हैं। इसके सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे विविध ा प्रकार के हैं इसके इतिहास के लंबी श्रृंखला है जिसमें भूतकाल की उपलब्धियों और बाकी बची वर्तमान और भविष्य एवं दूसरे से भी है कि समस्याओं में परमाणु युग तक की सभ्यताओं के विभिन्न स्तरों और चुनौती भरे अस्तित्व के रूप में ही दिखाई देते हैं ऐसे देश बहुत कम ही होंगे जहां विज्ञान और अंधविश्वास और उपलब्धि और आलस्यजनक पिछड़ेपन आध यात्मिक संवेदनशीलता और सामाजिक बुराइयों को इस प्रकार दब्बूपन से मान और सह लिया गया हैं। आधुनिक भारतीय समाज में भारतीय दार्शनिक मूल्यों का स्थान भौतिक मूल्यों ने लिया है।

सारांश :–

आधुनिक भारतीय समाज में जितने भी बुराइयां हैं वह सब की वादियां का दुष्परिणाम है भारतीय समाज में विदेशी संस्कृति के प्रभाव के कारण सामाजिक बुराइयां उत्पन्न हुई है आज समाज में जातिवाद यथार्थवाद भ्रष्टाचार आतंकवाद का मंजन शक्तिमान का दुरुपयोग आदि जन समस्याओं का ढेर लगा हुआ है इन सभी समस्याओं का समाधान भारतीय संस्कृ ति के आधार पर समाज रचना करने से संभव हो सकते हैं कबीर ने समाज की बुराइयों को कुर्तियों और समस्याओं का निवारण करने के लिए भारतीय समाज की मूर्तियां के आधार पर समाज की रचना करने का सुझाव दिया। साहित्य और समाज का अविचिछन्न संबंध है। साहित्य शरीर है, तो समाज उसकी आत्मा है।

साहित्य शरीर हैं तो समाज उसकी आत्मा साहित्यकार मस्तिष्क बुद्धि और ह्रदय से संपन्न एक सामाजिक प्राणी है।

वह समाज से अलग नहीं हो सकता है क्योंकि उसकी अनुभूति का संपूर्ण विषय समाज उसकी समस्याएं मानव जीवन और उसके मूल्य हैं जिनके जिनमें वह सांस लेता है जब कभी उसे छुटन की अनुभूति होती है तो उसकी उसकी अभिव्यक्ति साहित्य के रूप में प्रकट हो जाती हैं समाज के प्रति उसकी प्रतिबद्धता उसके साहित्य के सृजन की प्रेरणा प्रदान करती हैं संस्कृति का संबंध संस्कारों से है जिसका अर्थ है संशोधन करना है जिसमें संस्कार आध्यात्मिक और धार्मिक मान्यताएं सम्मिलित है संत कबीर ऐसे ही विचार को में से एक थे वह ज्ञान मार्ग के एक आद्वितीय पथिक लोक साहित्य को एक अनुपम कवि, भारतीय संस्कृति के एक समन्यवादी अन्तदृष्टा समाज के एक सच्चे सुधारक और शिक्षा की एक व्यावहारिक पुनः र्निमाता थे। अनपढ़ होने पर भी उनका ज्ञान उच्च कोटि का था। निसंदेह कबीर संतों से भारतीय साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं संत कबीर पूर्ण संतो भक्तों में से हैं जिन्होंने मध्यकालीन भारतीय जीवन को अत्यंत गहराई से प्रभावित किया इस महान आत्मा में भक्ति और ज्ञान पर आश्रित भारत के मूल जीवन दर्शन का पुनरुत्थान करके उस काल के जीवन को तो नवीन चेतना दी है कबीर ने सामाजिक अनुभवों को नैतिकता इन सिद्धांतों के साथ निर्मित की बात कही जीवन में स्वाभिमान एवं चरित्र श्रेष्ठता के प्रबल समर्थन देकर तत्कालीन समाज में वर्तमान सामाजिक परिवेश को बड़ी दिशा बोध कबीर ने दिया।

संदर्भ सूची :–

1 राधा कृष्ण एस इंडियन फिलासफी भाग 2 पृष्ठ 770 जॉर्ज एलेज एंड टीवी लंदन, 1972।

2. शर्मा शंभूलाल तुलसी का दर्शन किससे आशुतोष पुस्तकालय फलोदी राजस्थान 1962।

3. जान देवी डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन पेज नंबर 378, 1962।

4. वाल्टेयर संदर्भित शंभूलाल।

5. परिप्रेक्ष्य, डॉ. विवके कौशिक, इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाऊस, मेरठ पृ. 37–156।

6. श्री अवध बिहारी वाजपेई पूर्व मध्यकालीन भारत पृ.374।

7. कबीर का शिक्षा दर्शन एक विश्लेषणात्मक।

प्रेरक कथा

सिकंदर पुरे विश्व को जीतने की महत्वकांक्षा अपने मन सजोये था, अपनी इस विश्व विजय यात्रा पर निकलने से पहले वह डायोजिनीस नामक फकीर से मिलने गया, जो हमेशा नग्न और परमानंद की अवस्था में रहते थे। सिकंदर को देखते ही डायोजिनीस ने पूछा – तुम कहॉ जा रहे हो? सिकंदर ने कहा – मुझे पुरा एशिया महाद्वीप जीतना हैं। डायोजिनीस ने पूछा – उसके बाद क्या करोगे? सिकंदर ने उत्तर दिया – उसके बाद भारत जीतना है। डायोजिनीस ने पूछा – उसके बाद? जवाब मिला – शेष दुनिया को जीतूँगा। डायोजिनीस ने फिर पूछा – और उसके बाद? सिकंदर ने खिसियाते हुए उत्तर दिया – उसके बाद मैं आराम करुँगा। डायोजिनीस हॅसने लगे और बोले – जो आराम तुम इतने दिनों बाद करोगे, वह तो मैं अभी भी कर रहा हूँ। यदि तुम आखिरकार आराम ही करना चाहते हो, तो इतना कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता हैं? मैं इस समय नदी के तट पर आराम कर रहा हूँ। तुम भी यहॉ पर आराम कर सकते हो।

सिकंदर एक पल के लिए डायोजिनीस की बात को सुनकर शर्मिंदा हुआ। उसने सोचा की उसके पास सब कुछ हैं, पर शांति नहीं और डायोजिनीस के पास कुछ नहीं है पर उसका मन शांति व आनंद से भरा हुआ हैं।

संकलित

भारतीय दर्शन एवं महिला समानता

डॉ. (श्रीमती) मोहना सुशांत पंडित, विभागाध्यक्ष (शिक्षा विभाग)
भिलाई महिला महाविद्यालय, भिलाई (छत्तीसगढ़)

सारांश :–

किसी भी समाज की सभ्यता को समझने के लिए आवश्यक है की स्त्रियो की दशा तथा सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना चाहिए। भारतीय दर्शन का अध्ययन किया जाए तो यह ज्ञात होता है की भारत में महिला शिक्षा का इतिहास प्राचीन वैदिक काल से जुड़ा हुआ है। उल्लेखनीय है कि लगभग 3000 से अधिक वर्ष पूर्व वैदिक काल के दौरान महिलाओं को समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था और उन्हें पुरुषों के समान समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग समझा जाता था। वैदिक अवधारणा के स्त्री शक्ति सिद्धांत के अनुसार, महिलाओं की देवी के रूप में पूजा शुरू हुई – उदाहरण के लिये शिक्षा की देवी सरस्वती। विषमताएँ तो सर्वत्र विद्यमान है कहीं प्रकृति जनित तो कहीं मानवजनित आवश्यकता तो है बस मानवजनित विषमताओं के उन्मूलन की एवं साथ ही देश–काल निरपेक्ष सिद्धांतों की खोज कर उन्हें आरोपित करने से बचने की। वैदिक कालीन समाज, शिक्षा एवं स्त्रियाँ एक आदर्श स्थिति का चित्र प्रस्तुत करते है।

प्रस्तावना :–

किसी भी समाज की सभ्यता को समझने के लिए आवश्यक है की स्त्रियो की दशा तथा सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना चाहिए। भारतीय दर्शन का अध्ययन किया जाए तो यह ज्ञात होता है की भारत में महिला शिक्षा का इतिहास प्राचीन वैदिक काल से जुड़ा हुआ है। उल्लेखनीय है कि लगभग 3000 से अधिक वर्ष पूर्व वैदिक काल के दौरान महिलाओं को समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था और उन्हें पुरुषों के समान समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग समझा जाता था। वैदिक अवधारणा के स्त्री शक्ति सिद्धांत के अनुसार, महिलाओं की देवी के रूप में पूजा शुरू हुई– उदाहरण के लिये शिक्षा की देवी सरस्वती।

जब हम वैदिक काल पर नजर डालते है तो हजारों साल पहले का समाज भी ज्यादा उन्नतीशील दिखाई देता है। जो जीवन को व्यर्थ नहीं मानता है बल्कि प्रवृत्ति मार्गी है जो जीवन के प्रति आशावादी एवं कर्मठ है। निश्चय ही ऐसे समाज में रहने वाली हर जाति, वर्ण, वर्ग एवं नारी को भी हर क्षेत्र में पर्याप्त स्वतंत्रता मिली थी। वैदिक समाज में हमें पर्याप्त सामाजिक गतिशीलता देखने को मिलती है। यहीं वजह है कि वैदिकयुगीन नारियाँ आज भी नारियों के लिए आदर्श बनी हुई है।

भारतीय दर्शन एवं महिला समानता :–

वैदिक कालीन समाज में जब नारी की प्रस्थिति पर गौर करते है तो ज्ञात होता है कि परम्परागत रूप से भारत के इतिहास में विश्व के अन्य भू–भागों की तुलना में महिलाओं की प्रस्थिति उच्च थी। भारतीय धर्म का छोड़कर विश्व का कोई भी धर्म स्त्री को इतनी अधिक प्रधानता नहीं देता। इसका सुन्दर उदाहरण है हिंदू विवाह पद्धति। भारतीय हिंदू संस्कृति में विवाह को एक धार्मिक कृत्य माना है। विवाह में कन्या पक्ष की ओर से कन्यादान किया जाता है जो दर्शाता है कि लड़का पक्ष याचक है और लड़की पक्ष दाता है और दाता पक्ष हमेशा याचक से बड़ा होता है। इसी प्रकार का एक अन्य उम्दा विचार धर्मशास्त्रों में देखने को मिलता है कि परमात्मा ने इस संसार के दो भाग करके एक पुरूष और दूसरा स्त्री बनाया अर्थात् स्त्री और पुरूष को समान स्थान प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त अर्द्धनारीश्वर की जो कल्पना की गई है, वह बताती है कि स्त्री–पुरूष के मिलन से ही मानव जीवन का विकास हुआ है। यह इस बात की ओर भी संकेत करता है कि नर–नारी पूर्ण रूप से समान हैं उवं उनमें एक के गुण दूसरे के दोश नहीं हो सकते।

उपरोक्त कथनों से सिद्ध होता है कि वैदिक कालन समाज एक प्रगतीशील, आशावादी समाज था जहा नर–नारी को समान स्थान प्राप्त था। वैदिक कालीन प्रगतीशीलता के लिए बहुत हद तक वहाँ की उन्नतिशील शिक्षा व्यवस्था उत्तरदायी थी। प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य– शिष्य का सर्वांगीण विकास, उसकी ज्ञान ज्योति को प्रबुद्ध करना, उसे प्रखर से प्रखर बनाना और उसके जीवन को सर्वथा सौभाग्यशाली बनाना था। विद्या के साथ ही व्युत्पत्ति (सुमति, विवेक) का भी समन्वय हो, अतः कहा गया है कि सरस्वती के साथ धी (विवेक) हो। यहीं विवेक, तर्क ही आधुनिक सभ्यता का आधार बिन्दु है जो हमें वैदिक सभ्यता में परिलक्षित होता है। वेदों में कहा भी गया है– सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् शिक्षा व्यक्ति को उदार बनाती है। संभवतः यहीं कारण था कि वैदिक काल में बाल विवाह, पर्दा प्रथा एवं सती प्रथा जैसी बुराईया प्रचलित नहीं थी। वे उत्सवों तथा यज्ञों में भाग लेती थी। उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी। शिक्षा के महत्व को देखते हुए ही वेदों में स्त्री शिक्षा की पर्याप्त

व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। वेदों में शिक्षा को आश्रम–व्यवस्था एवं सोलह संस्कारों के साथ जोड़ा गया है। औपचारिक शिक्षा उपनयन संस्कार के साथ प्रारंभ होती है और इसी के साथ ब्रह्मचर्य आश्रम भी प्रारंभ होता था। शिक्षा उपनयन संस्कार के साथ आरंभ होकर समावर्तन संस्कार के साथ समाप्त होती थी। उपनयन संस्कार (जनेऊ धारण) शिक्षारम्भ का प्रतीक था। इस संस्कार के बाद शिष्य और शिष्याएँ वेद और शास्त्रों का अध्ययन करते थे। बालकों के समान ही बालिकाओं का भी यज्ञोपवित होता था। वे भी मेखला धारण करती थी। बालिकाओं को ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी।

जिस प्रकार विवाह से पूर्व बालकों को ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था, उसी प्रकार बालिकाएँ भी ब्रह्मचारिणी रहती थी। वे भी मेखला धारण करती थी– उपर्युक्त उल्लेख हमें अर्थववेद में भी मिलता है, ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् (11.5.17)। बालक स्नातक होने पर विवाह करते थे, कुछ आजीवन ब्रह्मचारी रहते थे। इसी प्रकार बालिकाएँ भी स्नातक होकर कुछ विवाह कर लेती थी, उन्हें 'सद्योद्वाहा' कहते थे और कुछ आजंम ब्रह्मचारिणी रहती थीं, उन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहा गया है। ये तपोमय जीवन बिताते हुए शास्त्रचर्चा में मग्न रहती थीं। ऐसी ब्रह्मवादिनी नारियों में गार्गी, मैत्रेयी उल्लेखनीय है। वैदिक शिक्षा पद्धति एवं स्वतंत्र तथा समतामूलक समाज का ही प्रभाव था कि वैदिक काल में कई विदुशी ऋचाओं की रचना की थी। वैदिक सूक्तों की रचना करने वाली महिलाओं की संख्या 20 से ज्यादा है, जो यह बताने के लिए पर्याप्त है कि वैदिक कालीन स्त्रीयों के स्थिति अच्छी थी। ब्रह्मवादिन ममता दीर्घतमा ऋषि की माता थी। ये महान् विदुषी और ब्रह्मज्ञानसम्पन्न थी। अग्नि के उद्देश्य से किया हुआ इनका स्तुती पाठ ऋग्वेदसंहिता के प्रथम मण्डल के दशम सूक्त की ऋचा में मिलता है। अत्रि महर्शि के वंश में उत्पन्न विश्ववारा ने ऋग्वेद के पाँचवे मण्डल के अठाइसवें सूक्त में वर्णित छः ऋचाओं की रचना की थी। ब्रह्मवादिनी अपाला ने ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के 91वें सूक्त की एक से सात तक की ऋचाएँ इन्हीं की संकलित है। इसी प्रकार ब्रह्मवादिनी घोषा, एक प्रसीद्ध विदुषी थी। उन्होंने स्वंय ब्रह्मचारिणी के रूप में ब्रह्मचारिणी कन्या के समस्त कर्त्तव्यों का उल्लेख दो सूक्तों में किया है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 39 से 41वें सूक्त तक इस आख्यान का संकेत प्राप्त होता है। ब्रह्मवादिनी सूर्या ने ऋग्वेद के विवाह संबंधी सूक्त की रचना की है। जो ऋग्वेद के दशवें मण्डल के 85वें सूक्त की 47 ऋचाएँ इनकी है। वैदिक विदुषियों के इसी क्रम में ब्रह्मवादिनी वाक्र जो अम्भृण ऋषि की कन्या थी। ये प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानिनी थी और इन्होंने भगवती देवी के साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थी। ऋग्वेदसंहिता के दशम मण्डल के 125वें सूक्त में 'देवी सूक्त' के नाम से जो आठ मन्त्र हैं, वे इन्ही के रचे हुए हैं। चण्डीपाठ के साथ इन आठ मन्त्रों के पाठ का बड़ा महात्म्य माना जाता है। शिक्षा या ज्ञान व्यक्ति में आत्मविश्वास पैदा करता है तथा अपने अधिकारों व कर्त्तव्यों के प्रति सजग बनाता है। इन सभी की अभिव्यक्ति तर्क एवं संवाद में होती है। स्त्री एवं पुरूष के मध्य तर्क एवं संवाद प्रगतिशील समाज का सूचक माना जाता है जो आज भी कई देशों अपितु विकसीत देशों में भी यथेष्ट नहीं दिखाई देता है।

वैदिक कालीन स्त्री की विदुषिता होने का उदाहरण हमें उनके विद्धता भरे शास्त्रार्थ में दिखाई देता है। इसी प्रकार का उदाहरण बुहदारण्यक उपनिषद् में मिलता है। विदेह के राजा जनक के दरबार में याज्ञवल्क्य ऋषि से जहाँ अन्य ऋषिगण शास्त्रार्थ में पराजित हो रहे थे, वहीं सबसे तीक्ष्ण प्रश्न वाचक्रवी गार्गी (ऋषि वचक्रु की पुत्री होने के कारण) के तरफ से हुए यद्यपि में गार्गी ने भी याज्ञवल्क्य का लोहा माना। याज्ञवल्क्य को भी कहना पड़ा कि "यह तो अतिप्रश्न है। गार्गी! यह उत्तर की सीमा है, अब इसके आगे प्रश्न नहीं हो सकता। अब तू प्रश्न न कर, नही तो तेरा मस्तक गिर जायेगा।" प्रस्तुत कथानक गार्गी की विद्धता एवं समाज में स्त्री की स्थिति को दर्शाता है। इस प्रकार का शास्त्रार्थ या दार्शनिक वार्तालाप केवल अविवाहित स्त्रियाँ ही नहीं करती थी बल्कि विवाहित स्त्रियाँ भी करती थी। ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी जो स्वंय विदुषी थी। मैत्रेयी का मानव जीवन की दशा एवं भौतिक जीवन की सीमा पर बेहद सुन्दर एवं गुढ़ प्रकुति को प्रश्नों को लेकर जो दार्शनिक संवाद है वह न केवल प्राचीन भारत अपितु आधुनिक विश्व के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है। नोबेल विजेता एवं प्रसिद्ध अर्थषास्त्री अर्मत्य सेन का भी मानना है कि याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद ने उन्हें विकास को देखने का एक भिन्न नजरिया दिया।

उपसंहार :–

भले ही वैदिक कालीन समाज मातृसत्तात्मक न रहा हो किंतु फिर भी समकालीन विश्व की अपेक्षा वैदिक महिलाओं की स्थिति अच्छी थी। जब हम समकालीन यूरोप पर दृष्टी डालते है तों देखते है जब भारतवर्ष में स्त्री व पुरूष दोनों का गुरूकुल में शिक्षा का अधिकार प्राप्त था किंतु वहीं इसके विपरीत ग्रीक एवं रोमन सभ्यता में जहां अच्छे सार्वजनिक विद्यालय एवं जिम्नेशियम तो थे किंतु उनके द्वार महिलाओं के लिए खुले हुए नहीं थे। जिस समय भारतीय विदुषियाँ शास्त्रार्थ एवं तर्क कर रहीं थी तब सुकरात जैसे दार्शनिक का मानना था कि महिलाओं में पुरूषों से बौद्धिक प्रतिस्पर्द्धा करनें की क्षमता नहीं है।

विषमताएँ तो सर्वत्र विद्यमान है कहीं प्रकृति जनित तो कहीं मानवजनित आवश्यकता तो है बस मानवजनित विषमताओं के उन्मूलन की एवं साथ ही देश–काल निरपेक्ष सिद्धांतों की खोज कर उन्हें आरोपित करने से बचने की। वैदिक कालीन समाज, शिक्षा एवं स्त्रियाँ एक आदर्श स्थिति का चित्र प्रस्तुत करते है। जिससे वर्तमान समाज को प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। ये महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका को भी इंगित करता है।

संदर्भ सूची :–

1. दिनकर, रामधारी सिंह. संस्कृति के चार अध्याय।
2. विमल, कुमार. रामधारी सिंह दिनकर रचना–संचयन।
3. द्विवेदी, कपिलदेव. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति।
4. गोयल, प्रीतिप्रभा. भारतीय संस्कृति।
5. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पृ. 257–58।
6. कुमार, कमलेश. भारत की जनजाति महिलाएँ. कुरूक्षेत्र. अंक. मार्च. 2007, पृ. 23।
7. https://gyanpradayani.blogspot.com/2017/02/blog-post_23.html

प्रेरक कथा

जब अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन थे। एक दिन उनके पास एक युवक आया। वह अपनी बेकारी से से इतना तंग आ चुका था कि अब उसके पास भीख मांगने के विकल्प के अलावा और कुछ नहीं था। वह भीख मॉगने के बारे में सोचने भी लगा था। उसने लिंकन से कहा – मैं बहुत गरीब हूँ। ईश्वर ने मुझे कुछ भी नहीं दिया, कृपया दान करें। लिंकन ने उस युवक को उपर से नीचे तक देखा। फिर कहा – ठीक है, मैं तुम्हे दो हजार डॉलर दे देता हूँ, तुम अपने दोनों पर मुझे दे दो। युवक परेशान होकर बोला – मैं पैर तो नहीं दे सकता, क्योंकि फिर मैं चलूँगा कैसे? इसके बाद लिंकन बोले – अच्छा पैर नहीं दे सकते! कोई बात नहीं, अपने दोनों हाथ मुझे दे दो। मैं तुम्हें दस हजार डॉलर दे देता हूँ। इस पर युवक बोला – सर दस हजार डॉलर तो क्या, कोई मुझे पचास हजार डॉलर भी दे, तो मैं उसे अपने हाथ नहीं दे सकता। लिंकन ने हॅसकर कहा – चलो, अपनी ऑखे ही दे दो, मै अभी तुम्हें एक लाख डॉलर नकद दिलवा देता है। इस पर युवक ने कहा – आप कैसी बात करते हैं? कभी पैर मॉगते है, कभी हाथ मॉगते है तो कभी ऑखें और इनकी कीमत आप डॉलर में ऑकते है। कोई अपने अंग आपकों भला कैसे दे सकता हैं? इस पर लिंकन ने ठहाका लगाया और बोले– देखो युवक! जब ईश्वर ने तुम्हें इतनी कीमतें चीजें दी है, तो तुम गरीब कैसे हुये, क्या तुम्हें यह कहना शोभा देता हैं कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है। जाओं, मेहनत–मजदूरी करो। मैं खुद भी मजदूरी करता था और आज यहॉ तक पहुँचा हूँ। ये हाथ भीख मॉगने के लिए नहीं है। इन्हें काम के लिए उठाओं या प्रभु के प्रार्थना के लिए। सब कुछ सही हो जाएगा।

संकलित

भारतीय संत साहित्य : ''सूरदास जी की भक्ति भावना का दार्शनिक आधार''

नाजनीन बेग, व्याख्याता (शिक्षा विभाग)
भिलाई महिला महाविद्यालय, भिलाई (छत्तीसगढ़)

सारांश :–

महाकवि सूरदास जी कृष्णभक्त कवियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। सूरदास जी की भक्ति भावना अन्य सभी कृष्ण भक्त कवियों में अत्यधिक प्रखर है। उनका भक्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण स्थिर न होकर गतिशील रहा है। दास भक्ति से आरम्भ करके वे अन्ततः रागानुगा भक्ति जक पहुँचे। सूरदास की भक्ति का दार्शनिक आधार वल्लभाचार्य का 'शुद्धाद्वैतवाद' दर्शन है। वल्लभाचार्य वैष्णव वैदान्ती दार्शनिक हैं उनका शुद्धाद्वैतवाद एक प्रकार का अद्वैत ही है जिसमें शुद्ध शब्द का प्रयोग विशेषण रूप में किया गया है। शुद्धाद्वैतवाद के साथ – साथ सूरदास की भक्ति भावना पर पुष्टिमार्ग, मधवाचार्य के द्वैतवाद, निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद, चैतन्य महाप्रभु के अचिन्त्य भेदाभेदवाद तथा गोस्वामी हितहरिवंश के राधा वल्लभ संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

प्रस्तावना :–

भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों का आशय जीवन और जगत् के महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान ढूढ़ने तथा परम सत्ता के स्वरूप, आकार आदि के सम्बन्ध में चिन्तन करने से होता है। महाकवि सूरदास की गणना कवि के रूप में की जाती है लेकिन उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से मानव मन में उत्पन्न आध्यात्मिक–प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया है। सूरदास ने अपनी कविता में जीवन और जगत् से सम्बन्धित समस्याओं पर अनेक दृष्टिकोणों से चिन्तन मनन किया है। सूरदास मूलतः एक कवि थे, दार्शनिक नहीं। उनका लक्ष्य भक्ति करना है दार्शनिक बनना नहीं। सूरदास भक्ति के अथाह सागर में डूबकर अपनी हृदयतंत्री के उन्मुक्त विचारों को व्यक्त करते हैं वही उनकी कविता बन जाती है। उनकी भक्ति की इस अविरल धारा में यदि दर्शन और चिन्तन की लहर दिखाई भी पड़ती है तो वह भक्ति से पूर्णतः सराबोर होती है। एक विद्वान आलोचक ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि ''उनके सभी विचारों का निकष है भक्ति और भक्ति के परिवेश में एक विचित्र सी मिठास के साथ उन्होंने अपने परम आराध्य की लीलाओं का गान जिस उन्मुक्तता के साथ किया है उसमें दार्शनिक तत्वों की समाहृति बड़े सहज रूप में हो गई है, ऐसा नहीं कि दार्शनिक तत्वों की विवृति के लिए उन्होंने कविता की है।''

सूरदास जी का जीवन वृत्त :–

अध्यात्मिक, भक्ति कालीन, कृष्ण भक्त महाकवि सूरदास जी का जन्म 'रूनकता' ग्राम अथवा रेणु का क्षेत्र (वर्तमान जिला आगरान्तर्गत) में सन् 1478 ई. में पं.रामादास जी के घर हुआ था। पं. रामदास जी सास्वत ब्राम्हण थे और माता जी नाम जमुनादास था। सूरदास जी जन्म से अन्धे थे या नहीं इस संबंध पर अनेक मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि बाल मनोवृत्तियों एवं मानव –स्वभाव का जैसा सूक्ष्म और सुन्दर वर्णन सूरदास जी ने किया है, वैसे कोइ जन्मान्ध व्यक्ति कर ही नहीं कर सकता, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि वे सम्भवतः बाद में अन्धे हुए होंगे ।

मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर ये निवास करते थे। वल्लभाचार्य से सूरदास जी की भेंट वही पर हुई थी। और वे उनके शिष्य बन गये। वल्लभाचार्य ने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर के कृष्णलीला के पद गाने का आदेश दिया। सूरदास जी के द्वारा लिखि गई कृतियों मे प्रकृति–सौन्दर्य का अद्भूत वर्णन है । सूरदास जी की रचनाओं में निम्नलिखित पाँच ग्रन्थ बताए जीते है–

1. सूरसागर 2. सूरसारावली 3. साहित्य–लहरी 4. नल–दमयन्ती 5. ब्याहलो

महाकवि सूरदास जी की मृत्यु गावर्धन के निकट पारसौली ग्राम में 1583 ई. में हुई। अपने दिर्घ आयु जीवन काल में कई ग्रंथ लिखे और काव्य पद की रचना की। सूरदास जी का जीवन कृष्ण भक्ति के लिये समर्पित था।

सूरदास की भक्ति भावना का दार्शनिक भ्रमर :–

सूरदास के भ्रमरगीत में भक्तितत्व और दार्शनिकता का अद्भुत संयोग हुआ है। सूरदास की भक्ति को दो भागों में बाँटा जा सकता है–पहला बल्लभाचार्य से मिलने पूर्व सूरदास की भक्ति और दूसरा बल्लभाचार्य से मिलने के उपरान्त। बल्लभाचार्य से मिलने से पूर्व सूरदास की भक्ति पद्धति तुलसी की 'विनय–पत्रिका' में मिलने वाली दास्य भक्ति के समान थी। इस समय की उनकी भक्ति वैधी भक्ति या दास्य भक्ति कही जा सकती है। वैधी इसलिए कि इसमें विधि या अनुशासन का भाव है और दास्य इसलिए कि आश्रय की लघुता इसका मूल भाव है। सूर कहते हैं –

''कौन सुने यह बात हमारी।
समरथ और न देखौं तुम बिनु, कासों विथा कहौं बनवारी।''

———

''मेरी कौन गति ब्रजनाथ।
भजन बिनु अरु शरण नाहीं, फिरत विषयनि साथ।''

वल्लभाचार्य से मिलने के पश्चात् सूरदास की भक्ति संबंधी मान्यताओं में परिवर्तन हुआ। अब उन्होंने वैधी भक्ति के स्थान पर रागानुगा भक्ति की राह चुनी। रागानुगा भक्ति वह होती है जो शुद्ध रूप से प्रेम पर आधारित होती है; जिसमें मर्यादा या अनुशासन का कोई आग्रह नहीं होता। रागानुगा भक्ति का मूल संबंध वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद से माना गया है। शुद्धाद्वैतवाद वेदान्त दर्शन का ही एक भाग है जो शंकराचार्य के अद्वैतवाद का उस बिन्दु पर खण्डन करती है जहाँ वे जीव और जगत् को मिथ्या मानते हैं। वल्लभाचार्य जगत् को ब्रह्म का परिणाम मानते हैं, विवर्त नहीं। चूँकि सूरदास की भक्ति वल्लभाचार्य के दर्शन पर आधारित है इसलिए सर्वप्रथम वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय पा लेना आवश्यक है।

वल्लभाचार्य ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के अर्न्तगत बुद्धि और हृदय के सामंजस्य पर अधिक बल दिया। वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों में वेदान्त और भक्ति का अभूतपूर्व मिश्रण मिलता है। वल्लभाचार्य भी अद्वैतवाद के समर्थक थे किन्तु उनके अद्वैतवाद को शुद्धाद्वैतवाद् कहा जाता है। शुद्धाद्वैत अर्थात् माया के संबंध से रहित शुद्ध ब्रह्म का अद्वैत। इसका दूसरा अर्थ है, माया के सम्बन्ध से रहित शुद्ध ब्रह्म और जगत् का अद्वैत, जो यह बताता है कि कार्य–कारण–रूप ब्रह्म भी शुद्ध है, अर्थात् वह मायिक नहीं है। वल्लभाचार्य का मत है कि स्रष्टि मूलतः तीन गुणों से मिलकर बनी है– सत्, चित् और आनन्द। तीनों गुण ब्रह्म के भीतर समाहित हैं। ब्रह्म इन तीनों से युक्त है, जीव में सत् और चित् गुण हैं जबकि जगत् में केवल सत् गुण हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जीव और जगत् भी ब्रह्म के अपूर्ण अंश हैं। ब्रह्म जीव और जगत् का निमित्त और उपादान दोनों ही कारण है। ब्रह्म के अतिरिक्त कोई प्रमेय नहीं है; ब्रह्म ही कारण, कार्य और स्वरूप भेद से तीन रूपों या कोटियों में परम सत्ता है। वही ज्ञान, आनन्द, काल, इच्छा, क्रिया, माया, प्रकृति रूप से पहले होता है। 3 वह सभी विरूद्ध धर्मों का आश्रय है, अतः स्वरूपतः अविकृत रहकर भी अपने को ही रचता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त ब्रह्म से जगत् और जीव का निर्माण बिना विकृति के मानने के कारण 'अविकृत परिणामवाद' तथा अशुद्धि रूपी माया को स्वीकार न करने के कारण शुद्धाद्वैत कहलाता है।

शुद्धाद्वैतवाद् के आधार पर भक्ति का जो मार्ग स्थापित किया गया वह पुष्टि मार्ग है। पुष्टि का अर्थ है भगवत् कृपा। ईश्वर और जीव में पोषक–पोष्य संबंध है। जिसके अनुसार ईश्वर के अनुग्रह से ही जीव का पोषण होता है– 'पोषणंतद्अनुग्रह जो व्यक्ति समझता है कि उसके कर्मों या बाह्य प्रयासों से किसी फल की प्राप्ति होती है वह अज्ञानी और झूठा है। सूरदास की स्पष्ट घोषणा है –

करि गोपाल की सब होई।
जो अपनो पुरूसारथ मानत, अति झूठो हैं सोई।।

इस मार्ग में माना जाता है कि कृष्ण की भक्ति साधन शून्यता के माध्यम से ही सम्भव है किसी प्रकार का ज्ञान, योग, कर्म उसके लिए आवश्यक नहीं है। इस मार्ग में तीन प्रकार के जीव माने गए हैं– प्रवाह जीव, मर्यादा जीव एवं पुष्टि जीव। प्रवाह जीव वे हैं जो सामान्य सांसारिक प्रवाह मे पड़े हुए हैं। मर्यादा जीव वे हैं जो आध्यात्मिक सुखों की उपलब्धि चाहते है, किन्तु वैदिक या शस्त्रीय विधि के माध्यम से। पुष्टि जीव वे हैं जिन्होंने सब कुछ ईश्वर के अनुग्रह पर छोड़ दिया है और साधन शून्यता को स्वीकार कर लिया है। इस बिन्दु पर सूर की भक्ति साधन भक्ति से हट कर साध्य भक्ति हो जाती है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य होने के कारण इसी पुष्टिमार्गी भक्ति के अनुगत थे।

सूर की भक्ति योग व कर्म–मार्ग के स्थान पर भक्ति मार्ग को तथा निर्गुण भक्ति के स्थान पर सगुण भक्ति को स्थापित करती है। वल्लभाचार्य ने भगवान के तीन रूपों पर विचार किया है– परब्रह्म श्रीकृष्ण, पूर्ण पुरूषोत्तम ब्रह्म तथा अर्न्तयामी ब्रह्म। सूर ने अपने काव्य में ब्रह्म के इन तीन रूपों का संकेत दिया है। वे कहते हैं कि जब–जब भक्तों पर संकट आता है तो यही ब्रह्म– जिसे वेद और उपनिषद् नेति–नेति कह कर पुकारते हैं– सगुण रूप धारण करके उनके संकट को दूर करता है। तुलसी की तरह उनकी मान्यता यही थी कि मूलतः निर्गुण ईश्वर ही भक्तों के लिए अवतार लेकर सगुण हो जाता है।

सूर के भ्रमरगीत में ज्ञान पर भक्ति और प्रेम की विजय स्थापित हुई है। भ्रमरगीत में सूर ने जगत् को मिथ्या नहीं माना है और उनका एकमात्र विरोध कठोर साधना और भावना शून्य बौद्धिक ज्ञान के साथ है। इसी कारण सूर को ब्रज के कण–कण में उसी ब्रज के दर्शन होते हैं।

उपसंहार :–

इस प्रकार सूरदास ने सिद्धान्त और व्यवहार दोनों दृष्टियों से एक ऐसे धरातल की प्रतिष्ठा की है जहाँ शुद्ध प्रेम साधना, हृदय की सच्ची पहचान और प्रिय मिलन की तीव्र लालसा सभी कुछ एक साथ भ्रमरगीत में अवस्थित हैं। प्रभु के अनुग्रह से ही जीव माया मोह आदि से मुक्त हो पाता है। सूरदास ने भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन को ही मोक्ष का साधन बताया है। एक बार सागर का सुखमय स्पर्श पा लेने के श्चात् नदी पुनः हिमालय की तरफ क्यों लौटना चाहेगी। इसी को ब्रह्म का साक्षात्कार कहते हैं और यही है सूरदास की भक्ति का दार्शनिक आधार।

सन्दर्भित सूची :–

1. hindijivanparichya.blogspot.com
2. hindi.speakingtree.in
3. hindi.boldsky.com

प्रेरक कथा

एक गुरू के दो शिष्य थे – प्रखर व पंकज। प्रखर किसान का पुत्र था और पंकज एक राजकुमार था। राजपरिवार से संबंध रखने के कारण पंकज आलसी व अहंकारी था; जबकि प्रखर परिश्रमी व विनम्र था। एक बार राजा पृथ्वी सिंह ने युवाओं की प्रतिभा की परीक्षा के उद्देष्य से एक प्रतियोगिता आयोजित की। उसमें दूर–दूर से अनेक युवक आए थे।

गुरूजी भी अपने शिष्यों के साथ प्रतियोगिता में भाग लेने पहुँचे। जब प्रखर प्रतियोगी राजकुमारों के साथ बैठने लगा तो पंकज बोला–"ये पंक्ति राजकुमारों के लिए है, तुम दुसरी पंक्ति में जाकर बैठो।" राजा पृथ्वी सिंह ने यह सुना तो वे बोले– "अभी तुम राजकुमार नहीं, प्रतिभागी हो। इस दृष्टि से तुममें व इसमें कोई भेद नहीं। यद्यपि पंकज के लिए अपने पिता के आदेश की अवहेलना करना संभव नहीं था, परन्तु उसके मुख पर असहमति के भाव आ गए। यह देखकर प्रखर अलग हटकर एक ओर बैठ गया।"

प्रतियोगिता प्रारंभ होन पर राजा ने सभी प्रतिभागियों से पूछा–"यदि तुम्हारे सामने एक घायल शेर आ जाए, जिसे तीर लगा हो, तो तुम क्या करोगे?" सभी राजकुमारों ने उत्तर दिया कि वे शेर के लिए अपने प्राण संकट में नहीं डालेंगे और उसे मर जाने देंगे, परन्तु प्रखर बोला– "महाराज! मैं शेर का तीर निकालकर उसका उपचार करूँगा; क्योंकि घायल जीव की रक्षा करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य और प्रत्येक मनुष्य का धर्म हैं शेर का भी अपना धर्म है व स्वस्थ होने के बाद यदि वह मुझ पर हमला कर दे, तो वह उसका स्वभाव है, दोष नहीं।" उत्तर सुनकर राजा पृथ्वी सिंह बोले–"धन्य है वह पिता, जिसके तुम पुत्र हो, धन्य हैं वे गुरू जिनके तुम शिष्य हो।" तब गुरू ने राजकुमारों से कहा– "वत्स! व्यक्ति की पहचान उसके वंश से नहीं, अपितु उसके कर्मों व विचारों से होती है।" राजकुमार के तिरस्कार वाले वचन के बाद भी प्रखर उसके प्रति मन में बिना किसी दुर्भाव के प्रतियोगिता में भाग लिया तथा विजयी हुआ।

संकलित

''कबीर साहित्य में सामाजिक दर्शन''

डॉ. हंसा शुक्ला, प्राचार्य
स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय, आमदी नगर हुडको, भिलाई

कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब सामाजिक असहिस्णुता, धार्मिक आडम्बर और राजनीतिक कुटिलता अपनी चरमसीमा पर थी सामान्य जनमानस के अस्तित्व को मिटाने वाले प्रहारों और अघातों के मध्य कबीर का जन्म हुआ जैसे पहाड़ी घाटी में तेज आवाज से चिल्लाने पर कुछ देर तक आवाज की प्रतिध्वनि गुंजती है, वैसे कबीर के साखियॉ और दोहे आज भी मानव के मानसपटल पर गूंज रहे हैं। कबीर धर्म, जाति से ऊपर उठकर मानवता व कर्म को महत्व देते थेः–

यह सब झूठी बंदगी, मिथ्या पंच निमाज। [1]
सांचे मारे झूठि पढ़ि, काजी करे अकाज।।

आज के दौर में जब भौतिक साधनों हेतु भ्रष्टाचार, झूठ, फरेब और अपराध मानवता को झकझोर रहे हैं, ऐसे में कबीर की उलटबासियां मानव को अंधकार से प्रकाश की ओर जाने के लिये नई दिशा दिखाती है। कबीर स्वभाव से संत लेकिन प्रकृति से उपदेशक थे उन्होंने शिक्षा प्रणाली से लेकर कर्म कांड पर दोहे लिखे, आज भारत में नक्सलवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद एवं संप्रदायवाद जैसी समस्यायों के समाधान के लिये एक समग्र भारतीय व्यक्तित्व के रूप में कबीर अवतरीत हुये।

कबीर के मतानुसार पूजा, पाठ, शास्त्रों का अध्ययन और विद्वत्ता का कोई महत्व नहीं, यदि मनुष्य के ह्रदय में दया और प्रेम नहीं। निर्दयी व्यक्ति सन्तों की वाणी का अध्ययन करते हुये भी दुर्गति से नहीं बच सकेंगे :–

कबीर दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहद। [5]
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द।।

वर्तमान संदर्भ में हम देखें तो आज वर्ण भेद, जाति आरक्षण के नाम पर लोग बंट रहे हैं। जाति संघर्ष दंगे और खून–खराबा में परिवर्तित हो रहे हैं ऐसे में कबीर का जन्मगत जाति निर्धारण के बजाय कर्मगत उच्चता की बात कितनी सटीक है :–

एक बूंद एकै मल–मूतर, एक चाम एक गूदा। [7]
एक ज्योति थैं सब उतपनां कौन बाम्हनं कौन सूदा।।

उस काल में समाज में जितने आडंबर–रूढ़ि और कुरीति थे उसका कबीर ने निर्भय होकर विरोध किया है यही कारण है कि इतने वर्षों बाद भी भारतीय समाज में कबीर के दोहे प्रासंगिक है कबीर के विचार समय की चक्की में पीसकर इतने महीन और सूक्ष्म हो गये है कि वह आज जनमानस को उदेलित कर रहे हैं।

बीज शब्द :– आडम्बर, प्रासंगिक, कर्मकाण्ड, धर्मनिरपेक्ष, शास्त्र।

शोध आलेख सार :–

कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब सामाजिक असहिस्णुता, धार्मिक आडम्बर और राजनीतिक कुटिलता अपनी चरमसीमा पर थी सामान्य जनमानस के अस्तित्व को मिटाने वाले प्रहारों और अघातों के मध्य कबीर का जन्म हुआ जैसे पहाड़ी घाटी में तेज आवाज से चिल्लाने पर कुछ देर तक आवाज की प्रतिध्वनि गुंजती है, वैसे कबीर के साखियॉ और दोहे आज भी मानव के मानसपटल पर गूंज रहे हैं। कबीर धर्म, जाति से ऊपर उठकर मानवता व कर्म को महत्व देते थे :–

यह सब झूठी बंदगी, मिथ्या पंच निमाज। [1]
सांचे मारे झूठि पढ़ि, काजी करे अकाज।।

धर्म निरपेक्ष लोकतांत्रिक भारत के लिये हमें आदर्श समाज की रूपरेखा कबीर के संदेशों में मिलती है। उन्होंने धर्म के नाम पर भेदभाव और ईश्वर के नाम पर लड़ाई का तार्किक खंडन किया। कबीर की साखियां एवं उनके दोहे जो लगभग 600 वर्ष पूर्व लिखे गये हैं वह आज भी समसामयिक है। कबीर आम आदमी की आवाज थे उन्होंने अस्पृश्यता, ऊंच–नीच आदि से जर्जर होते भारतीय समाज के विरूद्ध मुखर आवाज उठाई तथा मानव मुक्ति की बात कही। आज के दौर में जब भौतिक साधनों हेतु भ्रष्टाचार, झूठ, फरेब और अपराध मानवता को झकझोर रहे हैं, ऐसे में कबीर की उलटबासियां मानव को अंधकार से प्रकाश की ओर जाने के लिये नई दिशा दिखाती है। कबीर स्वभाव से संत लेकिन प्रकृति से उपदेशक थे उन्होंने शिक्षा प्रणाली से लेकर कर्म कांड पर दोहे लिखे, आज भारत में नक्सलवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद एवं संप्रदायवाद जैसी समस्यायों के समाधान के लिये एक समग्र व्यक्तित्व के रूप में कबीर अवतरीत हुये।

कबीर हिन्दुधर्म के बलिकर्म का पूरजोर विरोध करते है उनका मानना है कि किसी पशु की बली देने से कोई भगवान खुश नहीं होते है। वर्तमान में तांत्रिक और सिद्ध बाबा के फरेब में आकर लोग पशु बली के साथ नर बलि के लिये तैयार हो जाते हैं उन्हें लगता है कि बली चढ़ाने से उनकी मनोकामना पूरी हो जायेगी। जो धर्म जानवरों की बलि, जीव–हत्या और मांसाहार को उचित बतलाते है, उस धर्म को कबीर अधर्म कहते हैं। ऐसे पापों का भार सिर पर लाद कर न तो कभी कोई मुक्ति पा सका है, और न ही पा सकेगा, चाहे धर्म और शास्त्र ऐसे पापों की कितनी सराहना क्यों न करें? किसी भी प्रकार की बलि के विरोध में कबीर की यह पंक्तियां आज भी प्रासंगिक हैं:–

जीव बधत अउ धर्म कहत है अधरम कहां है भाई। [2]
आपन तो मुनिजन है बैठे, कासनि कहो कसाई।।

कबीर मुसलमान मज़हब में खुदा के नाम पर जानवरों को ज़िबह करके यह कहना की इससे मालिक खुश होगा का पुरजोर विरोध करते है तथा खुदा के नाम पर हिंसा का प्रचार करने वाले काजी और मुल्ला को नेक बंदा नहीं मानते उनका मानना है कि कोई भी धर्म पशु हत्या को न्यायपूर्ण नहीं कह सकता है इस संदर्भ में वह अपनी पीड़ा इस तरह प्रगट करते हैं:–

दिन को रोज़ा रहत है, रात हनत है गाय। [3]
येहि खून वह बंदगी, क्योंकर खुसी खोदय।।

कबीर हर प्रकार की हिंसा का विरोध करते हैं, विशेषतः धर्म और स्वाद के नाम पर हो रही हिंसा का। स्वाद से वशीभूत मनुष्य प्रबल अत्याचार करता है और ईश्वर के सामने न्याय की याचना करता है :–

जोरी किया जुलम है, मांगे न्याय खुदाई। [4]
खालिफ दरि खुनी खड़ा मार मुहे सुहि खाई।।

कबीर के मतानुसार पूजा, पाठ, शास्त्रों का अध्ययन और विद्वत्ता का कोई महत्व नहीं, यदि मनुष्य के ह्रदय में दया और प्रेम नहीं। निर्दयी व्यक्ति सन्तों की वाणी का अध्ययन करते हुये भी दुर्गति से नहीं बच सकेंगे :–

कबीर दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहद। [5]
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द।।

कबीर उस समय इस बात की गंभीरता समझ गये थे कि गरीबी से अधिक अपमान जनक स्थिति सामाजिक उपेक्षा होती है। जाति–पाति के आधार पर विभाजित समाज में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच पारस्परिक सबद्धों में क्रुरता अधिक बढ़ गई थी। वर्ण व्यवस्था की विकृतियां अमानवीय अवस्था में पहुंच चुकी थी। हिन्दु–मुसलमान, उच्चवर्ग–निम्नवर्ग आदि के पारस्परिक सबंधों में मानवता कराह रही थी। कबीर का संवेदन शील मन इस क्रुर स्थिति से अत्यधिक बेचैन था। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार जातिवाद भारतीय समाज का कोढ़ है। आज विकास के दौर में भी जाति को लेकर लोग स्वर्ण, दलित, अस्पृष्यता ऊंच–नीच के बंधन में जकड़े हुये हैं। कबीर जन्म के आधार पर जाति निर्धारण को गलत मानते थे इसलिये उन्होंने जन्म से जाति के संबंध के विरूद्ध मुखर आवाज उठाई :–

जो तु बामन–बामनि जाया, आन बाट तैं काहे न आया। [6]
जे तूं तुरक तुरकनीं जाया, तौ भीतरि खतनी क्यूँ न कराया।।

वर्तमान संदर्भ में हम देखें तो आज वर्ण भेद, जाति आरक्षण के नाम पर लोग बंट रहे हैं। जाति संघर्ष दंगे और खून–खराबा में परिवर्तित हो रहे हैं ऐसे में कबीर का जन्मगत जाति निर्धारण के बजाय कर्मगत उच्चता की बात कितनी सटीक है :–

एक बूंद एकै मल–मूतर, एक चाम एक गूदा। [7]
एक ज्योति थैं सब उतपनां कौन बाम्हनं कौन सूदा।।

जब प्रभु की कोई जाति नहीं है तो उसके भक्तों और प्रेमियों की क्या जाति हो सकती है। कबीर उपदेश देते है कि मनुष्यों को जात–पात के कीचड़ में नहीं डूबना चाहिये :–

जात नहीं जगदीश की, हरि–जन कि कहा होय। [8]
जात पांत के कीच में, डूब मरो मत कोय।।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक राष्ट्र है। आदर्श राष्ट्र की स्थापना की रूपरेखा कबीर के संदेशों में निहित है। उस युग में उन्होंने धर्म के नाम पर भेदभाव तथा ईष्वर के नाम पर लड़ाई का तार्किक खण्डन किया, कबीर के भगवान निराकर और निर्गुण थे जिससे मानव धर्म की प्रतिष्ठा की :–

1. **कबीर यहु तौ एक है, पड़दा दीया भेष। [9]**
   भर्म, कर्म सब दूरि करि, सब ही मांहि अलेष।।
2. **ऊँचे कुल का जनमियां, जे करणीं ऊँच न होई। [10]**
   सुवरन' कलस सुरै भर्या, साधू निंद्या सोई।।

आज रिश्ते और परिवार भौतिकता की बलि चढ़ रहे हैं। भौतिक सुख–सुविधा के साधन सर्वोपरि हो गये हैं इन साधनों को पाने हेतु व्यक्ति स्वार्थी हो गया है वह अधिक आय उपार्जन हेतु भ्रष्टाचार, लूट–खसोट, फरेब जैसे अपराध में लिप्त होकर मानवता को कलंकित कर रहा हैं, तब कबीर के यह विचार प्रासंगिक हैं :–

साई इतना दीजिये जामे कुटुम्ब समाये। [11]
मैं भी भूखा ना रहूं, साधु ना भूखा जाये।।

यह पंक्तियां मानव मात्र को यह संदेश देती है कि मात्र भौतिक सुख–सुविधाओं से सुख की प्राप्ती नहीं होती है बल्कि परिवार के साथ सुखपूर्वक रहना और मेहमानों की यथोचित सेवा करने से मानव धर्म का पालन होता है और संतोष की प्राप्ति होती है। आज तकनीकी और वैज्ञानिक अविष्कार के कारण लोग किसी भी कार्य को जल्दी से जल्दी करना चाहते हैं यहि कारण है कि मनुश्य हर कार्य का परिणाम शीघ्र चाहता है, यह लालसा हमेशा उपयुक्त नहीं होती है। 15वी सदी में कबीर की यह पंक्तियां आज भी हमें अपना कर्म करने तथा फल समय पर ही प्राप्त होंगे इसके लिये धीरज रखने की प्रेरणा देते हैं तथा यह संदेश देती है कि समय आने पर कार्य का परिणाम पता चलता है :–

धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होये। [12]
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।

कबीर ने उस काल में हर उस व्यवस्था का विरोध किया जो मानव को अवनति के रास्ते पर ले जाती है, उन्हें जंजीरों में बांध देती है। कबीर सच्चे कर्मयोगी थे। वह और संतों की भांति पलायन न कर अपने परिवार के बीच रहे और जुलाहे का कार्य करते रहे। उनका कार्य आज भी प्रेरणा देता है कोई भी व्यवसाय या काम छोटा बड़ा नहीं होता है। उनके जीवन में कथनी और करनी में समानता थी। उन्होंने जनमानस को कर्म तथा स्वालम्बन की शिक्षा दी। वह शिक्षा का मूल वैज्ञानिक दृष्टिकोंण और तर्कबुद्धि को मानते थे :–

सब्दै बेद पुरान कहत हैं, सब्दहिं सब ठहरावैं। [13]
सब्दहि सुर नर मुनिजन गावैं, सब्द भेद नहिं पावैं।।

आज के संत और गुरू चोला धारण करते हैं और लोगों को प्रभु–भक्ति मोक्ष के अलग–अलग तरीके बताते हैं। वहीं कबीर सभी के मन को जीतने की प्रेरणा देते हैं, वास्तव में कबीर अध्यात्मिक व्यक्ति थे, वह संत थे। कबीर का संघर्ष आसक्ति और तृष्णा के विरूद्ध था इसलिये वे कुछ धार्मिक पुस्तकों को पढ़कर निर्धारित वेश–भूषा धारण किये धर्म गुरूओं पर कुटाराघात करते हैः–

1. **माला तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ। [14]**
   दाड़ी मूँछ मुड़ाई के, चलै दुनी के साथ।।
2. **मूँड़ मुड़ाए हरि मिलैं, सब कोई लेहि मुँड़ाय। [15]**
   बार बार के मूंडते, भेड़ बैकुंठ न जाय।।

वर्तमान में गुरू–शिष्य परंपरा बदल गई है पहले शिक्षा पूर्ण होने पर शिष्य द्वारा गुरू दक्षिणा दी जाती थी आज गुरू शुल्क के रूप में अपनी शिक्षा का प्रतिदान पूर्व में ही प्राप्त कर लेते हैं। कबीर सच्चे गुरू के गुणों का वर्णन करते हुये कहते हैं कि गुरू अपने शिष्य को ऐसा ज्ञान देते हैं जिसके द्वारा शिष्य त्रिलोक की सम्पत्ति (आत्मज्ञान) प्राप्त करते हैं।

गुरू कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़ि–गढ़ि काढ़ै खोट। [16]
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट।।

आम तौर पर लोग हर साधु, संन्यासी और जोगी को पहुंचा हुआ महात्मा मान कर उससे रूहानी प्राप्ति की आशा करते हैं। वर्तमान में पुरोहितों, पण्डितों, विद्वानों और अनेक प्रकार के संन्यासियों की कोई कमी नहीं है। ये लोग बाहरी भेष, गेरूए, पीले, नीले या सफेद कपड़े और हाथों में या गले में मालायें पहनते हैं। कुछ जटा रखते हैं, शरीर पर भभूति लगाते है तो कुछ मृग–छाल पहनते है कबीर के अनुसार सच्चे सन्तों और बाह्यमुखी साधुओं में उतना ही अन्तर है जितना कि आम और बबूल के पेड़ों, आम की षाखा मीठे फलों से लदी रहती है जबकि बबूल की हर डाली कांटो से भरी रहती हैः–

1. **साध सिद्ध बड़ अंतरा, जैसे आम बबूल। [17]**
   वा की डारी फल, या की डारी सूल।।

2. **साधु भूखा भाव का धन का भूखा नाही।** [18]
धन का भूखा जो फिरे सो तो साधु नहीं।।

कबीर जी के साहित्य का मुख्य उद्देश्य कर्मकांड की विसंगतियों को दूर कर समता मूलक समाज की स्थापना करना था। कबीर एक संतकवि होने के साथ ही एक समाज सुधारक थे, उन्होने अपनी रचनाओं से तत्कालीन समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया आज की विचाराधात्मक लड़ाई और सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु कबीर के साखियों के उदाहरण दिये जाते हैं। उनका साहित्य आज के सामाजिक परिवेश में सार्थक है :–

मन मक्का दिल द्वारिका, काया काशी जान। [19]
दस द्वारे का देहरा, तामें ज्योति पिछान।।
वही महादेव मुहम्मद ब्रम्हा आदम कहिये।
कोई हिंदू कोई तुर्क कहांव एक जमीं पर रहिये।।

उस काल में समाज में जितने आडंबर–रूढ़ि और कुरीति थे उसका कबीर ने निर्भय होकर विरोध किया है यही कारण है कि इतने वर्षों बाद भी भारतीय समाज में कबीर के दोहे प्रासंगिक है कबीर के विचार समय की चक्की में पीसकर इतने महीन और सूक्ष्म हो गये है कि वह आज जनमानस को उदेलित कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. पृष्ठ नं. 68 – कबीर ग्रंथावली (सटीक), राम किशोर शर्मा
2. पृष्ठ नं. 103 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
3. पृष्ठ नं. 156 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
4. पृष्ठ नं. 15 – कबीर ग्रंथावली (सटीक), राम किशोर शर्मा
5. पृष्ठ नं. 286 – संत कबीर, राधास्वामी सत्यंग ब्यास
6. पृष्ठ नं. 18 – कबीर ग्रंथावली (सटीक), राम किशोर शर्मा
7. पृष्ठ नं. 18 – कबीर ग्रंथावली (सटीक), राम किशोर शर्मा
8. पृष्ठ नं. 24 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
9. पृष्ठ नं. 277 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
10. पृष्ठ नं. 238 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
11. पृष्ठ नं. 105 – कबीर ग्रंथावली (सटीक), राम किशोर शर्मा
12. पृष्ठ नं. 105 – कबीर ग्रंथावली (सटीक), राम किशोर शर्मा
13. पृष्ठ नं. 169 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
14. पृष्ठ नं. 57 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
15. पृष्ठ नं. 57 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
16. पृष्ठ नं. 216 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
17. पृष्ठ नं. 56 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
18. पृष्ठ नं. 15 – संत कबीर, राधास्वामी सत्संग ब्यास
19. पृष्ठ नं. 104 – कबीर ग्रंथावली (सटीक), राम किशोर शर्मा

तुलसी के अयोध्याकांड में दृष्टिगत जीवन–मूल्य

डॉ. राजेश श्रीवास,
विभागाध्यक्ष, हिन्दी
सेठ फूलचंद अग्रवाल स्मृति महा.
नवापारा (राजिम) रायपुर (छ.ग.)

सहा. प्रा., हिन्दी
सेठ फूलचंद अग्रवाल स्मृति महा.
नवापारा (राजिम) रायपुर (छ.ग.)

आज से सात–आठ दशक पूर्व आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने घोषणा की थी कि यदि कोई मुझसे पूछे कि हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि कौन है तो निःसंकोच कहूँगा–भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास। इस घोषणा से असहमत होने वाले अनेक यशस्वी समालोचकों की युक्तियों और उक्तियों के बावजूद आज भी यह मान्यता ज्यों–कि–त्यों है। ऐसे कवि–शिरोमणि तुलसीदास का सर्वश्रेष्ठ रचना है 'रामचरित मानस' जिसकी रघुनाथ गाथा को तुलसी ने स्वान्तः सुखाय लिखा था, परन्तु वह नाना पुराण निगमागमसम्मत गाथा सुरसरि समान सबके हित हो गयी है। वह न केवल हिन्दी, वरन् समस्त भारतीय भाषाओं में सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है जिसमें केवल भक्ति और धर्म के ही तत्व नहीं है, बल्कि मानव–जीवन के अनेक कालजयी सत्यों का प्रतिपादन किया गया है। किसी भी महान रचना को उसमें स्थापित जीवन–मूल्यों की महत्ता के कारण ही श्रेष्ठ माना जाता है।

प्रत्येक समाज एवं वर्ग में जीवन और उसकी ईकाइयों के पारस्परिक व्यवहार के लिए कतिपय धारणाएँ दीर्घकालिक अनुभवों के आधार पर निर्धारित होती है। यहीं धारणाएँ स्थिर होकर मूल्य बन जाती है। सच्चिदानंद वात्स्यायन ने स्पष्ट लिखा है –''हम मानते है कि सब प्रतिमानों का, सब मूल्यों का स्त्रोत मानव का विवेक है।''[1] इसी विवेक के द्वारा नीर–क्षीर न्याय करके, असत्–सत् का निर्णय करके मानव जीवन–मूल्य प्राप्त करता है। आज मूल्य संबंधी इसी मानवतावादी धारणा का विकास हुआ है कि मानव ही कर्ता एवं स्रष्टा है। डॉ. देवराज का मत है–''अब यह समझा जाने लगा कि मनुष्य अपना कर्ता–धर्ता स्वंय है। अर्थो और मूल्यों का निर्णायक भी वहीं है।''[2] मूल्यों के अभाव में समाज में समाज में अव्यवस्था एवं अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

जीवन में मूल्यों की प्रतिष्ठा और उच्चादर्शो के रूप में होती है। जीवन–मूल्य वे निष्कर्ष होते है जो परिस्थितियों, घटनाओं और भावों के मंथन से प्राप्त किये जाते है। ऐसे मूल्य परम्परागत मान्याताओं और साम्प्रदायिक अतिवादों से उपर उठकर धर्मनिरपेक्षता के धरातल पर भी अपनी महत्ता और उपयोगिता बनाए रखते है, क्योंकि उनका सीधा संबंध मानवीय परिवेश और संवेदना से होता है। वे आचार एवं धर्म के रूढ़ मानकों से मुक्त होकर जीवित रहते है और कई स्तरों पर बोध और कार्य की सही दिशा का निर्देश करते है। ऐसे ही जीवन–मूल्यों का निर्देश हम तुलसी के अयोध्याकांड में देख सकते है।

अयोध्याकांड को मानस का हृदय–स्थल कहा जाता है। इसमें रामकथा के विविध पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक पहलुओं को व्यक्त किया गया है। हृदय तो अनके प्रकार के भावों, संवेगों और उद्वेगों का रंगमंच है और भावों के उत्थान–पतन का अहर्निश व्यापार वहॉ अप्रतिहत गति से चलता है। अयोध्याकांड की कथा का प्रारंभ जनकपुर से विवाह के बाद राम सहित चारों भाईयों का पत्नियों सहित लौटकर अयोध्या में निवास करने से होता है। राम तद्युगीन समाज के उच्चादर्शो को साकार करते है। राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक मूल्यों के समस्त उत्कर्ष उनमें मूर्त है। उनके अनुकूल रहकर दशरथ एक आदर्श पिता सिद्ध होते है। कैकेयी को दो वरदान देने की वचनबद्धता के बावजूद राम–वियोग में प्राण देकर दशरथ लोक–आस्था और प्रशंसा के अधिकारी होते है। राम को वन भेजने का उनका दोष मिट जाता है और वे जीवन–मूल्यों के प्रतीक बन जाते है। सीता और लक्ष्मण के जीवन–मूल्य भी राम की अनुकूलता और उनके साथ तादाम्य पर आधारित है। दाम्पत्य–जीवन के मूल्य की प्रतिष्ठा राम–सीता सम्बन्धों के द्वारा हुई है। राम ने बराबर वनवास के दुःखों, विपत्तियों एवं खतरों का चित्रण करते हुए सीता से अयोध्या में ही रहने का आग्रह किया–

हंस गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोंहि देइहिं लोगू।।
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली।।

परन्तु सीता के सामने पत्नी का एक निश्चित मूल्य – बोध है :–

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरूष बिनु नारी।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदनु निहारे।।

पति–पत्नी में ऐसा तादात्मय भाव वह मूल्य है, जिसकी कामना और अपेक्षा आधुनिक पारिवारिक एवं दाम्पत्य–जीवन

के लिए संजीवनी होगी। अपनी प्यारी पुत्री सीता को तपस्विनी वेश में देखकर जनक–सुनयना अपने दामाद या दशरथ अथवा भाग्य को दोष नही देते, बल्कि जीवन–मूल्य की रक्षा के लिए सीता की सराहना करते है–

पुत्री पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ।।
जिमि सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी।।

इसी तरह भातृ–जीवन के मूल्यों का परिपालन लक्ष्मण और भरत के द्वारा होता है। वे राम के प्रति जितनी अनुकुलता रखते है, उनकी महत्ता उतनी ही बढ़ती है। भरत की राम के प्रति अनयन्ता देखकर ही सभी उनकी प्रशंसा करते है –

सुमन बरषि सुर घन कर छाहीं। बिटप फूलि फल, तष्न मृदुताही।।
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी।।

देवता पुष्प–वर्षा कर, घन छाया देकर, वृक्ष फल–फूल कर, तृण अपनी कोमलता से, पशु देखकर और पक्षी सुंदर वाणी बोलकर भरत की सेवा करते है, क्योंकि वे रामचन्द्र को प्रिय हैं। संक्षेप में, यह कहना उचित होगा कि समस्त जीवन–मूल्यों को व्यक्तित्व प्रदान करने पर अयोध्याकांड के राम का निर्माण हुआ है–'' महान गुणों एवं आदर्शों की प्रतिष्ठा एक व्यक्ति में करके उन जीवन–मूल्यों को साकार किया जाता है, जिनकी अपेक्षा किसी निश्चित संस्कृति में समूह द्वारा की जाती है।''[3] राम ऐसे ही पात्र है। जिन पात्रों ने राम की प्रतिकूलता अपनायी, वे मूल्यहीन हो गए। मंथरा, कैकेयी, यहॉ तक की देवगण भी, राम–विरोध के कारण निंदा और उपहास के पात्र बन गये है।

चित्रकूट की सभा में सामाजिक–राजनीतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। वहॉ राज्य के अधिकारी भातृ–द्वय–वशिष्ठ एवं विश्वामित्र, राजर्षि जनक और सुनयना, तीनों माताऍ, केंवट–भील–कोल–किरात का वन समाज, प्रजा, मंत्री, सेना सभी उपस्थित है। उनके समक्ष ही राजा कौन हो, इसका निर्णय हो रहा है। इसके पूर्व केंवट को दूर से प्रणाम करते देख वसिष्ठ ने उन्हें जबरन गले से लगा लिया था, जिससे दोनों ही पक्षों का उदात्त चरित्र प्रकट होता है। चित्रकूट की सभा में जीवन के विविध पक्षों के सभी मूल्य संदेश उपस्थित है और स्नेह, प्रेम, त्याग, मर्यादा, सेवा, कर्त्तव्य के सभी उच्चतर धर्मो की प्रतिष्ठा संभव हुई है। जीवन के उच्चतर मूल्यों की चतुर्दिक स्थापना को देखकर ही इस सभा को एक आध्यात्मिक घटना कहने की तत्परता आचार्य रामचंन्द्र शुक्ल ने दिखलायी थी।

अयोध्याकाण्ड में प्रतिपादित प्रथम जीवन–मूल्य है–बहुविवाह का दुष्परिणाम। तीन पत्नियों के पति दशरथ अपनी परमप्रिय कनिष्ठा सुन्दरी पत्नी कैकेयी की तीक्ष्ण राजनीतिक महत्वाकांक्षा के शिकार हो जाते है। औचित्य विचार किसी भी धर्म–सम्प्रदाय में, वृद्धावस्था में तीसरे विवाह की स्वीकृति नहीं दे सकता। इसका दुखद परिणाम हमारे सामने है–

राम–राम कहि राम कहि, राम–राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवर बिरह, राउ गयउ सुरधाम।।

राम ने जिस एक पत्नीव्रत धर्म का जीवन–मूल्य प्रतिष्ठित किया था, उसकी पृष्ठभूमि में बहुविवाह के दारूण परिणामों की प्रमाणिक अनुभूति थी।

राज्यारोहरण के बदले हर्षपूर्वक वनवास स्वीकार करने वाले राम के द्वारा एक महत्तर और ऐतिहासिक जीवन–मूल्य की स्थापना हुई है। सामान्य लीक पर चलकर एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी राजसिंहासन पर बैठती है–यह एक सामान्य परम्परा है। रघुवंश के अनेक राजा सिंहासन पर बैठे और अपने पुत्र को राजगद्दी देकर मृत्यु को प्राप्त हुए। पुराणों में एक दो पंक्तियों या लघु–कथा में उनका उल्लेख है। परन्तु जो महापुरूष होते है वे परम्परा तोड़कर नयी परम्परा बनाते है। कवि अज्ञेय की एक लघु कविता है–' उन्होंने घर बनाये' जिसकी पंक्तियॉ दष्टव्य है–

''एक बिन्दु तक
कहानी हम बनाते हैं
जिससे आगे
कहानी हमें बनाती हैः
उस बिन्दु की पहचान
क्या हमें आती है?''[4]

वस्तुतः इस बिन्दु की पहचान राम को थी कि अब कहानी उन्हें बनायेगी। इसीलिए राम वन जाने की बात जानकर अत्यंत प्रसन्न होते हैं–

मुख प्रसन्न चित्त चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ।।

उनके चित्त में चौगुना चाव है, मुख प्रसन्न है कि अब राजा उन्हें अयोध्या में रख नही पायेंगे। इस संबंध मे तुलसीदास जी कहते है –

नव गयंदु रघवीर मनु, राज अलान समान।
छूट जानि बन गमनु सुनि, डर आनंदु अधिकान।।

अर्थात् रघुवीर राम का मन नये पकड़े हाथी की तरह और राजतिलक कॉटेदार लोहे की बेड़ी सदृश है। इस से मुक्ति पाकर राम का हृदय अति मुदित है। वे जानते थे कि सिंहासन पर बैठना खुद को कहानी के हाथों समर्पित कर देना है। उन्होंने कहानी को खुद बनाने का संकल्प लिया और वे एक निर्वासित राजकुमार से मर्यादा पुरूषोत्तम और परमब्रम्ह के रूप में कहानी बना गये। इस बिन्दु की पहचान राजकुमार सिद्धार्थ को थी। कपिलवस्तु का राज्य छोड़कर वे ऐसी, कहानी बना गये जो सारी दुनिया में पढ़ी जाती है। सिद्धार्थ के अमिताभ बुद्धि होने के मूल में यही पहचान है। इसी बिन्दु की पहचान सत्यव्रत को थी, जो राज्य का अधिकार छोड़कर त्याग, पितृभक्ति एवं ब्रम्हचर्य के जीवन्त मूल्य के रूप में स्थापित हुए भीष्म बनकर। इसीलिए अयोध्याकाण्ड में राम–वन–गमन एक ऐसा सार्वकालिक जीवन–मूल्य है, जिससे हमें अपनी मौलिक एंव नवीन जीवन–कथा लिखने का संकल्प प्राप्त होता है। इस जीवन–मूल्य की ओर दिनकर ने भी संकेत किया है–

''वसुधा का नेता कौन हुआ? भूखंड–विजेता कौन हुआ?
अतुलित यश–क्रेता कौन हुआ? नव–धर्म–प्रणेता कौन हुआ?
जिसने न कभी आराम किया, बिध्नों में रहकर नाम किया।''[5]

इसी मूल्य की स्थापना के लिए अयोध्याकाण्ड के राम सहर्ष वन गए और फलस्वरूप रघुकुल के सभी राजाओं में श्रेष्ठ हुए।

चित्रकूट से अयोध्या लौटकर भरत ने खड़ाऊँ को राजपद पर स्थपित किया और नंदीग्राम में पर्णकुटी बनाकर निवास करने लगे। तथा तपस्वी बनकर राज्य–संचालन करने लगे। इस संबंध में तुलसीदास लिखते है–

भूषण बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन दुरी।।
अवध राजु सुर राजु सिहाई दसरथ धनुसुनि धनदु लजाई।।
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।

प्लेटों ने एक दार्शिनिक राजा की आदर्श कल्पना की थी, जो कर्म और चिन्तन के स्तर पर भरत में चरितार्थ है। 'दिनकर' ने एक स्थान पर लिखा है– ''देवता वह नही, जो सबकुछ को पीठ देकर सबसे भाग रहा है। देवता वह है, जो सारी आसक्तियों के बीच अनासक्त है।'' 6 इस जीवन–मूल्य की प्रतिष्ठा अयोध्याकाण्ड के भरत में हुई है।

अतः प्रत्येक महान कवि अपनी सूक्तियों के द्वारा जीवन–मूल्यों की स्थापना करता है। ये मूल्य कथा एवं संदर्भ से अलग होकर भी जीते है, सार्थक होते है। इनमें जीवन के अनुभवों का नवनीत होता है और शाश्वत सत्यों की स्थापना की जाती है। अयोध्याकाण्ड ऐसे अनेक आदर्शो और प्रतिमानों का आगार है–

करम प्रधान बिरच करि राखा। जा जस करई सो तस फलु चाखा।।
विषई जीव पाई प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई ।।

इसके अतिरिक्त, दशरथ की मृत्यु और राम–वन–गमन के बाद भरत को उद्‌बोधन देते हुए वशिष्ठ ने समाज के सभी वर्गो एवं पक्षों के लिए निषेधात्मक शैली में जीवन–मूल्यों का निर्धारण किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है, कि अयोध्याकाण्ड में विप्र, राजा, वेश्य, शूद्र, सन्यासी, गृहस्थ, नारी, पर–अपकारी आदि के लिए जीवन–मूल्यों का निर्देश मिलता है, जो आज भी हमारे सार्थक है। अयोध्याकाण्ड में जीवन–मूल्यों को निकर्ष मानकर हम आज भी व्यक्तियों एवं स्थितियों का मूल्यांकन कर सकते है। उनमें केवल वैष्णव भक्त का श्रद्धाकुल हृदय ही मुखर नही हुआ है, मानवीय मूल्यों के महान प्रणेता का विवेक भी मुखर हुआ है।

संदर्भ सूची :–

1. अज्ञेय, हिन्दी साहित्यः एक आधुनिक परिदृश्य – पृष्ठ–10।
2. डॉ. देवराज, साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन – पृष्ठ–179।
3. डॉ. वासुदेव सिंह, (सं.) तुलसीदास – पृष्ठ –306।
4. अज्ञेय, 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' – (संग्रह से)।
5. रामधारी सिंह, दिनकर, 'रश्मिरथी' से –(तृतीय अंक)।
6. रामधारी सिंह, दिनकर, 'उर्वशी' – (भूमिका से)।

भारतीय दर्शन का संत गुरुघासीदास के वैज्ञानिक दर्शन पर प्रभाव

डॉ. शमा अफरोज बेग,
विभागाध्यक्ष (माइक्रोबॉयोलॉजी विभाग),
स्वामी श्री स्वरुपानंद सरस्वती महाविद्यालय,
आमदी नगर, हुडको, भिलाई (छ.ग.)

डॉ. स्वाती पाण्डेय,
सहायक प्राध्यापक (शिक्षा विभाग)
स्वामी श्री स्वरुपानंद सरस्वती महाविद्यालय,
आमदी नगर, हुडको, भिलाई (छ.ग.)

प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि भारत में भक्ति मार्ग का प्रारंभ दक्षिण की आलवार परपंरा से हुआ था, जो रामानुजाचार्य से होते हुये जब रामानंद तक पहुँचता है तो दक्षिण भारत के साथ पूरे उत्तर भारत पर भी छा जाता है। दरअसल भक्ति, धार्मिक अभिव्यक्ति को इतना सहज और सरल रुप दे देती है कि बिना किसी प्रयास के जन–जन में यह स्वतः स्वीकरणीय और लोकप्रिय होने लगती है। आचार्य रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है कि "पाण्डित्य में ऊबी हुई भावुकता ने जब यह देखा कि जो संतोष और शांति कर्म काण्डियों को यज्ञ से मेधावियों को गहन–चिंतन से प्राप्त नहीं होती, वही शांति अपढ़ जनता किसी भी देवता पर न्यौछावर होकर आसानी से प्राप्त कर लेती है, तब पण्डितों का दल भी भक्ति मार्ग की ओर झुकने लगा।" यह भक्ति मार्गीय आंदोलन की सबसे बड़ी सफलता थी। भक्ति मार्ग के तीव्रता से प्रचलित होने का मुख्य कारण इसमें निहित सामाजिक प्रतिबद्धता का भी भाव था। जहॉ अन्य मार्गों में जटिलताओं के साथ अनेक प्रकार के सामाजिक बंधन थे वहीं भक्ति मार्ग ने स्त्रियों, शुद्रों यहॉ तक कि मुस्लिम भक्तों को भी अपनाकर अपने अंदर समा लिया था। अनेक भक्तिमार्गी संत जैसे नामदेव, रविदास आदि और प्रारंभिक आलवार छोटी जाति के थे और मंदिरों में उनका प्रवेश निशिद्ध था। उनकी पीड़ा उनकी रचनाओं में दिखती है। जिसमें वे ईश्वर के समक्ष अपनी दीनता अपने प्रेम को प्रकट करते थे और कालांतर में यही अभिव्यक्तियों सामाजिक आंदोलन का भी रुप ले लेती है। हम देखते है कि उनकी रचनाओं में, सामाजिक कुरुतियों को कठोरतापूर्वक धिक्कार मिलती है। यह तो स्पष्ट है कि उनके विचारों के कारण जहॉ जात पात के बंधन शिथिल हुये, वहीं मानवीय मूल्यों का भी समाज में महत्व बढ़ गया।

छोटी जाती के संतों द्वारा भक्ति को प्रबलतम रुप में अपनाने का यह भी कारण है कि वे इस मार्ग में ईश्वर की पूजा, अपने ढंग से कर सकते थे, उन्हें देवालय, मंदिर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, दूसरा उनका सामाजिक कद भी बढ़ जाता था और उन्हें सम्मानित स्वीकार किया जाता था।

यह भी शोध का विषय है कि रामानुज के भक्ति दर्शन में ईश्वर के जिस सगुण स्वरुप का वर्णन प्राप्त होता है, वह ईश्वर अपार करुणा, अगाध वात्सल्य और अतीत सुन्दरता से परिपूर्ण है। उसके कान है वह भक्त के पीड़ा और दुःख की पुकार सुन सकता है, उसकी भक्ति चक्रधारी विष्णु, नारायण, राम, कृष्णा के रुप में की जाती है। ऐसा ईश्वर, भक्ति मार्ग में, कब निर्गुण रुप में भी पूजा जाने लगा? कब सगुण भक्ति के साथ निर्गुण भक्ति की धारा भी, समानांतर में बहना प्रारंभ हुई? क्यों भक्तों ने ईश्वर के मूर्तिविहिन रुप को स्वीकार किया? बहरहाल यह तो निश्चित है कि छोटी जातियों के सामाजिक परिवर्तन में भक्ति आंदोलन ने मुख्य भूमिका निभाई और इन छोटी जातियों के जीवन और अस्तित्व में प्राण फूंक दिए। पूरे भारत में इसका प्रभाव पड़ा तब छत्तीसगढ़ में सन 1756 में गुरु घासीदास का जन्म हुआ। उन्होंने सतनाम पंथ की शाखा बिलासपुर छत्तीसगढ़ी की स्थापना की। गुरु घासीदास के जीवन कार्य को समझने के पूर्व, तात्कालिन धार्मिक अवस्था की दशा और दिशा पर अवलोकन, अनिवार्य है। भारत में हिन्दु धर्म की संरचना विशाल और जटिल है। अपनी धार्मिक स्वतंत्रता की विशेषता के कारण उसमें असंख्य परस्पर विरोधी मार्ग, पद्धतियॉ पंथ और संप्रदाय है। शद् दर्शन की, छः अस्तिक शाखाऍ है, तो तीन प्रकार के नास्तिक दर्शन भी समाज में प्रतिष्ठित थे। उस समय पवित्र होकर, सूर्य नमस्कार, जलार्पण स्नानादि कर आराधना की शुचितापूर्ण साधनाऍ थी तो साथ ही अपवित्र त्याज्य, घ्रणास्पद तांत्रिक पद्धतियों का भी प्रचलन था। स्वाभाविक था कि धर्म के नाम पर अनेक पाखण्डी, रोजी–रोटी चलाने के लिए स्वार्धवश इससे जुड गए थे और कई प्रकार के व्यर्थ और बेकार कर्म कांडो, क्रियाओं कुरुतियों को इसमें शामिल कर अपना लाभ सिद्ध कर रहे थे। डॉ. शंभुनाथ कहते है कि "दुनिया में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें आप्रासंगिक और निरर्थक बातें न हो, परंपराए रुढ़िया बन गई, धर्म में शासकी और पुरोहित वर्ग के स्वार्थ घुस गए।" यही नहीं सामाजिक व्यवस्था में भी भयंकर भेदभाव पैदा हो गया। कई मनुष्यों की स्थिति जानवरों से भी बदत्तर हो गई। एक जाम्रत साधक के लिए तो यह स्थितियॉ असहनीय ही होती है।

गुरु घासीदास ने भी छत्तीसगढ़ में इस प्रकार की अप्रतिकूल परिस्थितियों में तीन प्रकार के मुख्य उद्देश्यों को पूर्ण करने का बीड़ा उठाया–

पहला– धार्मिक पाखण्ड़ो का विरोध और सुधार।

दूसरा– सामाजिक व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन।

तीसरा–मानवीय मूल्यों की स्थापना।

हम कल्पना कर सकते है कि छत्तीसगढ़ के अत्यंत पिछड़े क्षेत्र में, उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में यदि कोई उद्घोष पूर्वक कहता है कि

"मंदिखा म कां करे जहबो
अपन घर ही के, देवता ल मनइबो"
अपन घर ही के, देव ला मनइबो"

तो यह एक अतुलनीय साहस का कार्य था। गुरु घासीदास की शिक्षाओं का भाव पंथी गीता में बिल्कुल स्पष्ट और मुखरित होता है वे कहते है कि हे ईश्वर तेरी आराधना में कैसे करु क्योंकि दूध को बछड़े ने अन्न को कीड़े ने, पानी को मछली ने झूठा कर दिया है, यहॉ तक कि सूरज और चन्द्रमा को भी राहु केतु ने निगल लिया है इसलिए हे ईश्वर इन झूठी वस्तुओं, कर्मकाण्डो का त्याग कर मैं अपने ह्रदय के पवित्र भाव से जो शुद्ध है, आपको अर्पित करता हूँ समर्पित करता हूँ–

गैय्या के दूध ला बछरु जुठारे हे
कोठी के अन्न ला सुरही जुठारे हे
तरिआ के पानी ला मछरी जुठारे हे
चंदा सुरुज ला राहु केतू लीले हे
ह्रदय के भाव हे आरुग फूल
तोला इही ला चढांवव गुरु आरुग फूल

इस प्रकार की सुधारवादी मान्यताऐं और चिंतन हालांकि हमें संत साहित्य में श्री दिखलाई देता है लेकिन गुरु घासीदास छत्तीसगढ़ में एक ऐसे मानवतापूर्ण समाज की परिकल्पना करते है जो जात पांत रहित हो। जहॉ लोग साथ–साथ रहते हुये एक–दूसरे का शोषण ना करते हो। अपने दायित्वों और कर्तव्यों का सच्चाई पूर्वक पालन करते हो। उनके उस समय की सोच को आज हम स्वस्थ और वैज्ञानिक दृष्टिकोण कह सकते है। उनकी इस परिकल्पना केवल मानव ही नहीं, पशुजगत वनस्पति जगत भी चिन्ता दिखलाई पड़ती है जो एक पर–पीड़ा को महसूस करने वाले करुणावादी चित्त की परिचालक है और यही भाव उन्हें महामानव और विशिष्ट बनाता है। उनके सात दिव्य उपदेशों में एक यह है कि मांस भक्षण मत करो और दोहर में हल मत जोतो। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि

"पेड़ पौधा म घलो जीव के सभ गुण समाय।
काचा पेड़ झन काटहू, वहु बपुरा ह जीव आय"।

गुरु घासीदास की वैज्ञानिक दृष्टि का एक ओर उदाहरण दृष्टिगत होता है वह भी आश्चर्य जन्य है कि उस समय उन्होंने बैगा, झाड फुक, नरबलि, पशुबलि, अंधविश्वास को साहसपूर्वक अमानवीय और व्यर्थ बतलाया था जबकि समाज में यह कृत्य प्रचलित था। उनका मानना था–

"नरबलि पशुबलि सुआरथ के सब ढोग।
अपन खाय बर पर के हत्या, पापी चढ़ावय भोग"
"जग के लबरा बैइगा ला, ओकर पोथी पतरा ला।
गांव से निकाल दिहु, तभै सतके जमाना अहि"

इस प्रकार हम कह सकते है कि एक बेहद सरल एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित जीवन दर्शन जिसमें "मनखे मनखे एक" तोर एक जाति है मनखे और "अवईया ला रोकन नहीं, जवईया ला टोकन नहीं" "मोटरा बे तेला मोटरा ले नहीं मोटरा बे तेला कहिबे झन" जैसे विशुद्ध शांतिपूर्ण छत्तीसगढ़ी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता, गुरु घासीदास का दर्शन है तथा ऐसे सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित दर्शन को छत्तीसगढ़ का मौलिक प्रतिनिधि दर्शन स्वीकार किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची :–

1. दिनकर, आचार्य रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ–311, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–1, 2003।
2. शंभुनाथ, धर्म का दुखांत पृष्ठ–18, आधार प्रकाशन पंचकूला हरियाणा।

संत साहित्य में दर्शन शास्त्र का प्रभाव

डॉ. रेखा दुबे, सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
डॉ. सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय, करगीरोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

साराश :

भारतीय संत साहित्य का स्वरूप बहुत ही विशाल है। भक्तिमय होने के साथ–साथ संतों ने तत्कालीन समाज, धर्म व राजनीति के विविध संदर्भों को लेकर बहुत ही ओजस्वी वाणी में अपना साहित्य की रचना की है। संतों द्वारा उपयोगी विचारों को वर्तमान समाज के परिप्रेक्ष्य में रखा गए थे, उससे भी कहीं अधिक वे आज उपयोगी हैं। सम्पूर्ण संत साहित्य धार्मिक–सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है। आधुनिक वैश्वीकरण के दौर में संत साहित्य इसलिए प्रासंगिक है कि वह जाति–व्यवस्था व साम्प्रदायिक कट्टरता जैसी समाज–व्यवस्था का विरोधी है। वास्तव में साम्प्रदायिक सहिष्णुता व भाई–चारे की भावना से ओत–प्रोत सन्त साहित्य आज समूचे विश्व का पथ–प्रदर्शन कर रहा है। जिससे कि समाज के लोगों में शांति एवं सद्भाव बना रहे। जो सम्पूर्ण विश्व के लिए अधिकाधिक आवश्यक है।

प्रस्तावना :–

भक्तिकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, एवं राजनीतिक परिस्थिति का परिणाम हमारे मध्ययुगीन संत साहित्य पर हुआ है। सृष्य–असृष्य भेद, वर्ग वैषम्य, आदि का विवरण संत साहित्य में हुआ है। भक्तिकाल में उच्च कोटी की काव्य रचनाएँ हुई है। इस काल का साहित्य अपने गुणों से परम शिखर पर पहुँच गया था। अज्ञान और भेद अभेद को दूर कर ज्ञान रुपी प्रकाश की किरण लाने का कार्य इस काल में भक्तिसाहित्य ने किया है। मध्ययुगीन काल के संतों ने लोकभाषा में काव्य रचनाएँ लिखी। इसी कारण जनमानस तक यह साहित्य पहुँचा। लोकमंगल की भावना से ही यह साहित्यरूपी कलश भरा गया था। इस काल में भक्ति वैयक्तिक न रहकर मुक्ति का साधन बन गयी थी। आदिकाल या रीतिकाल की अपेक्षा मध्ययुगीन साहित्य को अधिक महत्व दिया गया है। इसका कारण है कि आदिकालीन साहित्य के विशय में विवादस्पद एवं अस्पष्ट है और रीतिकाल में लोकमंगल की भावना की और अधिक ध्यान नहि दिया गया था इसलिए मध्ययुगीन संत साहित्य को अधिकतर महत्व दिया जाता है। फिर भी सिद्ध एवं नाथ साहित्य का संत साहित्य में योगदान रहा है। संत साहित्य में कबीर जी का नाम अग्रणी है। साथ ही दादूदयाल, सुंदरदास, नामदेव, ज्ञानेश्वर, मीराबाई, तुलसीदास, रहीम, रसखान, कुछ महत्वपूर्ण नाम है। इस काल में संतों ने धर्म, दर्शन, जीव, जगत, ब्रह्म आदि संबंधी अपने विचार पस्तुत किए है। संतों ने भी विभिन्न विशम परिस्थितियों का सामना करकर अपना कार्य किया है।

संत परम्परा कल्याणकारिणी गंगा की भाँति सतत् प्रवाहमान है। संत कवि अपने युगीन परिवेश में फैली असंगतियों के विरूद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द करते रहे। चाहे सामाजिक विसंगतियों हों, चाहे धार्मिक कुरीतियाँ हों, चाहे नैतिक विडम्बनाएँ हों– इन सब जटिलताओं को केन्द्र में रखकर जो विचार उन्होंने अपने युगीन समाज में प्रेषित कर जनमानस में जागृति लाने का प्रयास किया, वे कल्याणकारी विचार निःसन्देह आज भी देखा जा रहा है। वर्तमान समाज के लिए उनका योगदान अनूठा है। वे अपने निष्पक्ष विचारों से हिन्दू–मुस्लिम में व्याप्त संघर्ष को सम्मिलित कर समाज में समन्वय स्थापित करने के लिए प्रयासरत् रहे। निःसन्देह संतों के द्वारा जाति विहीन मानवता को कामना कर भावात्मक एकता के प्रसार का लोगों को आत्मसात करने प्रयास किया गया।

सन्त साहित्य में अनेक स्थानों पर व्यक्तिगत जीवन के विकारों के परिष्कार की ध्वनि गुंजित होती है, जिसके माध्यम से वे आदर्श समाज की कामना करते दिखाई देते हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं – "वे सीधे समाज के सुधार में आत्म सुधार की कल्पना नहीं करते, अपितु अपने व्यक्तित्व के निखार में ही समाज का परिष्कार देखते हैं।"

आज के सन्दर्भ में यदि सन्त साहित्य का अवलोकन किया जाए, तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सन्त–साहित्य में समानता का भाव व्यंजित है, जातिवाद व साम्प्रदायिकता जैसी अमानवीय समाज व्यवस्था का विरोध है, सामाजिक व धार्मिक विद्रूपताओं के प्रति विद्रोह व्यक्त हुआ है। निश्चित तौर पर सन्त साहित्य के इस पक्ष में राष्ट्रीय एकता, सामाजिक सौहार्द्र व साम्प्रदायिक सद्भावना की तीव्र ललक दिखाई पड़ती है। सन्त काव्य के प्रतिनिधि कवि कबीर के काव्य में उन धार्मिक पद्धतियों का कट्टरता से विरोध किया गया है जो धर्म और जाति की आड़ में मानव–मानव के बीच अलगाव पैदा करती हैं, विद्वेश को बढ़ावा देती हैं। 'ना हिन्दू ना मुस्लिम' कह कर वे सहज मानव धर्म की स्थापना करते प्रतीत होते हैं। धर्म की आड़ में जनता का शोषण करने वाले ब्राह्मण वर्ग के प्रति तीव्र आक्रोश कबीर–काव्य में अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था के अंधविश्वासपूर्ण सिद्धान्तों की तर्कहीनता को अनावृत कर समाज की आँखें खोलने की पुरजोर कोशिश की है–

"जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया तऊ आन बाट काहे नहीं आया।
तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद, तुम कत लोहू हम कत दूध।"

धर्म, जाति, आदि के नाम पर समाज में हो रहे आडंबरों पर अपने विचार व्यक्त किये है। भक्ति और धर्म का व्यापक अर्थ उस समय लिया जाता था। ईश्वर को जाति धर्म से अलग रखने का कार्य संत साहित्य ने किया है। इस बारे में संत कबीर जी का मानना है कि –

''अला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निंदा।
ता थे नूर जग कीया कौन भला कौन मंदा।।''

भक्ति साहित्य के द्वारा शोषित, पीडितों को ऊपर लाने का कार्य किया गया है। साथ ही पढाई और प्रेम की आवश्यकता को भी महत्व दिया है। संत कबीर ने कहा है –

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढे सो पंडित होय।।

आज भी समाज जाति व्यवस्था से पूरी तरह दूर नही हुआ है। छुआछुत एवं जातिगत भेदभाव आज भी है। इस बारे में संत कबीर मानते है कि जब एक ही ईश्वर ने एक ही प्रकार के रक्त से हमें बनाया है तो ये भेदाभेद कैसा ? कोई पवित्र तो कोई अपवित्र कैसे हुआ। संत पलटू जी भी ब्राह्मणों की इस वृत्ति की निंदा करते हुए कहते है–

''भलि मति हतल तुम्हार पांडे बम्हना।
सब जातिन में उत्तम तुमहीं, करतब करौ कसाई।
जीव मारी कै काया पोखों, तनिको दरद न आई।
राम नाम सुनि जूडि अवै, पूजौ दुर्गा चंडी
लंबा टीका कांध जनेउ, बकूला लाति पखंडी
बकरी भेडा मछरी खायौ, काहे गाम बराई
रुधिर मांस सब एकै पांडे, थू तेरी बम्हनाई।।''

ईश्वर की प्राप्ति के लिए आज हम कई प्रयत्न करते है। जप, तप, होम, हवन आदि करते है परंतु हमारे व्यवहार में हम किसी भी प्रकार अच्छा आचरण हम नहीं करते है। संतों का मानना था कि ईश्वर प्राप्ति के लिए भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार कुंडल में बसी कस्तुरी को ढूँढणे के लिए मृग फिरता रहता है उसी प्रकार मनुष्य की अवस्था है। मंदिर, मज्जिद, गुरुद्वारे, हम भटक रहे है। विभिन्न तीर्थ स्थलों पर जाकर भगवान को खोजने का प्रयास करते है। लेकिन संतों का मानना था कि आचरण शुध्दता से ही हम ईश्वर को प्राप्त कर सकते है। इस बारे में संत कवि सुंदर दास कहते है

''अवधू भेष देषि जिनी भूलै,
जब लग आतम दृष्टि न आई, तब लग मिटै न सूलै।
मुद्रा पहरी कहावत जोगी, युगति न दीसे हाथा।
वह मागर कहुं रह्यौ अनत ही, पहॅचे गोरशनाथा।
मूंड मूंडाई तिलक सिर दीयो, माला गरै झुलाई।
जो सुमरनि कीनो सब संतनि, सौ तौ शबरी न पाई।''

आज बाजार वाद के दौर में हमें चारो और स्वार्थ ही स्वार्थ नजर आ रहा है। सारे नाते रिश्तों में सिर्फ स्वार्थ ही स्वार्थ नजर आता है। एक समय ऐसा था जब हमारे यहां मूल्यों को अत्याधिक महत्व दिया जाता था। पर आज स्वार्थ की अंधी दौंड में हम सिर्फ भागे ही भागे जा रहें हैं। यह जानना भी उचित नहीं समझते कि जिस अंधादौड़ में हम भाग रहे हैं उसके पीछे कुछ छुट भी रहा है और हम निरंतर कुछ पाने की इच्छा से गतिमान होते जा रहें हैं। इस विषय में संत कबीर कहते है –

''स्वारथ को सब कोउ सगा, जग जगला ही जांणि
बिन स्वारथ आदर करे, सौ हरि की प्रिति पिछांणि।।''

संसार के इस मोह माया और चकाचौध से बचने के लिए संत कबीर कहते है –

ऐसा यह संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन उस के व्यौहार कों, झूठे रंग न भूल।।

आज भी राज्यों में भेदाभेद, सांप्रदायिकता, भारत–पाक संबंध आदि समस्याएँ आज भी वैसी की वैसी ही है जैसी मध्यकालिन समय में थी। हॉ स्वरुप मात्र थोडा बदल गया है। संतों का मानना था कि हमें इस सब को छोड़कर मध्यम मार्ग को अपनाना चाहिए। दादू दयाल मानते है कि हिंदू और मुसलमान में किसी भी प्रकार का भेद नही है। दोनों में भी एक ही परमसत्ता का निवास है। इसी संबंध में संत दादूदयाल कहते है।–

''दादू ना हम हिंदू होहिंगे, ना हम मूसलमान।
षट दर्शन मैं हम नहीं, इस राते रहिमान।।
दादू करणी हिंदू तुरक की, अपनी अपनी ठौर।
दुहुँ बिचि मारग साध का, यह संतों की रह और।।''

उसी प्रकार संत रज्जब का भी मानना है कि राम रहीम में कोई भेद नहीं है। पर आज भी हम मंदिर और मस्जिद के नामपर राजनीति करते है। दंगे फसाद करवाते है। धर्म को तो दंगों का आधार स्तंभ माना गया है। जातिगत भेद से भी आज हमारा समाज उपर नहीं आया है। संतों का तो मानना था कोई भी व्यक्ति किसी जाति विशेष में जन्म लेने से छोटा या बडा नहीं हो जाता है। व्यक्ति अपने कर्मों से पहचाना जाता है। संत कबीर तो मानते है कि ब्राह्मण वो है जो ब्रह्म के विषय में चिंतन करता है। जाति जन्मना ना होकर कर्मणा होती है। इसी संदर्भ में संत रैदास की पक्तियाँ दृष्टव्य है –

''उॅचे कुल के कारणे, ब्राह्मण कोय न होय।
जउ जानहि ब्रह्म आत्मा, रविदास कहि ब्राह्मण सोय।
काम क्रोध मध लोभ तजि जउ करई धरम कर कार,
साई ब्राह्मण जानिहि, कहि रविदास विचार।।''

समूचे सन्त काव्य में जातिय व्यवस्था का विरोध स्पष्टतः परिलक्षित होता है। सन्त कवियों ने हिन्दू–मुस्लिम धर्म में व्याप्त विडम्बनाओं की भर्त्सना करके मानव धर्म को प्रस्तावित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। सन्त रविदास के काव्य में भी जातिगत भेदभाव से ऊपर उठ कर सामाजिक बुराइयों के निराकरण की ओर संकेत किया गया है। सन्त रज्जबदास लिखते हैं –

"हिन्दू तुरक दून्यूँ जल बूँदा,
कासू कहिए ब्राह्मण सूदा।
रज्जब समता ज्ञान विचारा,
पंच तत्त का सकल पसारा।"

वर्तमान युगीन स्थितियाँ भी मध्य युग जैसी ही हैं। आज के इस प्रगतिशील युग में भी जातिवाद, साम्प्रदायिक ज़हर व अंधविश्वास की जड़ें भारतीय समाज में उतनी ही गहरी हैं जितनी मध्य युग में थी। सामाजिक कट्टरतावाद ने समाज की जड़ों को खोखला कर दिया है। यह सत्य है कि जातिगत भेदभाव व छूआछूत के संकुचित दायरे से बाहर निकल कर ही मानव व समाज का सहज विकास सम्भव हो सकता है। सन्तों की वाणी मानव मात्र को प्रेम, भाईचारे व आपसी सौहार्द्र का संदेश देती प्रतीत होती है। इसलिए सन्तों की वाणी की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही व्यापक है, जितनी तत्कालीन युग में थी।

रूढ़ियाँ व अंधविश्वास ऐसी मानवीय ग्रंथियाँ हैं जिनसे मानव–विकास की प्रगति अवरूद्ध हो जाती है और विवेक शून्यता का जन्म होता है। सभी सन्त कवियों ने धर्म के सार तत्व को त्याग कर ऊपरी आडम्बरों में ही व्यस्त रहने को धार्मिक मूल्यों का विघटन माना है। वास्तविकता यह है कि "हमारे देशवासी धर्म के यथार्थ स्वरूप को भूलकर पाप–पुण्य पर अधिक विश्वास करते हैं। पुण्य लूटने अथवा कमाने की मानसिकता के कारण वे अंधविश्वास की खाई में और भी अधिक धँसते जा रहे हैं और साथ में सम्पूर्ण समाज की प्रगति पर भी अंकुश लगा रहे हैं।"

सन्त काव्य का गहराई से अवलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सभी सन्त कवियों ने सामाजिक–धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त परम्परागत मान्यताओं व रूढ़िवादी विचारधाराओं का कड़ा विरोध किया है। उनके मतानुसार इस तरह की रूढ़िवादी मानसिकता से ग्रसित समाज कभी उत्कर्ष नहीं कर सकता। कबीरदास के –

'पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार'

और मलूकदास के

'साधो दुनिया बावरी, पत्थर पूजन जाय'

में यह भाव पूर्ण तीव्रता के साथ अभिव्यंजित हुआ है।

उपसंहार :–

भक्तिकालीन साहित्य हमें पुनर्जागरण का संदेश देता है। निसर्ग सत्ता का अपना अस्तित्व है। गृहस्थ जीवन में रहकर भी हम मुक्ति को पाने का प्रयास कर सकते है। मानवी मूल्यों का विकास होना आवश्यक है। युवा पीढ़ीयों को अपने कर्तव्यों की और ध्यान देना आवश्यक है। हिंसा, धैर्य को न खोकर संयम के साथ अगर रहते है तो उससे लोकमंगल का विकास हो सकता है। इससे हमारी संस्कृति का विकास होगा। भक्ति साहित्य से हमे जो लोक मंगल का तत्व मिला है वह विचारणीय है। भौगोलीक सीमा को लॉगकर मन से मन मिलना आवश्यक है। भक्तिकालीन साहित्य का सामाजिक पक्ष आज भी प्रासंगिक है। सन्त कवियों ने अपनी वाणी के माध्यम से समाज को एक नई दिशा प्रदान की। तत्कालीन विसंगतियों पर जोरदार प्रहार कर ब्राह्मणवाद व वर्णाश्रम धर्म की कटु आलोचना कर समाज सुधारक का दायित्व भली–भाँति निभाया। निःसन्देह कबीर सन्त कवियों में सर्वाधिक विद्रोही है। एक विद्वान आलोचक के अनुसार – "कबीर की अन्तःदृष्टि सत्यान्वेशी है और उनके स्वानुभाव गहरे हैं। उनकी रहस्यमयता भी स्वाभाविक सरसता से ओत–प्रोत है। वे एक उज्ज्वल भविश्यदृष्टा के रूप में समाज सुधारक थे। सामाजिक पाखण्डों और चिरकाल से व्याप्त रूढ़ियों पर उन्होंने अपनी प्रभावपूर्ण वाणी से तीक्ष्ण प्रहार किए है. ..... ।"

वास्तव में साम्प्रदायिकता, जातिगत भेदभाव व अनेक अन्तर्विरोधों से त्रस्त वर्तमान भारतीय समाज की व्याधियों को अपने काल में ही लक्षित कर इनका समाधान प्रस्तुत करने वाले कबीर सही अर्थों में दूरदृष्टा थे। साथ ही समकालिन संत कवियों ने समाज सुधारक के दायित्वों का निर्वहन किया है।

संदर्भ सूची :–

1. भक्तिकालीन काव्य में मानवीय मूल्य, डॉ. हणमंतराव पाटील, समता प्रकाशन कानपुर, प्रथम।
2. संस्करण 2009, पृ. 82।
3. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ. 88।
4. श्याम सुन्दरदास (सं.), कबीर ग्रन्थावली (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी), पृ. 173।
5. डॉ. प्रणव शर्मा, प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य, पृ. 226।
6. हरि, संत सुधा सार, पृ. 530।
7. राशि जेकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, पृ. 103।
8. डॉ. हरमोहन सूद, हजारीप्रसाद द्विवेदी का सृजनात्मक साहित्य एवं सांस्कृतिक/मानवीय मूल्यों का निकष,पृ. 13।
9. डॉ. प्रणय शर्मा, प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य, पृ. 226।

बुल्ले शाह और वेदांत दर्शन का साम्य

डॉ. सुनीता अवस्थी, ऐसो.प्रोफेसर,हिंदी विभाग
राजकीय सनातन धर्म महाविद्यालय, ब्यावर,अजमेर, राजस्थान

वस्तुतः हम यही समझते हैं कि सूफी मत मूलतः अरब, ईरान, अफगानिस्तान आदि क्षेत्रो से उतपन्न हुआ। और यह एक ऐसी विचारधारा है जो ईश्वर से, खुदाबन्द करीम से इंसान को जोड़ती है। इस्लाम के उदय के साथ ही सूफी सिलसिला प्रारम्भ माना जाता है। लेकिन यहां यह बात रेखांकित करना चाहती हूं कि यह विचारधारा अमूर्त को महसूस करने का, उस सातों आसमान के मालिक को अपने नजदीक पाने का सिलसिला था। और उसमे भी कोई इल्म, नियम कायदे की बेड़ियां नही थीं। यह निरक्षर,लोक से जुड़े लोगों यथा मजदूर, गिरमटिया, कुम्हार, भिश्ती, गड़ेरियों से लेकर बादशाहों तक से जुड़ाव का मत था।

इस्लामिक रहस्यवाद से जुड़ा सूफी अरबी भाषा का शब्द है। जिसमे सफ माने श्रेणी, सूफ यानी ऊन। अर्थात् मोटे वस्त्र पहन सादा जीवन जीने वाला दरवेश सूफी कहलाते थे। जो ईश्वर, अल्लाह की इबादत के परंपरागत तरीको से हटकर सहज ह्रदय से उससे जुड़ाव बताते थे। मोहम्मद साहब के उदय से ही सूफीमत का उद्‌गम हुआ। भारत में सूफी मत के चार प्रमुख वर्ग थे, चिश्ती, कादिरी, सुहरावर्दी और नक्शबन्दी। भारतीय वेदांत दर्शन की विचारधारा यहाँ भी स्पष्ठ मिलती है जब वुजूडिया सूफी ज्ञानवादी यह कहते हैं कि सब कुछ ब्रह्म है। सर्वम खलु इदं....ब्रह्म। इसके साथ आत्म विकास और ज्ञान की विविध अवस्थाएं वेदांत दर्शन के आत्म ज्ञान और उसकी विभिन्न स्थितयों को दर्शाती हैं।

भारत मे सूफी सिलसिला :–

यह देखना युक्तिसंगत होगा कि भारत मे सूफी मत पैगम्बर मोहमद साहब की बेटी और दामाद, हजरत निजामुद्दीन औलिया, ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती आदि लगभग आठवी शताब्दी में ही मोहम्मदबिन कासिम के समय से प्रारम्भ हुआ। उस वक्त हिंदुस्तान में मुस्लिम बस्तियों की स्थापना ही उद्देश्य था। सूफी मत इस्लामिक कट्टरता को सॉफ्ट करने का एक मार्ग भी था। पता नही क्यो अधिंकाश धर्म जो बाहर से आए वह अपनी विचारधारा को येनकेन प्रकरण आम लोगो मे फैलाने में ही रहे। हालांकि यह हमारे भारतवर्ष की सुदृढ परम्परा रही कि जहां हजारो वर्षो पूर्व वेद, उपनिषद, पुराण आदि की ज्ञान परम्परा रही। जो सर्वसमन्यकारी और सर्वे भवन्तु सुखीन..की है, उसी को हमसे सैंकड़ो वर्ष बाद अन्य लोग, पंथ अपनाते रहे और हम पर भी नए नाम से रोपते रहे। पर सहिष्णु हिंदुस्तान ने तो जैसे घनघोर विरोध करना सीखा ही नही। तभी जो आतताई आया वह यहीं बस गया। चाहे मंगोल, गोरी, खिलजी, मुगल, तुर्क, फ्रांसीसी हो या अंग्रेज। और वह अपने अपने धर्मस्थल बनाता रहा।

सत्रवी शताब्दी के आखिर में भारत में सूफीवाद में काफी परिवर्तन आया। यह उत्तर सूफीवाद औरंगजेब की हिंसक और धर्मस्थलों को तोड़ने की नीति के साथ साथ विकसित हुआ। यह मुख्यतः हठधर्मिता और जबरन इस्लाम थोपे जाने के खिलाफ इस वक्त के सूफी संत रहे। मध्यकाल का उत्तरार्ध में सूफी इस्लाम के प्रचारक नही रहे बल्कि वह अन्य धर्मों के अध्ययन की ओर मुड़े। स्वभाविक है वह फारसी और अन्य भाषाओं के जानकार थे। उसी समय मुगल शहजादे दारा शिकोह दौरा वेदो, उपनिषदो के गहन अध्ययन को पूरी दुनिया आज भी मानती है। आखिरकार बाबर, 1526 ईसवी, के लगभग दो सौ वर्षों बाद कोई विदेशी शहजादा भारत के मूल ज्ञान, उसकी संस्कृति के अध्ययन और मनन को जानने का प्रयास कर रहा था। वेदान्तिक प्रभाव दारा शिकोह को प्रभावित भी कर रहा था। वह ऐसा युवक था जो गद्दी पर बैठने से पहले भारत की प्राचीन संस्कृति, विचारधारा का अध्ययन करके देश को समरसता की ओर ले जाना चाहता था। (देखे मेवाराम की किताब दारा शिकोह) यह मुस्लिम कट्टरपंथियों को रास नही आई और सगे भाई औरंगजेब दौरा दाराशिकोह की हत्या से यह सही राह होते होते फिर रह गई। दारा शिकोह बड़ा शहजादा था और भारत की गद्दी पर उसी का अधिकार था,मुस्लिम परम्परा से।लेकिन उसे हटा दिया गया। अंतरराष्ट्रीय साजिशें प्रारम्भ से हुई हैं इस देश के साथ।

औरंगजेब ने गद्दी पर बैठते ही जन्मानस पर हर तरह के अत्याचार किए, धार्मिक स्थलों को तोड़ा गया। जबरन अपना धर्म थोपा गया। इस वक्त पंजाब भारत का मुख्य द्वार था। वहाँ के सूफियों को यह हठधर्मिता अखरी और उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता तथा उसकी स्वतंत्रता का समर्थन किया। उस वक्त पंजाब में दो प्रमुख सूफी सिलसिले रहे जिन्हें कुरानी सूफियों का रूढ़िवादी सम्प्रदाय और दूसरा दार्शनिक सम्प्रदाय। यह मध्यकाल का भारत था जहां साहित्य, ज्ञान और सद्‌भाव की परंपरा थी। बुल्लेशाह इसी दार्शनिक सम्प्रदाय से थे। और बड़े ही अनूठे ढंग से वह सूफी वाद को आगे बढ़ाते हैं।

बुल्लेशाह : प्रश्न और जिज्ञासा का सूफी :–

वास्तव में जो कहा गया, स्थापित है उसे ही मानकर आगे बढ़ना है तो फिर देश काल और जन्मानस की समस्याएं कैसे समाधान पाएंगी? और नए नए सवाल नही होंगे तो ज्ञान का विस्तार कैसे होगा? अपने गुरु से सवाल नही करोगे तो प्रश्नों के उत्तर कैसे पाओगे? फिर चाहे वह सत्ता की विचारधारा का विरोध हो या अपने गुरु शाह इनायत से ही प्रतिप्रश्न हो । या फिर खुदा से प्रश्न हो न वह पीछे हटे उधर उनके सवालों के जवाब देने से खुदा भी पीछे नही हटे। बुल्लेशाह (1680 –1758 ईसवी) ने तो अपने गुरु अथवा मुर्शीद के चयन में बारम्बार चिंतन किया, पूरा लाहौर छान मारा। और यह तलाश शाह इनायत कादिरी (1728 ईसवी में दिवंगत) पर जाकर रुकी। बुल्लेशाह पर सी. एफ. आसबर्न ने बताया कि, ''वह पैगम्बर मोहम्मद की दरगाह पर जाना चाहते थे।'' मुर्शीद, (गुरु) ने पूछा क्यो? तो कहा कि उनके दर के दर्शन से उनसे ही मिलना हो जाता है। मुर्शीद ने 3 दिन बाद इसका जवाब देने का वादा किया। तीसरे दिन रात को बुल्लेशाह को स्वप्न में पैगम्बर आते दिखे, आकर उन्होंने मुर्शीद को अपने दाई ओर बैठाया। बुल्लेशाह दोनों को देख श्रद्धापूर्वक नतमस्तक हो गए। जब आंख उठाकर देखा तो उसे पैगम्बर और गुरु में कोई अंतर नही दिखाई पड़ा।

(अ) वेदांत दर्शन से साम्य :–

यह घटना योग्य गुरु के पास जाकर ज्ञान प्राप्ती वेदांत दर्शन के साधन चतुष्टयः में आती है। जिसमें योग्य गुरु के पास ज्ञान सीखने के अंतरंग और बाह्य साधनों के बाद जाया जाता है। इसमे श्रवण, मनन, निद्धियासन की प्राप्ति होती है। अर्थात् गुरु के आप्त वचनों को सुनना, उन पर मनन करके अपने को निखारना और फिर आत्मसात करके जींवन में उतारना।

बुल्लेशाह पीर शाह इनायत कादरी, (कादरी सम्प्रदाय सूफी मत के चार सम्प्रदायो में से एक है) के इतने पटु शिष्य हुए की पीर से उन्हें कई दिव्य शक्तियां मिली। ''बुल्ला शाह दी जात न कोई/मैं शाह इनायत पाया है।'' अपने गुरु के प्रति यह भाव सूफी सिलसिले की अहम पहचान है।

शंकराचार्य रचित ब्रह्मसूत्र का पहला ही श्लोक है, ''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'' अर्थात् जिज्ञासा है,जानने की इच्छा ही ब्रह्म, पीर, पैगम्बर को पाने का पहला कदम है। और ऐसी जिज्ञासा जो पूर्ण समर्पण से ही प्रारम्भ होती है। जो जिज्ञासु नही अपने जीवन मे वह समझे की प्रकृति, सांख्य दर्शन, की भांति सक्रिय परन्तु जड़ हैं। जैसे अजीव वस्तुए, पत्थर, लकड़ी, फर्नीचर, लोहा आदि।

बुल्लेशाह गाते हैं, 'मैं मेरी है न तेरी है/एह अंत खाक दी ढेरी है।' रहस्य वादी बुल्लेशाह अचेतन की अपेक्षा चेतन पर विचार करते हैं। सूफी परम्परा के अनुसार चेतन अथवा आत्मा को परमात्मा से एकरूप होने के लिए वह प्रेमीरूप में अग्रसर होने को कहते हैं । पिया बस कर बहुती होई / तेरा इश्क मेरी दिलजोई 'मेरा तुझ बिन अवर न कोई/अम्मा, बाबल, भेन न भाई।'

आगे वह लोक की भाषा मे कहते कहते हैं, 'जिचर न इश्क मजाजी लागे / सुई सिवे न बिन धागे' अर्थात् उससे, परमात्मा से इश्क किए बिना कोई उसे नही पा सकता जैसे सुई बिना धागे के नही सीती। दरअसल आत्मा को मायावश अनेकत्व की अनुभूति होती है परन्तु वह उससे मुक्त होकर सार रूप में परमात्मा से एकात्म होने की आकांक्षा करती है।

अद्वेत की विचारधारा सूफी विचारधारा में आती है जब वह कहते हैं सब कुछ ब्रह्म है। वह मानते हैं कि सृष्टि शून्य से हुई है। यह शून्य वेदो के नेति नेति का ही रूपांतरण है। दरअसल संसार के माया व्यापार से सूफी संत, पीर, मुर्शीद सब परिचित होते है। वह उसके आरआर देखते है और यही समझाते हैं कि इस माया से पार पाओ और उससे, ईश्वर से जुड़ाव लगाओ। इसके लिए इश्क से बढ़कर कौनसा मार्ग है? नानक, कबीर से लेकर मीरां, रैदास, जाम्भो जी, बाबा रामदेव (योग गुरु नही), रहीम, गुरु घासीदास, और निर्मला देवी सभी लोक संत लोक में रहकर लोक से परे जाने का ही मार्ग और तरीके बताते हैं। और दूर क्यो जाए?यह सभी लोक के ही मध्य रहे,उनके जैसे ही कुलो में जन्मे, लोक के ही कार्य किए जुलाहे ,मोची से लेकर बुल्लेशाह के जैसे चरवाहे भी। और बताया कि कैसे दैनिक जीवन के कर्म करते हुए भी परमात्मा को पाया जा सकता है।

(ब) प्रश्न और जिज्ञासा का सूफी :–

सैयद परिवार में तत्कालीन लाहौर के कसूर में 1680 ईसवी में जन्मे बुल्लेशाह के कई नाम रहे। उन्हें मीर बहली शाह कादिरी शतारी कसूरी भी जाना जाता था। उनके प्रारंभिक प्रश्न ही उनका मिजाज बताते हैं। उनके गुरु शाह इनायत, मुस्लिमो की निम्न जाति के थे, यह सैयद ऊंची जाति थी तो उनके घर वालो ने ऐतराज किया कि भले आदमी यही गुरु मिला था बनाने को? बुल्ले का जवाब उन्ही घरवालों की भाषा मे था कि, सैयद जो भी कहता मुझको / पाएगा दंड नरक में वो। तो यह यात्रा की प्राम्भिक स्तिथि थी। आगे तो बुल्लेशाह के यथार्तवादी दृष्टिकोण से उनके मुर्शीद शाह इनायत भी

नाराज हो गए। वजह थी बुल्लेशाह का शरीयत विरोध का मत। यह एक नई और बुलंद आवाज थी जिसे सुनना आज भी मुश्किल है, कल्पना करें उसे आज से 250 वर्ष पूर्व कहना कितने साहस और जन के हित का कार्य था। देखें, ''जला दो आसन, फोड़ दो वजू पात्र को ध्जपमाला, कमंडल और छोड़ दो छड़ी को।''

हिन्दू मुस्लिम दोनों की जड़ताओं को समान रूप से धोया। आगे कहा, 'थक गए थे करते पाठ वेदो, कुरान का /घिस गए थे माथे अब तक करते करते प्रार्थना, /न तीर्थ में न मक्का में ही है खुदा।'

अब्दुल्लाह शाह उर्फ बुल्लेशाह यहीं नही रुकते और कहते हैं, 'स्तुतियों को जला दो, उपवासो (रोजे) को मिट्टी में मिला दो /कलमा को कलुषित बना दिया।' शाह इनायत नाराज भी हुए, युवा बुल्ले ने उन्हें समा, संगीत और नृत्य की कव्वाली से मना लिया। यहाँ यह गोरतलब है कि इस्लाम में संगीत निषेध है। परन्तु चिश्ती सम्प्रदाय के सूफियों ने संगीत की अनुमति दी। यह परंपरा 1170 ईसवी में कादिरी सम्प्रदाय में शाह शमसुद्दीन ने चलाई। बुल्ले शाह के काफिये आज भी गाए जाते हैं। उनके काफियों में तत्कालीन हिंदुस्तान की हालत का उल्लेख मिलता है। पंजाब के हालात और मुगलों तथा अफगानियों से अत्यचारित यह कोम । औरंगजेब और उसके बाद के शासकों द्वारा किए जा रहे अत्याचार का उन्हें अहसास था। निर्भीकता से तत्कलीन हुकूमत के खिलाफ वह काफियों में कहते, 'उल्टे होर जमाने आए /का लग्गड नूं मारन लग्घे चिड़िया जुर्रे खाए।' उल्टा समय है कौओं ने गिद्धों को मारा,चिड़िया बाजों को खा गई।

सिक्खों के नवम गुरु तेगबहादुर औरंगजेब के कारण वीरगति को प्राप्त हुए। दसवें गुरु गोविंदसिंह जी 1707 मे गुजरे तब मुगल बादशाह बहादुरशाह था। इसके बाद के 50 वर्षो तक बुल्लेशाह सूफी इश्क की अलख के साथ जनजागरण में लगे रहे।

इश्क और ईश्वर :–

यह दोनों बुल्लेशाह ही नही हर दार्शनिक सूफी की निगाह में एक ही हैं। बुल्लेशाह निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को ऐसे प्रकट करते हैं, 'अहद अहमद विच फरक न बुल्लियां /इक रत्ती भेत मरोड़ी दा।'

उनकी काफियों से अद्वत वेदांत झलकता है जब वह कहते हैं 'तुसी सभनि भेखि थीदे हो /हर जा तुसी दिसिदे हो।' आप सब रूपों में हो। सर्वत्र दिखाई देते हो। यही वेदो की एकेश्वरवाद की विचारधारा है। वह उससे इश्क को इन शब्दों में कहते हैं, 'करम शरा दे धरम बतावन ध्संगल पावन पेरी (बेड़ी)' जात मजहब एह इश्क न पुछडा /इश्क शरा दा बैरी। 'इश्क हकीकी, ईश्वर प्रेम ,को बुल्लेशाह मानते थे। कियो इश्क असा ते आया है /तूं आया है मैं पाया है।' और बुल्ला की जाना मैं कोण , कहने वाले यह दार्शनिक सूफी जब वेदो के ब्रह्म वाक्य अहम ब्रह्मिस्म को इस काफिये में कहते हैं, हीर रांझे को ढूंढने के लिए भटकती रही परन्तु प्रियतम रांझा, परमात्मा तो उसी की बगल में था। तो वह सहज ही जनमानस के मध्य बहुत बड़ी बात कह देते हैं कि ईश्वर आपसी प्रेम में है, तुम्हारे ही पास है।

आज के दौर में बुल्लेशाह जैसे दार्शनिक सूफी की दरकार है जिसे बहु भाषा का ज्ञान अरबी, फारसी, गुरमुखि ही नही था बल्कि वह अध्ययन भी करते थे। और लोक के साथ खड़े नजर ही नही बल्कि लोकहित की बात पर मुल्ला, पंडितों पर काफियों के माध्यम से कहने से नही चूकते थे। और कह देते थे, 'इल्मो बस करो ओ यारा /इक्को अलिफ तेरा दरकार।' ऐसे थे हमारे आपके बुल्लेशाह। इनकी इस काफिए से बात पूरी होती है। (जिसे आप गुलजार साहब के गीत फिल्म रावण के रूप में सुने हो पर यह शब्दशः बुल्ले शाह का है) 'रांझा रांझा करदी नी मैं आपे रांझा हुई /सद्दो नी मेनू धीदो रांझा हीर न आखों कोई।' ऐसे ही हम सभी अपने ईश्वर,परवरदिगार से एकाकार हो जाएं।

सन्दर्भ सूची :–

1. खजीना तुल अस्फिया, लेखक मुफ्ती गुलाम लाहौरी, 1284 हिजरी।
2. ऋग्वेद भाष्य , 4 /3/4।
3. ईशोपनिषद भाष्य, गीता प्रेस गोरखपुर।
4. मध्यकालीन इतिहास, पाल विपिन चन्द्र, पृष्ठ 23, 29, 33, 1982 संस्करण।
5. मेवाराम, (2014), दारा शिकोह, राजकमल प्रकाशन।
6. सुरेंदर कोहली, (2019), बुल्लेशाह, साहित्य अकादमी दिल्ली, मोनोग्राफ, संस्करण।
7. साधन चतुष्टय, ब्रह्मसूत्र, शंकराचार्य, भाष्य, गीता प्रेस गोरखपुर, 1992।

छत्तीसगढ़ की लोकसंस्कृति एवं गुरूघासीदास का दार्शनिक प्रभाव

डॉ. गुरप्रीत कौर छाबड़ा, प्राचार्य,
संस्कार सिटी कॉलेज ऑफ एजुकेशन, ठाकुरटोला, राजनांदगांव (छ.ग.)

सरांश :–

बौद्धिक जगत में विषय के बहुचर्चित व्यक्तियों में गुरूघासीदास जी भी एक है जिन्होंनें अपनी तार्किक विलक्षणता एवं सूक्ष्म निरीक्षणों के आधार पर श्रोष्ठतर मान्यताओं को स्थापित किया है। गुरूघासीदास जी निश्चित रूप से मानवतावादी दार्शनिक है। जिन्होंनें मानव निर्माण की प्रक्रिया के सूक्ष्मतापूर्वक समझने एवं परखने का प्रयास किया।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बालक मशीनरी चीजों से नजदीक किंतु भावनातमक, सामाजिक व नैतिक बातों से परे होते जा रहा है।

गुरूघासीदास जी सनातन से सतनामी तक की यात्रा संघर्षपूर्ण रही, गुरूघासीदास जी शैक्षिक विचारों में सतनाम पर विश्वास, मूर्तिपूजा का विरोध, जातिवाद का विरोध, अहिंसा पर विश्वास, मघपान से दूरी बनाना, परस्त्रीगमन की वर्जना, गुरू पर विश्वास, सत्य की महत्ता इत्यादि के माध्यम से बालकों के संर्वागीण विकास पर बल दिया गया है।

छत्तीसगढ़ की संस्कृति एवं गुरूघासीदास जी के शैक्षिक विचारों के आधार पर हम आधुनिक शिक्षा के लिए यह सुझाव दे सकते हैं कि इसे भारतीय संस्कृति परम्परा एवं समाज की मांग के साथ जोड़ा जाना चाहिए जो व्यवहारिक शिक्षा पर आध ाारित एवं व्यक्ति के जीवन से संबंधित हो।

प्रस्तावना :–

छत्तीसगढ़ संस्कृति का विकास अरण्यों–तपोवनों में हुआ है। इसलिये यह ऋषि भूमि है। स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने यहां की संस्कृति को नए आयाम दिये।

आज द्विज तथा अद्विज जातियों का धर्म एक ही है संस्कार एक है, भाव तथा विचार एक है, तथा जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भी एक है। उनका मिश्रण इतनी सघनता से हुआ कि उनके बिलगाव का प्रयत्न कठिन है। अद्विज जातियों ने राजीव लोचन, शिवरीनारायण, सिरपुर, आरंग, खरौद, पाली के भव्य मंदिरों का निर्माण किया।

शैव तथा शाक्त धर्म एवं भक्तिवाद का भी अद्विजों ने विकास किया, जिनमें कबीरपंथ और सतनामी पंथ प्रमुख है। यहां के निर्मल मन जल–छल कपट से दूर हैं। वे परिश्रमी उदारमना और संतोषी स्वभाव के हैं। आदिम जातियों की धर्म–शक्ति उपासना के समीप है। मंत्र शक्ति पर उनका विश्वास है। छत्तीसगढ़ के लोग धर्म के प्रति अडिग एवं अखंडनीय श्रद्धा के अपूरित हैं तो दूसरे धर्मों का समादर करने में उदार हैं।

छत्तीसगढ़ी छत्तीसगढ़ की लोक बोली है जो करीब एक हजार वर्ष पुरानी है इसकी उत्पत्ति अर्ध मागधी अपभ्रंश से हुई है। अर्ध मागधी तीन बोलियों का समूह है अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। छत्तीसगढ़ी में शौरसेनी की अपेक्षा मागधी की विशेषता प्रमुख है। कालान्तर में छत्तीसगढ़ी, ओडिया और मराठी के प्रभाव में आकर अवधी से दूर होगई और आसपास के परिधान से अलंकृत छत्तीसगढ़ी बन गई। अब इसका मानक रूप बन गया है और इसका अपना व्याकरण है।

छत्तीसगढ़ी एक सरस, प्रवाहमयी और लचीली बोली है और करीब दो करोड़ लोगों द्वारा बोली जाती है।

छत्तीसगढ़ी का लोक साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। उसका समृद्ध साहित्य लोक गीतों, लोक कथाओं, प्रकीर्ण साहित्य, मुहावरा, कहावत, पहेली आदि से भरा पड़ा है।

छत्तीसगढ़ अपनी सांस्कृतिक विरासत में समृद्ध है। राज्य में एक बहुत ही अद्वितीय और जीवंत संस्कृति है। इस क्षेत्र में 35 से अधिक बड़ी और छोटी रंगो से भरपूर जनजातियां फैली हुई हैं। उनके लयबद्ध लोक संगीत, नृत्य और नाटक देखना एक आनंददायक अनुभव है जो राज्य की संस्कृति में अंतर्दृष्टि भी प्रदान करता हैं। राज्य का सबसे प्रसिद्ध नृत्य–नाटक पंडवानी है, जो हिंदू महाकाव्य महाभारत का संगीतमय वर्णन है। राउत नाचा (ग्वालों का लोक नृत्य), पंथी और सुआ इस क्षेत्र की कुछ अन्य प्रसिद्ध नृत्य शैली हैं।

पंडवानी का अर्थ है पांडववाणी–अर्थात पांडवकथा, महाभारत की कथा। पंडवानी छत्तीसगढ़ में मुख्य रूप से प्रदर्शन किया जाने वाला लोक गाथागीत है। पंडवानी–छत्तीसगढ़ का वह एकल नाट्य है, जिसके बारे में दूसरे देश के लोग भी जानकारी रखते हैं। तीजन बाई ने पंडवानी को आज के संदर्भ में ख्याति दिलाई, न सिर्फ हमारे देश में, बल्कि विदेशों में।

पंथी नृत्य छत्तीसगढ़ राज्य में बसे सतनामी समुदाय का प्रमुख नृत्य है। इस नृत्य से सम्बन्धित गीतों में मनुष्य जीवन की महत्ता के साथ आध्यात्मिक संदेश भी होता है, जिस पर निर्गुण भक्ति व दर्शन का गहरा प्रभाव है। कबीर, रैदास तथा दादू आदि संतों का वैराग्य–युक्त आध्यात्मिक संदेश भी इसमें पाया जाता है। गुरु घासीदास के पंथ के लिए माघ माह की पूर्णिमा अति महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इस दिन सतनामी अपने गुरु की जन्म तिथि के अवसर पर 'जैतखाम' की स्थापना कर 'पंथी नृत्य' में मग्न हो जाते हैं। यह द्रुत गति का नृत्य है, जिसमें नर्तक अपना शारीरिक कौशल और चपलता प्रदर्शित करते हैं।

राउत नाच या राउत–नृत्य, यादव समुदाय का दीपावली पर किया जाने वाला पारंपरिक नृत्य है। इस नृत्य में राउत लोग विशेष वेशभुषा पहनकर, हाथ में सजी हुई लाठी लेकर टोली में गाते और नाचते हुए निकलते हैं। गांव में प्रत्येक गृहस्वामी के घर में नृत्य के प्रदर्शन के पश्चात् उनकी समृद्धि की कामना युक्त पदावली गाकर आशीर्वाद देते हैं। टिमकी, मोहरी, दफड़ा, ढोलक, सिंगबाजा आदि इस नृत्य के मुख्य वाद्य हैं। नृत्य के बीच में दोहे गाये जाते हैं। ये दोहे भक्ति, नीति, हास्य तथा पौराणिक संदर्भों से युक्त होते हैं। राउत–नृत्य में प्रमुख रूप से पुरुष सम्मिलित होते हैं तथा उत्सुकतावश बालक भी इनका अनुसरण करते हैं।

गुरूघासीदास :–सनातन से सतनामी तक

गुरू घासीदास का जन्म गिरौधपुरी में 16 दिसंबर 1756 को हुआ था। इनके पिता का महंगूदास और माता का नाम अमरौतिन था। इनका विवाह सिरपुर के सफुरा देवी के साथ हुआ था। ये जब जगन्नाथ पुरी के यात्रा के लिए निकले थे, तब सारंगढ़ के समीप इन्हें ''सतनाम'' की प्रप्ति हुई। इसके बाद छाता पहाड़ में उन्होंने उपदेश देना प्रारंभ किया इनसे संबंधित तीर्थ स्थल चरण कुंड, अमृत कुंड, बछिया जीवनदान स्थल, सफुरा जीवनदान स्थल इत्यादि है। गुरू घासीदास ने सतनाम का उपदेश दिया बाद में विरोध होने पर वो गिरौधपुरी से भंडारपुरी धाम में प्रस्थान कर गए। इनके उपदेशों से सतनाम पंथ का प्रचलन हुआ जैत खंभ और पंथी नृत्य इनके प्रतीक है।

सतनाम पंथ की विशेषताएँ (Features of Satnam Panth)

1. सतनाम का विश्वास
2. मूर्तिपूजा का विरोध
3. जातिवाद का विरोध
4. अहिंसा पर विश्वास
5. व्यसनों से दूर रहना
6. परस्त्रीगमन की वर्जना
7. दोपहर में खेत जोतने की मनाही

शोध की समस्या :–

आज की शिक्षा प्रणाली में पथ–दर्शन की आवश्यकता है। जो मानव जीवन को विभिन्न दिशाओं में प्रगतिशील बन सके। छत्तीसगढ़ की लोकसंस्कृति छत्तीसगढ़ एवं सनातन धर्म के प्रति जागरूकता हेतु गुरूघासीदास का महत्तवपूर्ण योगदान है। आज की परिस्थिति में गुरूघासीदास की सनातन से सतनामी तक की यात्रा में संघर्ष ओर सृजन का सन्देश को आकना इस शोध की समस्या है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व :–

प्रस्तुत शोध की आवश्यकता इसलिए महसूस हुई क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में छत्तीसगढ़ की संस्कृति का अध्ययन बहुत ही कम होता है। छत्तीसगढ़ एवं अन्य प्रदेशों के बच्चों के छत्तीसगढ़ की संस्कृति एवं विरासत की शिक्षा देने तथा संर्वागीण विकास किया जा सके। जहाँ एक ओर हमारा समाज सूचना प्रोधोगिकी के चलते वैज्ञानिक युग में कदम रख चुका है। जहाँ पूरा संसार सिमट कर वैश्विक गाँव बन चुका है वहीं लोग समाज से कटते जा रहे है। यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि लोग मशीनरी तौर पर एक दूसरे के नजदीक आ गये है कितुं सामाजिक और भावनात्मक रूप से एक दूसरे से दूर होते जा रहे है। जिसने बच्चों को संस्कारों एवं अपनी संस्कृति से दूर कर दिया है। अतः यह आलोचानात्मक शिक्षा प्रणाली का रूप धारण करती जा रही है।

उक्त तथ्यों का अध्ययन करते हुए इस शोध की आवश्यकता एवं महत्व महसूस हुआ।

शोध का उद्देश्य :–

अध्ययन की आवश्यकता के देखते हुए प्रस्तुत लधु शोध के निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है–

1. छत्तीसगढ़ की संस्कृति एवं विरासत से संबंधित ग्रन्थों एवं साहित्यों शैक्षिक तथ्यों को विश्लेषित करना।
2. गुरूघासीदास से संबंधित ग्रन्थों एवं साहित्यों से शैक्षिक तथ्यों को विश्लेषित करना।
3. गुरूघासीदास जी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा संबंधी विचारों का अध्ययन करना।
4. गुरूघासीदास के शिक्षा के क्षेत्र में योगदान के विश्लेषित करते हुए, उनके शैक्षिक विचारों कर सनातन धर्म के प्रति सार्थकता का विवेचन करना।

शोध कर सीमांकन :–

अनुसंधान प्रक्रिया को परिणाम तक पहुँचाने तथा अध्ययन को वास्तविक विश्वसनीय एवं वैध बनाने हेतु समस्या का सीमांकन करना अपरिहार्य होता है–

1. इस शोध कार्य में केवल छत्तीसगढ़ की संस्कृति एवं गुरूघासीदास जी के शैक्षिक विचारों को आधार बनाया गया है।
2. मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोत का ही उपयोग किया गया।
3. छत्तीसगढ़ की संस्कृति एवं गुरूघासीदास के शैक्षिक विचारों को एक साथ जोड़कर प्रस्तुत किया गया है।

शोध विधि :–

शोध की प्रकृति ऐतिहासिक, दार्शनिक वैचारिक तथा कुछ हद तक समस्या समाधान मूलक है। प्रस्तुत अध्ययन छत्तीसगढ़ की संस्कृति एवं गुरूघासीदास के शैक्षिक विचारों के एक साथ जोड़कर प्रस्तुत किया गया है।

परिणाम :–

गुरू घासीदास जातियों में भेदभाव व समाज में भाईचारे के अभाव को देखकर बहुत दुखी थे। वे लगातार प्रयास करते रहे कि समाज को इससे मुक्ति दिलाई जाए। लेकिन उन्हें इसका कोई हल दिखाई नहीं देता था। वे सत्य की तलाश के लिए गिरौदपुरी के जंगल में छाता पहाड पर समाधि लगाये इस बीच गुरूघासीदास जी ने गिरौदपुरी में अपना आश्रम बनाया तथा सोनाखान के जंगलों में सत्य और ज्ञान की खोज के लिए लम्बी तपस्या भी की।

सतनाम पंथ पहले इतिहास से जुड़ा फिर राजनीति से और बाद में समाज सुधार से। इस तरह तीन चरणों से होते हुए गुरु घासीदास, उनके बेटे बालकदास तथा अनुयाईयों का आंदोलन आगे बढ़ा। संक्षेप में देखें तो उस समय दलितों पर दो तरफ का उत्पीड़न हो रहा था। एक ओर हिन्दू समाज में विषमता थी दूसरी तरफ मुस्लिम समाज के लोगों के द्वारा भी दलितों के साथ भेदभाव होता था।

जिन दिनों बाराबंकी और छत्तीसगढ़ में सतनाम पंथ का जन–जन में प्रचार–प्रसार हो रहा था, उस समय पूरे देश में हाशिए के लोगों के बीत चेतना उभरने लगी थी। वे अपने इतिहास और अस्मिता से रू–ब–रू हो रहे थे और वर्तमान में समता तथा सम्मान के लिए संघर्ष कर रहे थे। पंजाब में बाबू मंगूराम मुगोवालिया (1886–1980) ने आदिधर्म पंथ की शुरूआत की। उत्तर प्रदेश में स्वामी अछूतानंद (1879–1933) ने आदि हिन्दू आंदोलन चलाया। इसी दौरान आन्ध्र प्रदेश में भाग्य रेड्डी वर्मा ने आदि हिन्दू पंथ शुरू किया तथा अल्मोड़ा में मुंशी हरिप्रसाद टम्टा (1887) ने शिल्पकार सभा का गठन करके शिल्पकारों में चेतना विकसित की। मद्रास में रामासामी नायकर (1873) ने आत्मसम्मान आंदोलन की शुरूआत की। बंगाल में हरिचन्द्र ठाकोर (1880) ने मतुआ धर्म (1872) और अनके बेटे गुरुचंद ठाकोर ने नमोशुद्रा आंदोलन चलाया। उनसे पहले राजाराम मोहनराय (1772–1833) ने भी सती प्रथा बाल विवाह के खिलाफ आंदोलन शुरू किया। उड़ीसा में भीमा भोई (1846) ने महिमा धर्म चलाया। केरल में अयंकाली (1863) ने शिक्षा हेतु प्रयास किये। वहीं जोती राव फुले ने 1873 में सत्य शोधक समाज का गठन किया तथा उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले (1831–1897) ने भी महिलाओं के बीच शिक्षा देने के प्रयास किये। इनके साथ देष भर में उसी दौरान अन्य महापुरुष भी जन जागरण कर रहे थे।

गुरु घासीदास के अध्ययन का इतिहास 1862 ई. से प्रारंभ होता है, जब चीशोल्म ने उन पर एक विस्तृत आलेख लिखा था, जो जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल में छपा था। इसी आलेख का संक्षिप्त रूप उन्होंने बाद में 1868 ई. के रिपोर्ट ऑन द लैंड रेवन्यू सेटेलमेंट ऑफ द बिलासपुर, डिस्ट्रिक्ट इन सेंट्रल प्राविन्सेज में प्रस्तुत किया था। उक्त रिपोर्ट में भी चीशोल्स ने अपने पूर्ववर्ती आलेख का हवाला दिया है (1868, 45 पैरा, 97)। चीशाल्म के पश्चात हीवेट (1869) ग्रांट (1870) शेरिंग (1872) इब्नेत्सन (1881) क्रैडोक (1889) बोस (1890) भट्टाचार्य (1896) गोर्डोन (1902–1908) वाल्टोन (1903)

नेल्सन (1909–1910) थर्स्टन तथा रंगाचारी (1909) ट्रेंच (1909) रोज (1911) रिजजे (1915) रसेल तथा हीरालाल (1916) ब्रिग्स (1920) और एल्विन (1946) आदि ने घासीदास के व्यक्तित्व पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है। इनके अलावा 1920 में जी. डब्ल्यू बिग्स की पुस्तक द चमार्स और विलियम बाइजरकी बिहाइंड मड वाल्स (1932) से भी तत्कालीन परिस्थितियों का पता चलता है।

ब्रिटिश औपनिवेशिक शक्ति की नजरें छत्तीसगढ़ पर पहले से ही थी। सतनामी–विद्रोह (1820–30) छत्तीसगढ़ के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। तत्कालीन समय में छत्तीसगढ़ में सूफियों, बैरागियों, षाक्तों, कबीरपंथियों, रैदासों तथा रामनामियों का प्रभाव था।

संत धरमदास कबीरदास के पट्ट शिष्य थे। उनका जन्म कसौदा ग्राम के वैष्य परिवार में हुआ था। उन्होंने लोकगीतों को सहज–सरल शैली में आमजन को दिया। दूसरी ओर देखें तो घासीदास के अनुयायी पहले अपने आपको रैदास की परंपरा से जोड़ते थे। (रसेल तथा हीरालाल, प्रथम खण्ड, 1916:313) हीवेट (1869:33), रिजले (ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ बंगाल), बोस (1890:2923), तथा रसेल व हीरालाल (प्रथम खण्ड 312–3) के अध्ययन क्रम के दौरान छत्तीसगढ़ के सतनामियों ने अपने को रैदास का वंशज माना था। डेंजिल इब्बेत्सन ने सतनामियों को छत्तीसगढ़ के मूल हिंदुओं के बीच घुसपैठिये के रूप में चित्रित किया है। इब्बेत्सन ने पंजाब में जनगणना का कार्य किया था। सतनामी मूल रूप से पंजाब से आए थे।

हिरण्यकेशी–सूत्र ने यह भी व्यवस्था दी थी कि 'यदि कोई शूद्र कर्तव्यनिष्ठ आर्य को भला–बुरा कहे अथवा मार्ग या किसी सवारी या किसी आसन पर उसकी बराबरी करे तो उसे छड़ी से पीटना चाहिए।'(विल्सन, इंडियन कास्ट, पृ. .195), मनु (11.198) का कथन है कि 'जब शिष्य अध्यापक या गुरु के पास हो तो उसे चाहिए कि अपनी शय्या या आसन उसकी शय्या या आसन से नीची कर ले।' बील्स (1962–61) ने यह अनुभव किया था कि गांव के महत्वपूर्ण व्यक्ति जब मालगुजार से मिलने आते थे तो वे मालगुजार के आसन के नीचे बने हुए आसन में बैठते थे। इस प्रकार स्थानगत दूरी प्रतिष्ठा का पैमाना बन गई थी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि घासीदास के अनुयायी इस बात को नहीं भूले थे। यही कारण है कि इस दूरी को समाप्त करने के लिए 'रेल के डिब्बों में प्रवेश कर जाते थे और जानबूझकर सवर्णों को धक्का देते थे यह कहते हुए कि उन्होंने भी टिकिट के लिए पैसा दिया है और उनका भी सीट पर बैठने का बराबर का अधिकार है। ऐसी स्थिति में सवर्ण अपने को भ्रष्ट मानकर शुद्ध होने के लिए स्नान करते थे।' "(रसेल तथा हीरालाल, खण्ड 1, 1916, पृश्ठ 314)। सतनामी–विद्रोह में सतनामियों की यह चाह थी कि वे अपने खोये हुए आत्मसम्मान को पुनः प्राप्त कर लें। इसीलिए विपरीत स्थिति में उनका आक्राश व्यक्त होना स्वाभाविक था। वे अपने ऊपर सदियों से मढ़ढे गये प्रतीकों को उखाड़ फेंकना चाहते थे। इस क्रम में जो उलटफेर हुए, वे बार–बार हुए। सरकारी अभिलेख इनसे भरे पड़े हैं। प्रत्येक बार पहले से भी अधिक संख्या में उलटफेर हुए। इसीलिए कहीं–कहीं हिंसा का भी प्रदर्शन हो गया। सम्मानजनक ऊंचाई के पारंपरिक नियम उस समय टूटे, जब सतनामी–विद्रोह के दरमियान कोई सतनामी वहां के सुविधाभोगी व्यक्ति के घर के सामने से हाथी या घोड़े पर चढ़कर निकला (बोस 1890)। उसने ऐसा इसलिए किया कि परंपरा से चले आ रहे निषेध का उल्लंघन करे।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि छत्तीसगढ़ की संस्कृति एवं गुरूघासीदास की शिक्षाओं की समाज में महती आवश्यकता है। जो हमारी तरूण पीढ़ी को सामाजिक, भवनात्मक एवं नैतिक मूल्यों की ओर आकृष्ट करके उनकी आशा आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए उनके चरित्र में उत्तम गुणों का समावेश करने संर्वागीण विकास में सफल बनाने में सहायक होती है। जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इसका प्रयोग करना चाहिए। वर्तमान तथा भविष्य में भारत में देश की परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा विवेचना की जब भी ऐसी स्थिति आयेगी तो प्रत्येक विचारक तथा शिक्षा शास्त्री गुरूघासीदास के शैक्षिक विचारों की ओर आमुख होगा।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. जे. आर. सोनी, सतनाम पोथी, वैभव प्रकाशन, रायपुर, छत्तीसगढ, 2006।
2. मोहनदास नैमिशराय, भारतीय दलित आन्दोलन का इतिहास, भाग–1, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दरियागंज, नई दिल्ली, 2013।
3. टी. आर. खुन्टे, सतनाम दर्शन, सतनाम कल्याण एवं गुरु घासीदास चेतना संस्थान, डी. 134, कोण्डली, दिल्ली–110094)।
4. डॉ. हीरालाल शुक्ल, 'गुरु घासीदास संघर्श समन्वय और सिद्धान्त' सिद्धार्थ बुक्स, हरदेव पुरी, दिल्ली दृ 110093।

स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन एवं नारी समानता

श्रीमति शैलजा पवार, सहायक प्रध्यापक, शिक्षा विभाग
स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय, हुडको, भिलाई (छ.ग)

सारांश :–

आध्यात्मिकता मानव जीवन का अस्तित्व एवं पूर्ण सत्य है। आध्यात्मिक विकास एवं ज्ञान प्राप्ति के बाद किसी मानव के लिए कोई तत्व या ज्ञान का विषय शेष नही रहता है इसलिए शंकराचार्य ने भी कहा है कि **''शिक्षा वही है जो मनुष्य को मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर करती है।''** यह जीवन को जन्म एवं मृत्यु के सांसारिक बंधनों से मुक्त कराने का प्रयास करती है। आदर्शवादी दर्शन उस परम सत्य की बात कहता है,जो आध्यात्म की आत्मा है। सत्य की परिभाषा इस तरह की गई है कि यह संसार मिथ्या है और ब्रम्हा ही सत्य है। आदर्शवाद के प्रवर्तक स्वामी विवेकानंद तीन आध्यात्मिक मूल्यों–सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् में आस्था रखते थे। आदर्शवाद शिक्षा के उद्देश्य, वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही है। स्वामी विवेकानंद मानव निर्माण की शिक्षा को बहुत महत्व देते थे। स्वामी विवेकानंद की शिक्षा का आदर्श हैं– **पूर्ण मानव का निर्माण।** उनके अनुसार **''शिक्षा मानव में निहीत पूर्णता का प्रकाशन हैं।''** समाज की संस्कृति निर्माण में हर समाज में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति के अनुरूप ही नारी का स्थान निश्चित होता है। प्रत्येक सामाजिक रचना स्त्री वर्ग से कुछ निर्धारित कर्तव्यों की आंकाक्षा रखती हैं। स्त्रियों का योगदान समाज की स्थिरता में आवश्यक है जितना पुरूषों की। सदियों से अनेक रूपों में स्त्री हमारे सामने आती रही है। आदम एवं इव जन्म से यह सिलसिला जारी हैं।

प्रस्तावना :–

कोमल है, कमजोर नही, शक्ति का नाम नारी है। जग को जीवन देने वाली मौत भी तुमसे हारी है।

महिलायें शक्ति का रूप है वह कोमल जरूर है किन्तु कमजोर नही हैं।कुछ लोग कहते है कि राष्ट्र के विकास के रथ के दो पहिए है पुरूष एवं स्त्री। यदि दोनों में से एक ताकतवर और दूसरा कमजोर है, तो रथ डगमगा जाएगा, संतुलन बिगड़ जाएगा इसलिए रथ के दोनो पहियों को ताकतवर बनाना उचित समझा गया हैं। समाज हर वक्त हर समय बदलता रहता है काल का पहिया जिस तरह से घूमता रहता है उसी तरह समाज, समाज के ढांचे, समाज की मान्यताओं, परंपरा, संस्कृति, संस्कारों में भी परिवर्तन आते हैं।

यदि दर्शन और शिक्षा शब्दों के अर्थ को देखा जाए तो यह निश्चित हो जायेगा कि ये दोनों विचार उसी तरह एक ही वस्तु के विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। दर्शन और शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं दर्शन का संबंध ज्ञान से है और दर्शन ज्ञान को व्यक्त करता है। दर्शन, प्रकृति, व्यक्तियों, वस्तुओं तथा उनके लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के बारे में निरंतर विचार करता है। यह ईश्वर, ब्रम्हाण्ड और आत्मा के रहस्यों और इनके पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डालता हैं जिसकी परिधि ा में तर्कशास्त्र, नितिशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, समाज दर्शन एवं आध्यात्म विद्या सब आ जाते हैं। इनमें अंतिम विद्या, पदार्थ की परम (अंतिम) प्रकृति से संबंधित है। भारतीय दर्शन का काम जीवन को व्यवस्थित करना तथा उसे मार्ग प्रदर्शित करना है। दर्शन, जीवन के नेतृत्व को ग्रहण कर संसार के अनेक परिवर्तनों एवं परिस्थितियों मे से होकर रास्ता दिखाता है। जब तक दर्शन जीवित रहता है, वह लोक जीवन से दूर नही जाता। दार्शनिक के विचार उनकी व्यक्तिगत जीवनचर्या से ही विकसित होते हैं। उनके लिए दर्शन, विचारों तथा अनुभवों पर आधारित संसार संबंधी एक दृष्टिकोण हैं।

आध्यात्मिकता मानव जीवन का अस्तित्व एवं पूर्ण सत्य है। आध्यात्मिक विकास एवं ज्ञान प्राप्ति के बाद किसी मानव के लिए कोई तत्व या ज्ञान का विषय शेष नही रहता है इसलिए शंकराचार्य ने भी कहा है कि **''शिक्षा वही है जो मनुष्य को मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर करती है।''**यह जीवन को जन्म एवं मृत्यु के सांसारिक बंधनों से मुक्त कराने का प्रयास करती है। आदर्शवादी दर्शन उस परम सत्य की बात कहता है,जो आध्यात्म की आत्मा है। सत्य की परिभाषा इस तरह की गई है कि यह संसार मिथ्या है और ब्रम्हा ही सत्य है। आदर्शवाद के प्रवर्तक स्वामी विवेकानंद तीन आध्यात्मिक मूल्यों–सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् में आस्था रखते थे। आदर्शवाद शिक्षा के उद्देश्य, वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही है। स्वामी विवेकानंद मानव निर्माण की शिक्षा को बहुत महत्व देते थे। स्वामी विवेकानंद की शिक्षा का आदर्श हैं– **पूर्ण मानव का निर्माण।** उनके अनुसार **''शिक्षा मानव में निहीत पूर्णता का प्रकाशन हैं।''**

समाज की संस्कृति निर्माण में हर समाज में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति के अनुरूप ही नारी का स्थान निश्चित होता है। प्रत्येक सामाजिक रचना स्त्री वर्ग से कुछ निर्धारित कर्तव्यों की आंकाक्षा रखती हैं। स्त्रियों का योगदान समाज की स्थिरता में आवश्यक है जितना पुरूषों की। सदियों से अनेक रूपों में स्त्री हमारे सामने आती रही है। आदम एवं इव जन्म से यह सिलसिला जारी हैं।

वैदिक युग के बाद हजार वर्ष के लम्बे फलक पर स्त्रियों की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देता हैं। इस लम्बे फलक पर धर्मसूत्र एमनुसंहिता अनेक महाकाव्य जिसमें रामायण, महाभारत, शामिल हैं। उपनिषद काल में गार्गी और मैत्रेय ने अपने जीवनशैली से सभी को सम्मोहित किया। मध्यकाल में अहिल्या बाई और रजिया सुल्तान लीक से हट के थी, तो पूर्व आधुनिक काल में लक्ष्मी बाई और चांद बीबी का चरित्र हमें प्रेरित करता है और नारी के नेतृत्व जीवन को दर्शाता हैं। तभी तो–''**सीता से है राम , तभी तो सीताराम**'' समकालीन भारतीय समाज और विश्व पर दृष्टि डाले तो आज नारी जीवन के हर क्षेत्र में सामने आ रही हैं।

स्वामी विवेकानंद का शिक्षादर्शन – स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन का आधार भारतीय वेदांत और उपनिषद रहा है। स्वामी जी का मानना है कि सभी प्रकार के लौकिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान मनुष्य के अंदर हैं। उनका मानना है कि मनुष्य में ज्ञान कहीं बाहर से नही आता है वह तो उसके मन तथा मस्तिष्क में हैं जिसे शिक्षा के द्वारा इसी ज्ञान का अनावरण किया जाता है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के निर्माण के साथ–साथ उसका शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास होना चाहिए। यदि मनुष्य का शरीर स्वस्थ्य होगा तो उसकी मानसिक शक्तियों का विकास होगा तथा उसकी बुध्दि से ज्ञान, ज्ञान से भक्ति और भक्ति से योग संभव होगा।

स्त्री शिक्षा– स्वामी जी ने जन शिक्षा, अनौपचारिक तथा प्रौढ़ शिक्षा एवं नारी शिक्षा पर बल दिया है। स्वामी जी स्त्रियों को आदरभाव की दृष्टि से देखते थे। वे प्रत्येक स्त्री को माँ व बहन कहकर संबोधित करते थे। उनके वेदांत के दृष्टिकोण के द्वारा ईश्वर ने प्रकृति और नारी का सृजन किया हैं। सभी प्राणियों में एक ही चैतन्य आत्मा का वास है फिर स्त्री– पुरूष में भेदभाव क्यों? सब आत्मा है। पूर्वाग्रह की रूढ़ि मान्यताओं में आकर पुरूष ने स्त्री पर कड़े नियमों का बंधन बनाकर उन्हें अपने चरणों की दासी बना रखा है। स्त्री के बिना इस संसार की कल्पना करना व्यर्थ हैं। स्वामी जी ने स्त्रियों के उत्थान के लिए शिक्षा को सर्वोपरि माना है। वे मानते थे कि यदि कोई देश उन्नति के पथ पर अग्रसर है तो वह है उस देश की स्त्रियों का शिक्षित होना। जब वह स्वयं शिक्षित होगी तभी तो उनकी संतानों द्वारा देश का भविष्य उज्जवल होगा और देश में दिशा, शक्ति, ज्ञान व भक्ति जागेगी। इसके विपरीत जो देश स्त्रियों का आदर नही करते उनका पतन निश्चित हैं। स्त्रियों की अंतर्निहीत शक्ति पर इतना विश्वास और किसने किया? भरण पोषण आजीविका से लेकर आत्मनिर्भर हो जाए ऐसी क्रांतिकारी कल्पना और किसकी हैं ? स्त्री की स्वाधीनता को लेकर इतना आग्रह और किसने किया? भारतीय स्त्रियों की वर्तमान समस्याओं के निदान ढूंढने में स्वामी विवेकानंद का दृष्टिकोण ही उनका चिंतन बन गया हैं।जिस तरह पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना संभव नही है उसी तरह स्त्रियों की अवस्था को सुधारे बिना जगत कल्याण की कोई संभावना नही है। स्वामी विवेकानंद जी का यह विचार स्त्रियों के प्रति उनकी संपूर्ण सोच को प्रकट करता हैं। स्वामी विवेकानंद जी जब पाश्चात्य देशों का भ्रमण करते रहे, वे पश्चिम विशेषतः अमेरिका में युवतियों की शैक्षणिक योग्यता, आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास, जीवन के प्रति सकात्मक दृष्टिकोण से प्रभावित थे। स्त्री संबंधी पूर्वी मानदंड की सबसे बड़ी विशेषता हैं– उसकी चारित्रिक पवित्रता। इसलिए भारत में स्त्रीत्व का आदर्श है –**सीता, सावित्री, दमयंती।**

निष्कर्ष :–

उनका मानना था कि सबसे पहले स्त्री को शिक्षा दो और उन्हें उनकी स्थिति पर छोड़ दो, तब वह तुम्हें स्वयं बताएगी की उनके लिए कौन से सुधार आवश्यक है। नारी भारत देश में प्रचलित कुरितियों के जंजीरों में जकड़ी हुई थी और अपने उद्धार के लिए समाज सुधारकों की बाट जोह रही थी।ऐसे समय में विवेकानंद जी का स्त्रियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण स्त्री–पुरूष के भेद को समाप्त करके, राष्ट्र के योगदान में स्त्रियों की भागीदारी का आह्वान करना ही निःसंदेह स्वामी विवेकानंद जी का चिंतन है।

संदर्भित ग्रंथ –

1. छत्तीसगढ़, विवेक :अंक 44, वर्ष – 13,जनवरी –मार्च, 2014, पेज–28, 33।
2. शोध समीक्षा और मूल्यांकन : जनवरी, फरवरी, मार्च – 2019 वोल्यूम –I, II, III, इश्यू 120, 121, 122 (संयुक्त) पेज – 62।
3. शर्मा, दुबे एवं बरौलिया : शिक्षा के दर्शन शास्त्रिय एवं समाज शास्त्रिय आधार, पेज – 79–81।
4. छत्तीसगढ़ विवेक : अंक 53, वर्ष – 15 , अप्रैल–जून , 2016 (भाग1)107–110, 116–117।

कबीरदासजी के दर्शन का साहित्य और समाज पर प्रभाव

डिलेश्वरी साहू, सहायक प्राध्यापिका
संस्कार सिटी कॉलेज ऑफ एजूकेशन, ठाकुरटोला–राजनांदगांव (छ.ग.)

सारांश :–

सद्गुरू कबीर का मुख्य उद्देश्य सत्य, अहिंसा, एकता के मानवीय संदेश को जन–जन तक पंहुचाना एवं मानवतावादी सत्यज्ञान समग्रदर्शन को यथार्थ रूप से समाज के समक्ष प्रस्तुत करना था। समाज में फैले अंधविश्वास एवं समस्त भ्रांतियों का उल्मूलन कर सम्प्रदायिक सद्भावना का माहौल उत्पन्न करके समाज की सेवा करना ही उनके जीवन में निहित था। कबीरदासजी की रचनाओं में व्यक्ति के आदर्श, व्यक्तित्व, आदर्श समाज एवं अध्यात्मिक पुरूषार्थ की कल्पना मिलती है।

प्रस्तावना :–

कबीरदास जी का जन्म सन् 1938 के लगभग काशी के लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर दिव्य बालक के रूप में हुआ था। जो नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पत्ति को प्राप्त हुआ तथा इन्ही के द्वारा इनका लालन–पालन किया गया।

कबीरदास जी पढ़े–लिखे नही थे। वे अपनी अवस्था के बालकों से एकदम भिन्न थे। किसी भी प्रकार के खेल –कूद में कोई रूचि नहीं थी तथा मदरसे भेजने लायक माता–पिता के पास साधन नहीं होने के कारण कबीर को पढ़ाने का विचार भी न उठा। यही कारण है कि वे किताबी विद्या प्राप्त न कर सके।

मासि कागद धूवो नही, कलम गही नाहिं हाथ।

उन्होने स्वय ग्रंथ नही लिखे मन में जो विचार आया तथा अंतर्रात्मा से जो भाव प्रकट किए उनके शिष्यों ने उसे लिखा इस प्रकार कबीरदासजी एक सत्य का पक्ष लेकर एक तटस्थ व्यक्ति की तरह हिन्दू और मुसलमान दोनो को धर्म, अंधविश्वास तथा अत्याचारों से बचाया और दोनो की भूलें दिखलाई इस बात का पता उनकी साखियों में मिलता है।

"कबीर खड़े बाजार में, चाहे सबकी खैर।
न काहूं से दोस्ती, न काहूं से बैर।।"

"जीव मुक्तावन करने, अविगत धरा शरीर।
हिन्दू तुरूक के बीच में, मेरा नाम कबीर।।"

उनकी इस प्रकार की सत्योपदेश देने कारन वे हिन्दुंओं के गुरू व मुसलमानों के पीर कहलाये। कबीर साहेब न अपने को हिन्दू मानते थे और न ही मुसलमान जैंसा की उनका वचन है।

"हिन्दू कहूँ तो मैं नही, मुसलमान भी नाहिं।
पाँच तत्व का पुतला, गैबी खेलै माहि।।"

ऐसे सद्गुरू की अनंत वाणियां आज भी अपने मन, मस्तिष्क को प्रभावित करती है तथा समस्त भू–मण्डल पर इनकी दिव्य छवि फैली हुई है। भारत में ही नही अपितु समूचे विश्व में उनकी वाणी और उनका नाम किसी न किसी रूप में घर–घर व्याप्त है। सम्पूर्ण ब्रम्हांड में कबीर साहेब का स्थान सर्वोपरि, सिरताज और अद्वितीय है। हिन्दी साहित्यिक जगत एवं सांसारिक दृष्टिकोंण से कबीर एक ज्ञान का मार्गदर्शन करने की धरा व महान संत कवि हैं। योगियों की दृष्टिकोंण में वह एक महान योगि तथा दार्शनिकों की दुनियां में वे सबसे बड़े दार्शनिक कोहिनूर हीरा है। साहित्कारों की दृष्टि में वे रहस्यवादी, यथार्थ कवि, समाज सुधारकों के विचार की दृष्टि से वह एक सच्चे समाज सुधारक थे इस प्रकार अनंत ब्रम्हांडों के सृजनहार है–कबीर।

"अनंत लोक ब्रम्हांड में, बंदी छोर कहाय।
से तो पुरूष कबीर है, जननी जान्य न माय।।"

कबीर साहेब का गुरू तत्व–कबीर जी का गुरू महिमा देखा जाए तो मालूम होगा कि जितना संपूर्ण प्रकृति में सूर्य की आवश्यकता जरूरी है ठीक उसी प्रकार संपूर्ण मानव जाति को लक्ष्य तक पंहुचने के लिए गूरू की महत्ता, आवश्यकता जरूरी है। यदि प्रकृति में सूर्य का प्रकाश न हो तो अंधकारमय सृष्टि होगी जिसमें जीवन की कल्पना भी नही हो सकती

और सारी प्रकृति निरर्थक ही सिद्ध हो जाएगी। ठीक उसी प्रकार गुरू मानव जाति के सूर्य है। मानव जाति में ज्ञान–विज्ञान, विवेक, विचार को प्रदान करनेवाले न्याय, अन्याय, कर्म, अकर्म, सत्–मिथया, आत्मा, परमात्मा को तथा जीवन के सर्वोपरि लक्ष्य मोक्ष तक पहुचाने वाले गुरू ही है गूरू न होते तो मावन जीवन का कोई अस्तित्व नही रह जाता इसलिए कबीर साहेब कहते है। कि .....

"गुरू बीन कौन बतावे बाट, बड़ा विकट यम घाट।।"

कबीरदासजी के दर्शन का साहित्य और समाज पर प्रभाव :–

दर्शन शब्द से अभिप्राय वस्तु तत्व के देखने का दृष्टिकोंण होता है मानव समाज ने भिन्न–भिन्न दर्शनशास्त्र को जन्म दिया है। जिसके अंतर्गत कबीर साहेब का दर्शन सर्वोपरि है आपने दर्शनशास्त्र के विशय में भक्ति, अंधविश्वास, गुरूत्व व समाज के उत्थान का भाव प्रकट किए भक्ति रस से ओत–प्रोत ज्ञान, कर्म, उपासना की त्रिधाराओं का संमन्वय करते हुए हिन्दू, मुस्लिम एकता का अवतरण किया। कबीरजी ने तीन दर्शनों का वर्णन मुख्य रूप से किया

1. नास्तिक दर्शन का प्रभाव
2. आस्तिक दर्शन (हिन्दू दर्शन) का प्रभाव
3. इस्लाम दर्शन का प्रभाव

नास्तिक दर्शन के अंतर्गत वे आते है जो वेदों को प्रमाणिक नही मानते जैसे – बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, चार्वाक दर्शन।

आस्तिक दर्शन (हिन्दू दर्शन) के अंतर्गत निर्गुण ब्रम्ह की अराधना को मानते है।

इस्लाम दर्शन

संत कबीर का साहित्य पर प्रभाव :–

संत कबीर जी का सहित्य जगत में विषेश एवं मुख्य स्थान है साहित्यकी जगत में कबीर का अपना अलग पहचान है। इनकी मुख्य रचनाएं–बीजक, कबीरग्रंथावली है। कबीरग्रंथावली के तीन भाग है– साखी, सबद, रमैनी जिनमें साखी दोहा छंद में, सबद पद शैली में व रमैनी दोहा और चौपाई दोनों लिखी गई रचना है।

भाव पक्ष– कबीरदासजी एक सच्चे समाज सुधारक व भावुक भक्त और उच्च श्रेणी के कवि थे। आत्मा–परमात्मा के संबंध को आपने सरलतम शब्दों में अभिव्यक्त किया है। गुरू की महिमा का गुणगान, मिथ्या जीवन की नश्वरता मिथ्या आडंबरों का विरोध आपकी रचानाओं में स्पष्टता मिलता है। साखियों में उन्होने हिन्दू और मुसलमान दोनों को सत्य ज्ञान कराते हुए खरी–खोटी सुनाई है।

"मंदिर तोड़ मस्जिद तोड़े कुछ नही, मुजायका है।
दिल मत तोड़ किसी का बन्दे, यह घर खास खुदा का है।।"

इस प्रकार कबीर मंदिर, मस्जिद के समर्थक नहीं थें। कबीर का राम (परमात्मा) तो हृदय मंदिर में निवास करता है।

कला पक्ष– कबीरदासजी तीन शैलियों में अपने काव्य की रचना की है–

साखी– दोहा, सबद – पद और रमैनी – दोंहा–चौपाई शैली में लिखी गई है आपकरी भाषा सधुक्कड़ी व पंच मेल खिचड़ी है इसमें ब्रज भाषा, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, बिहारी आदि बोलियों का मिश्रण है कहिं–कहिं उर्दू, फारसी तथा अरबी के शब्द भी प्रयोग में आ गए है। भाषा पर कबीर का पूर्ण अधिकार था इसलिए इन्हे भाषा का डिक्टेटर कहा जाता है। अर्थात कबीर भाषा के पिछे नही चले बल्कि भाषा उनके पीछे चलती थी।

साहित्य मे स्थान–संत कबीर श्रेष्ठ कवि थे वे निर्गुण मार्ग की ज्ञानश्रयी साखा के प्रवर्तक थे। वे एक अच्छे समाज सुधारक, युग प्रवर्तक माने गए और क्रांतिकारी थे। हिन्दी साहित्य में कबीर जैसा फक्कड़, स्पष्टभाषी एवं मानवतावादी कवि अन्य कोई दिखाई नही देता है। हिन्दी साहित्य में उनका अपूर्व स्थान है आपने अपनी साखीयों के माध्यम से यह बोध कराया है कि सत्य–धर्म में जाति भेद, रंग भेद, अर्थ भेद, भाषा भेद आदि के लिए कोई स्थान नही है तथा सत्य धर्म का जीतेजी मुक्ति से सम्बंध है।

समाज पर प्रभाव :–

कबीरदासजी भक्त और कवि बाद में थे, पहले वे एक समाज सुधारक थे वे सत्य के अन्वेषक और धर्म विश्लेषक थे। कबीरजी जाति–पाति, छुआ–छूत अनेक ईश्वरवाद, अंधविश्वास, पाखण्डों के सक्त विरोधी थे। उन्होने मुसलमान भाईयों की भूलको बताते हुए कहा है कि–

"कंकर पत्थर जोंड़ कर, मस्जिद दिया बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।"

दूसरी ओर हिन्दू भाईयों से कहते है कि –

पूजे हरि मिले, तो मय पूजूं पहाड़।
यासे तो चक्की भलि, पीस खाय संसार।।"

इस प्रकार कबीर का राम व खुदा तो हृदय मंदिर में निवास करता है उन्होने स्पष्ट कहा है–

कस्तुरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढै बनमाहिं।
ऐसे घट में राम है, दुनिया जाने नाहिं।।

अर्थात् ईश्वर अपने हृदय में निवास करते हैं उसे कस्तुरी मृग की तरह मंदिर–मस्जिद, में न खोजकर अपने अंतर मन में हृदय में तलास करो। आपने धर्मिक पाखंड का विरोध करते हुए कहते हैं कि भगवान को पाने के लिए मन से पवित्र होना आवश्वक है।

हिंसा का विरोध :–

कबीर हिन्सा का विरोध करते हैं प्राणि मात्रों को मारकर उन्हें खाना तथा मांस मदिरा का सेवन करने पर विरोध करते हुए कहते हैं कि –

"बकरी पाती खात है, ताकि काढी खाल।
जे बकरी खत है, तिनका कौन हवाल।।"

अहंकार का त्याग :–

इनके अनुसार जिसमें दया, प्रेंम, करूणा है वही सबसे बड़ा पंडित है किताबी ज्ञान रखने वाला सच्चा पंडित नही हो सकता वे कहते है कि मनुष्य को कभी गर्व नही करना चाहिए। कभी भी दूसरों पर हंसना नही चाहिए यह मनुष्य जन्म एक बार मिलता है वे कहते हैं कि –

"पोथी पढ़ी–पढ़ी जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेंम के पढ़े, सो पंडित होय।।"

जाति–पाति का विरोध :–

कबीर जाति–पाति, ऊँच–नींच को नही मानते वे ज्ञान को महत्वपूर्ण मानते हैं साथ ही कहते हैं कि मनुष्य बड़ा होने से महान नही होता बल्कि दूसरों के उपयोगी होने से महान बनता है।

"जाति न पूछो साधू की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।"

"बड़ा हुआ सो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नही, फल लगे अति दूर।।"

सदाचरण, सत्य, पर बल देते हुए कहते हैं कि –

"सांच बराबर तप नही, झूट बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप।।"

छूआ–छूत की भावनाओं का खण्डन करते हुए कहते है कि शूद्र, वैश्य, ब्राम्हण व राजा सभी के रगों रक्त का रंग लाल ही होता है तो किस प्रकार की छूआ–छूत है। सभी समान है कोई बड़ा–छोटा नही है और न ही ऊँच–नीच की भाव होने चाहिए।

परोपकार की भावना– हमारी संस्कृति में परोपकार का महत्पूर्ण स्थान है, हम दूसरों की भलाई का मार्ग प्रशस्त करें। दूसरों के दुख को अपना दुख समझें और वह दुख दूर करने के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। इसी विषय में वे कहते हैं कि –

"मर जांऊँ मांगूं नही, अपने तन के काज ।
पर स्वारथ के कारण, मोहि न मांगत लाज।।"

निष्कर्ष :–

इस प्रकार सद्गूरू सत्य दर्शन को पूरी तरह समझने पर ही हमारी पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, चारित्रिक, आसर्थिक, आध्यात्मिक एवं मानवीय चिंतन धारा की सभी उलझनों का सही समाधान हो सकता है। कबीर साहेब सत्य, अहिंसा, एकता, समता और मावनता के सूत्रधार है। जाति–पाति की असारता, विश्व बंधुत्व और गुण कर्मों की प्रधानता आदि कबीर साहेब के दर्शन तथा समाज व साहित्य में खास विषेशताएं है और अनके धारण कर लेने से सारे संसार सुख शांति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है तथा सत्य–धर्म का मूलमंत्र "सत्यनाम" ही है जो की भवसागर से पार होने का जहाज है।

संदर्भ सूची :–

1. सद्गुरू कबीर स्मारिका
2. यथार्थ कबीर पंथ का रहस्य
3. कबीर दर्शन ग्रंथ

प्रेरक कथा

एक बार भगवान पृथ्वी पर अपने सबसे बड़े भक्त की तलाश में निकले उन्हें दो विशेष लोग मिले एक पुजारी जो दिन भर मंदिर में पूजा करते और मंत्रों का जाप करते समय पर भगवान को भोग लगाते, लेकिन मन सोचते रहता था, कि कोई प्रसाद को झूठा न कर दें, कोई आदमी बिना नहाये मन्दिर में न आ जाये आदि–आदि।

दूसरी ओर भगवान को एक कृषक मिला जो कर्म को ही अपनी पूजा समझता था सबेरे से उठकर नहा धोकर भगवान का नाम लेकर नाश्ता करता और दोपहर का खाना लेकर खेतों में निकल जाता था। दिनभर कड़ी मेहनत करता शाम को आकर हाथ–मुॅह धोकर, खाना बनाता और खाकर सो जाता न मन में किसी के लिये बुरा भाव न दुश्मनी। भगवान कृषक को अपना बड़ा भक्त जानकर उसे स्वर्ग ले गये, पुजारी ने बहुत दुःखी होकर पूछा भगवान मैं तो दिन–रात आपकी सेवा में लीन था इस कृषक को तो ढंग से एक मंत्र भी नहीं आता फिर आप मुझे अपने से दूर क्यों रखे। भगवान ने मुस्कुराते हुये उत्तर दिया कि मैं मन के भाव से मिलता हूॅ पंडित जी आप मेरी पूजा के वक्त भी दूसरों के लिए बुरे भाव रखते थे और यह कृषक पूजा के समय सच्चे मन से मेरा नाम लेता था और अपने कर्म को ही भगवान मानता था, इसलिए मैं इसे बड़ी पूजा मानता हूॅ और दिन में दो बार ही मेरा नाम लेता था, लेकिन श्रद्धा भरे मन से अतः यह ही मेरा बड़ा भक्त हुआ हैं।

संकलित

भारतीय संत साहित्य : मानवतावादी दर्शन की प्रासंगिकता

रेणुका साहू, सहायक प्राध्यापक,
संस्कार सिटी कॉलेज ऑफ एजुकेशन, ठाकुरटोला, राजनांदगांव (छ.ग.)

सारांश :–

भारतीय संत साहित्य का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। भक्ति–भावना की प्रमुखता के साथ–साथ संतों ने तत्कालीन समाज, धर्म व राजनीति के विविध संदर्भो को उठाकर अत्यन्त ओजस्वी वाणी में अपना साहित्य रचा है। संतों द्वारा व्यक्त विचार तत्कालीन समाज के लिए जैसे उपयोगी थे, उससे भी कही अधि कवे अरज उपयोगी है। यह सत्य है कि समूचा संत साहित्य धार्मिक–सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है। आधुनिक वैश्वीकरण के दौर में संत साहित्य इसलिए प्रासंगिक है कि वह जाति–व्यवस्था व साम्प्रदायिक कट्टरता जैसी समाज–व्यवस्था का विरोध है। वास्तव में साम्प्रदायिक सहिष्णुता व भाई–चारे की भवना से ओत–प्रोत सन्त साहित्य आज समूचे विश्व का पथ–प्रदर्शन कर रहा है।

मानवीय उच्चतर मूल्यों का मानवतावाद कहा जाता है मानवीय उच्चत्तर मूल्य स्वार्थ से ऊपर उठकर दूसरों के हित में कार्य करना है मानव अर्थ किसी मानव से घोषणा न करे संसार के सब मानव परस्पर मेलजोल से रहें सब मानव एक दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करे। समानता तथा समान लाभ के सिद्धांत के आधार पर परस्पर एक दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करे। समानता तथा समान लाभ के सिद्धांत की स्वतंत्रता का सम्मान करे। समानता तथा समान लाभ के सिद्धांत के आधार पर परस्पर एक–दूसरे को सहयोग करे विवाद व झगड़ों का निपटारा शान्तिमय तरीके से निपटा ले। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मानवतावाद वह है कि जिसमें मानव अन्य लोगों के दुःख दर्द को महसूस करे और उनके सुखी जीवन के मार्ग में बाधक न बनकर उनके प्रगति व विकास पर बल दें। मानवतावादियों ने मानव को अपने मानवतावाद का केन्द्र बिन्दु बनाया तथा उन्होंने यह विश्वास व्यक्त किया कि मानव ही मानव जाति का मूल है तथा मानव ही प्रत्येक वस्तु का मापदण्ड है। कबीर का काव्य हमारे समाज और हमारे राष्ट्र के लिए पूर्णतः प्रासंगिक है। यदपि कबीर को पैदा हुए साढे पाँच सौ वर्ष बीतने को है फिर भी कबीर के प्रतिपाघ की प्रासंगिता क्षीण नही होने पायी है।

प्रस्तावना :–

कबीर का जन्म सन् 1398 के लगभग लहरतारा तालाब काशी में माना जाता है। तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप मे हुआ। जो नीख और नीना नामक जुलाह को प्राप्त हुआ इन्ही के द्वारा इनका लालन पालन किया गया। कबीरदास के जन्म के संबंध में अनेक किवंदान्तियाँ है कुछ लोगो के अनुसार वे जगजगुरू रामानंद स्वामी के आशीवाद से काशी की उे विधवा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ब्राम्हती उस नवजात शिशु को लहरतारा तालाब के पास छोड़ आई और उन्हे नीख और लीमा नामक दम्पति ने अपने घर ले आए और उनका लालन–पालन किया।

कबीरदास का लालन–पालन जुलाहा परिवार में हुआ था, इसलिए उनके मत का महत्वपूर्ण अंश यदि इस जाति के परंपरागत विश्वासों से प्रभावित रहा हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नही है यद्यपि जुलाहर शब्द फारसी भाषा का है तथापि इस जाति की उत्पति के विषय में संस्कृत पुरणों में कुछ–न–कुछ चर्चा मिलती ही है ब्रहावैवर्त पुरण के ब्रहा खंड के दसवे अध्याय में बताया गया है कि क्लेच्छ से कुविदकन्या में बोजा या जुलाहा जाति की उत्पत्ति हुई है। अर्थात् क्लेच्छ पिता और वूर्विद माता से जो संतति हुई वही जुलाहा कहलाई।

कबीर का मुल्यांकन :–

कबीर दलितो का मसीहा था। पिड़तों का उद्धारक तथा कुचले हुए लोगो का प्रवक्ता। सामाजिक अन्याय और विषमता का धोर विरोध था। न्याय बौर समता का संस्थापक थी। वह बर जोर वर्ग का विरोध तथा कमजोर वर्ग का हिमायती था। उन्हें समाज में न्यायोचित हक दिलाने का पक्षधर था। वह जीवन भ्सर उसको जगाता रहा और उनमें जीवन भर आत्मगौरव भारता रहा। उन्हे डर प्रकार के सामाजिक जुल्मों से मुक्ति दिलाने का प्रयास करमा रहा। प्रेम के धागे में सभी के दिलों का बांधने की कोशिश करता रहा। उसकी उदार मानवतावादी दृष्टि से सभी प्रभावित हुए और कबीर के उपदेशों को अपनाने की कोशिश की।

सर्वधर्म समन्वय :–

जिस भारतीय अस्मिता की बात ऊपर कही गई है, वह धार्मिक, सहिष्णुता, उदारता, सह अस्तित्व और सर्व–धर्म समन्वय तथा विबंधुता की परिकल्पना के बिना संभव नही है। कबीर का युग संस्कृति और धार्मिक संकट से लागू रहा था। जीवन चरमरा उठा था। जीवन मूल्य और आदर्श रिक्त हो गये थे कबीर को नये आदर्श और नूतन जीवन मूल्यों की खोज

करनी पड़ी। कबीर को जमीन भी तोड़नी पड़ी, बीज भी बोना पड़ा और सीचना भी पड़ा। कबीर ने अपनी अक्खड़–फक्खड़ वाणी से उस युग की जमीन को तोड़ा, ज्ञान का बीज बोया, प्रेम का जल सीचा अपने शरीर का ताप उसको दिया और अपने महाप्राण की छाया भी। कबीर ने सह–अस्तित्व और सर्वधर्म समन्वय के क्षरा उस वायुमंडल को बनया और हमे दो शब्दों का उपहार दिया।

1. निरपख भगवान 2. पंचतत्व का पुतला।

मानवतावादी दर्शन की प्रसंगिकता :–

कबीर का मानवतावाद एक कर्म–दर्शन है वे वाक्वीर नही कर्मवीर चाहते थे। उन्होने कभी भी कोरी पण्डिताई में विश्वास नही रखा। कबीर ने दुनिया के दो रूप देखे थे शास्त्र–सम्मत दुनिया से न तो उनका सरोकार था, और न तो वे सरोकार रखना चाहते थे। उसके लिए बहुत पहले ऋषि मुनियों ने नेति नेति कहा था।

1. पण्डित मुल्ला जो लिख दिया, छांडि चले हम कुछ न लिया।
2. मैं कहता अंखिमन की देखी । तू कहता कागढ़ की लिखी।

कबीर निरपख–भगवान और अविशेष–विशेष मानव का एक मंदिर बनाना चाहमे है और वहा अपने आम आदमी की प्रतिष्ठा करना चाहते है। उनके आम–आदमी में कोई भेद नहीं है उनकी

1. सामाजिक क्रांति 2. निषेध का स्वर 3. तीखा प्रतिवाद
4. क्रांति चेतना 5. और विद्ररेह का बिगुल

सभी उनके विराट मानवतावाद के अंश है। यहाँ तक की उनके राम भी कबीर बार–बार अंतर में बस राम की ओर संकेत करते है। यह राम उनका जीवनबोध और आत्मबोध है। यही कबीर का मानवतावाद है। मानव का ऐसा गौरवगान अन्यत्र दुर्लभ है।

मन ऐसा निर्मल भषा, जैसे गंगा नीर।
पीछे–पीछे हरि फिरे, कहत कबीर कबीर।

सत्यान्वेषण (सत्य की पूजा):–

कबीर ने जीवन भर सत्यानवेषण किया और परम सत्य के रूप में अपने राम को पाया। जिसकी निम्नलिखित विशेषताएँ है

1. वह निरपख है 2. वह आत्म स्वरूप है 3. वह सर्वव्याप्त है
4. वह अद्धैत है 5. मरनव राम का अंश है इसलिए वह निर्विशेष विशेष है

उसके आत्मबोध में सृष्टि का अनुभव समाहित है, उससे परे कोई अनुभव नही। सत्यबोध, आमबोध, ज्ञानबोध तीनों उसके आत्मानुभव के स्वरूप है।

वेद पुरान सब झेठ है, हमने उसमें पोज देखा।
अनुभव की बात कहे कबीर घट का परदा बोले देखा।

कबीर का यह सत्यबोध सतनाम से अभिव्यक्त होता है सतनाम के द्वारा कबीर दास जी ने शब्द बंहा की ओर संकेत किया है समस्त कर्मकाण्डो का नकार देने वाला यह महान तत्वचिंतक बार–बार कहता है

राम नाम की लूट है, लुट सके तो लूट।

इसका अर्थ यह है कि कबीर ने केवल नाम स्मरण को ही महत्व दिया है इस नाम स्मरण के द्वारा उन्होने नाद ब्रहा कि ओर संकेत किया है, जो शब्द रूप ब्रहा है। नाम स्मरण के द्वारा शब्द ब्रहा की उपासना होती है। इसलिए आत्मबोध या आत्मज्ञान ही सबसे बड़ा सत्यबोध है।

1) ''बाके मुख माथा नाही, नाहीं खप वुरूप
पुछुप वास ते पातरो, ऐसी तत्व अनुप।
''मृगा की नाभि कस्तूरी, मृग ढंढे बन माहि
तैस घट–घट राम है, दुनिया जाने नाहि।''

कबीर का यह सत्यबोध सब प्रकार की परिभाषाओं एवं मान्यताओं से परे है। केवल आत्म प्रकाश से वह दीप्त है।

कबीर के अनुसार आत्मनुभव में ही सृष्टिबोध है। व्याक्ति जाप के माध्यम से अपने भीतर के अनहनाद को समष्टि नाद में बदलकर प्रणव को प्राप्त करता है और सत्यनाम के द्वारा शायद यही समझाया जाता है। वह मानता है इस अद्वेतम ध्वनि से सृष्टि का विकास हुआ है। इन महापुरूषों की अमृतमयी वाणी का जीवन पर बहुत ही गहन असर होता है और अनायास ही व्यक्ति अपने को भक्ति–संगीत में तल्लीन पाता है।

''ऐसा काई ना मिल्या, राम भगति का गीत
तन सौप मृग जिमि, सुने बधिक का गीम।''

सामाजिक पक्ष :–

सदाचार वह गुण है जो तत्व है। इस पर व्यक्ति का चरित्र, समाज का चरित्र और भविष्य का स्वरूप तीनों निर्भर है। सच तो यह है किसी भी समाज की वास्तविक शक्ति का आधार भी यही है। दुराचारी, दृष्ट व दुर्दान्त व्यक्तियों से बना समाज न तो कभी सुखी रह सकमा है और नही कभी उन्नती कर सकता है। सदाचार के लिए संस्कार चाहिए और अच्छा वातावरण चाहिए पैसा या शिक्षा की जरूरत नही है। सदाचार से मनुष्य अपराध से बचता है और सदाचार से वह सज्जन कहलाता है। सदाचार से उच्चकोटि के जीवन मूल्य और जीवन रूप प्राप्त होते है। सदाचारी व्यक्ति किसी भी समाज के गौरव चिन्ह होते है। कबीर दास जी ने सबसे अधिक बल सदाचार पर दिया है। वे स्वयं भी सदाचारी व्यक्ति थे जब समाज के चरित्र का आधार नैतिक होता है त बवह समाज केवल बाहरी दृष्टि से शक्तिशाली नही होता वरन–आंतरिक रूप से भी अनंत शक्ति स्रोत से जुड़ जाता है।

परोपकार :– परोपकार का अर्थ

कबीर सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जाने, सोकाफिर वे पीर।।

बिना भावना के परोपकार के लिए व्यक्ति तैयार नहीं होता। परोपकार के बिना समाज में व्यक्ति एक दूसरे की मदद नही करते। इसके बिना सामाजिक चेतना का भी विकास नही होता। मानवीय समाज का आधार परोपकार है। तभी यह सभ्य समाज होता है। जब इसके सदस्य एक–दूसरे से समात्मक रूप से जुड़े होते है। सामाजिक जीवन के अनेक प्रकार की बाध ायें एवं रूकावटे परोपकार के कारण आसानी से हल हो जाती है। क्षमा, परोपकार आदि गुण मानव के आभूषण है तथा उसकी पहचान है। गाँधी, कबीर और सभी संतमहात्मा परोपकार पर सबसे अधिक बल देते रहे है।

सहिष्णुता :–

सहिष्णुता का अर्थ है व्यक्ति चरित्र का वह तत्व जो दूसरों की गलती और ज्याती को धैर्य के साथ सह लेता है और क्षमा भी कर देता है। उसमें सहन शक्ति आती है और वह सामाजिक जीवन के लिए अपने को प्रस्तुत कर लेता है। समाज में अने प्रकार के लोग होते है। असहिष्णुता से संघर्ष क्लेश और अलगाव होता है। सामाजिक जीवन दुर्वह हो जाता है। कबीर के जमाने में धार्मिक संघर्ष और टकराहट आदि बातें चरम सीमा पर थी। कबीर दास जी ने उन्हे वहाँ से लाकर एक सहिष्णु समाज का रूप दिखाया तथा सर्वधर्म–समन्वय का रास्ता बताया। तब शांति की स्थपना हुई। लोक जीवन निर्माण के पथ पर चल पड़ा। आज के जीवन में बस सहिष्णुता की कमी है।

दया :–

कबीर का राम दीनबन्धु और दरिद्र नारायण है। गाँधीजी ने भी इस पर सबसे अधिक बल दिया। इससे समाज के कमजोर वर्ग का जीवन सहज सुलभ हो जाता है। दया पर हर धर्म ने जोर दिया है हमारे यहाँ तो दयावीर, दानवीर आदि के रूप में उसे रस के अंतर्गत रखा गया है। राम दयावीर थे, कष्ण दयावीर थे, राम के भक्त भी सच्चे दयावार होते है। अतः सामाजिक जीवन में इस गुण का सही विकास जरूरी है। गाँधी और कबीर ने इस को अपनी ओर से एक–दर्दीला दिल उपहार में दिया।

बुराइयों में निराकरण :–

कबीर ने बुराइयों के साथ कभी भी समझौता नही किया और ना ही उसके सामने झुका। स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए उन्होंने बुराईयों का पर्दाफाश किया। बुराइयों के खिलाफ चिरंतन संघर्ष छेड दिया। कबीर के जमाने में सामाजिक जीवन के हर स्तर पर इतनी बुराइयां थी कि कबीर को अक्खड–फक्खड और कठोर हो जाना पडा। सामाजिक बुराइयों का शिकार उनका आम आदमी अपने सारे मानवीय अणिकारों से वंचित रहा। अभाव और जुल्मों में जीने के कारण जन में भी अनेक बुराइयां आ गई थी और सामाजिक जीवन अस्त व्यस्त हो गया था। अतः फिर से समाज को गढ़ने के जिए कबीर ने व्यक्ति

और समाज को बुराइयों से मुक्ति दिलाने के लिए वे सदा प्रयास करते रहे। बुराइयों को बराइयों से दूर किया जा सकता है और कबीर ने यही रास्ता सुझाया है।

बुरा जो ढूंढन में चला बुरा न मिलिया कोय।
जो में आपन में ढूंढू, तो मुझसा बुरा न होय।।

सामजिक विषमता का निराकरण :–

कबीर बार–बार रोने के लिए विवश था, क्योंकि वह जन्म से सामाजिक विषमता का शिकार बना। अपने जीवन के जहर को पीते हुए उसने अपने जैसे आम लोगों को उस जहर से मुक्त रखने के लिए प्रण कर लिया और जीवन भर इससे जूझता रहा। कबीर के व्यक्तित्व, जीवन और साहित्य तीनों का केन्द्रीय अभिप्राय है सामाजिक क्रांति जो कबीर का भक्त मानते है वे कबीर के सबसे प्रबल पक्ष को हासिये में डाल देते है। वस्तुतः कबीर की जुझाारू धार्मिक चेतना उनकी जुझारू समाजिकता की देन है। कबीर उच्चतम वर्ग का आंखो कर कांटा तथा निम्नतम वर्ग का मसीहा था। कबीर मानवता के मंदिर में इस आम–आदमी को एक मानव के रूप में स्थान दिलाना चाहता है। इसी क्रांति चेतना के कारण वह मूर्ति–भंजक बना। इसी के कारण वह अराजकतावादी हुआ। इतना बड़ा सामाजिक दायित्व लेकर अपने भीतर की कोमलता को वह कभी व्यक्त नहीं कर पाया। फिर भी सब कुछ भस्म कर देने को तैयार कबीर अपनी शुभ कामना हमें देते है।

कबीर खड़ा बजार में, सबकी मांगे खैर।
न कहू से दोस्ती, न काहू से बैर।।

उपभोक्तावाद का बहिष्कार :–

आज के जीवन का अभिशाप है भोगवाद। यही सबसे बडी समस्या है उसकी समस्त बुरादयों का कारण यही है। इस भोगवाद का केन्द्रीस तत्व पैसा है। आज सारी दुनिया पैसे के लिए मरने–मारने को तैयार है। कबीर जी ने सदा ही इा उपभोगवाद की ओर ध्यान खीचा और उससे बचने के लिए जोरदार शब्दों में चेतावनी ई। तकनीकी ने मनुष्य की आवश्यकताओं में इतनी वृद्धि कर दी है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अनंत हो गई है। सीमित साधनों के द्वारा असीमित जरूरते पूरा नही होती है और इनका परिणाम होता है भोगवाद। बस आज यही प्रलय की छाया बनकर आकाश में मंडराया नही है। क्या कोई कबीर आयेगा? हमें सचेत करने के लिए न क्या कबीर आयेगा? हमें मूल्यवादी बनाने के लिए? आज का केवल इसी के आधार पर सब संहारो बचाया जा सकता है।

सुखिया सब संसार है, खासे और सोये।
दुखिया दास कबीर, जागे और रोसं।

समानता :–

सामाजिक विषमता को दमर करने के लिए समाज में सामाजीक आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि की समानता स्थपना करनी होगी। इसलिए समाज में हाव्य और हैव नाट्स दो वर्ग नही होना चाहिए। मानवीय और प्राकृतिक समनता सभी मानवों का जन्म सिद्ध अधिकार है। उसे छीनने का हक किसी को भी नही। जब यह समानता नष्ट होती है, तभी द्वेष और घृणा की आग भभक उठती है, और समाज खाक हो जाता है। बिना समानता के किसी भी समाज में शांति स्थापित नही हो सकती है और न विध्वंस से बचाया जा सकता है। अतः समानता जीवन की रक्षा के लिए पहली आवश्यकता है।

माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रूदे मोहि।
एक दिन ऐसा आएगा मै खंधूगी तोहि।।

व्यावहारिक पक्ष :–

कहने वाला कबीर अपने युग का प्रखर बौद्धिक, तत्वचिंतक तथा स्वप्रदर्शी महात्मा था। उसने शास–सम्मत दूनिया चुन ली थी और एक सीधी डगर पर तथा एक सरल जीवन के लिए वे अपने जैसे लोगों के साथ चल पड़े थे।

''मैं कहता अंखियन के देखे, तू कहता कागद की लिखि।''

वे सारी उलझनों को काट कर अपने सुलझे हुए जीवन–पथ पर चल पड़ते है यदि कबीर की शिक्षा–संबंधी कोई आवध ारणाएँ है तो वह सामाजिक न्याय, प्रेम, सदाचार, सत्यनिष्ठा, नैतिकता आदि जो शिक्षा दिलों को पास न लाये, मनुष्य के मन को न गढ़े और राम से न मिलाये तो वह शिक्षा किस काम की? जो जीवन की शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से मिलती है उससे परे और कोई शिक्षा नही हो सकती।

वेद पुरण सब झूठ है, हमने इसमें पोल देखा।
अनुभव की बात कहे कबीर, घट का परदा खोल देखा।

स्वास्थ्य :–

धर्म की साधना एक स्वस्थ शरीर से होती है। स्वस्थ शरीर के लिए एक स्वस्थ मन और निरोग शरीर चाहिए देश की वास्तविक ताकत वहाँ के निवासी होते है। एक रोगी और कमजोर देश बहुत दिनो तक टिक नही सकता। अतः देश के स्वसस्थ्य की चिंता स्भी को होनी चाहिए।

स्वास्थ्य पर विचार करते हुए सबसे पहले हमारा ध्यान शुद्ध पानी पर जाता है। हमारे देश में सभी के लिए इसका प्रबंध नही हो पाया है। सरकारी गैर सरकारी और वैसक्तिक सभी स्रोतों से इसकी अविलंब वयवस्था होनी चाहिए।

निष्कर्ष :–

मानवतावाद मनुष्यों में नैतिक गुण या मानवीय मूल्यों का संचार करता है। मानवतावाद से मनुष्य के अंदर की पाश्विक प्रकृति का नाश होता है। मनुष्य हिंसा से दूर होता है। यहाँ की उदार मानवता सरल जीवन, धार्मिक साहिष्णुता, समावेशी चरित्र मूल्यवादी दृष्टि और मानवीय संबधों की सजलता आदि संतवाणी की विशेषता यही है कि सर्वत्र मानवतावाद का समर्थन करती है। कबीर जिस उच्चकोटि की मानवता की ओर संकेत करते है उसे प्राप्त करने में शिक्षा मददगार हो सकती है। कबीर के लिए शिक्षा का अर्थ उच्चकोटी की मनुष्यता है। कबीर की मूल्यवादी शिक्षा परिकल्पना और आज की सूचनात्मक शिक्षा की बुनियादी मान्यता है। भविष्य में मानव जीवन के विरोधी तत्वों के खिलाफ एक प्रतिबल के रूप में खड़ा कर पायेगे। यह हमें गंभीरता से सोचना होगा और प्रयास करना होगा। यह आज की स्थितियों में असंभव का संभव करना है।

सन्दर्भ सूची :–

1. हरि, संत सुधा सार पृ. 530।
2. कबीर दर्शन।
3. डॉ. प्रणय शर्मा, प्रचीन एवं मध्यकालीन काव्य पृ. 226।
4. http://ignca.nic.in/coilnet/labir012.him
5. https://hi.wikipedia.org/wiki

भारतीय दर्शन में संत साहित्य का प्रभाव : बौद्ध दर्शन के परिपेक्ष्य में

रेश्मी महिश्वर,
शोधार्थी
पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर, छत्तीसगढ़

डॉ. हंसा शुक्ला,
प्राचार्य
स्वामी श्री स्वरुपानंद सरस्वती महाविद्यालय,
आमदीनगर हुड़को, भिलाई, छत्तीसगढ

शोध सारांश :–

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय दर्शन में संत साहित्य का प्रभाव (बौद्ध दर्शन के परिपेक्ष्य में) का वर्णन किया गया है जिसमें मुख्यतः संत साहित्य का बौध्द दर्शन पर पडने वाले प्रभावो का अध्ययन किया गया है। बौद्ध दर्शन स्वयं एवं दूसरो के हित को ध्यान में रखता है। विशेष रूप से इसमें दूसरो को नुकसान न पहुँचे इस बात का ध्यान रखते हुए दया दृष्टि, ईमानदारी, उदारता एवं धैर्य जैसे नैतिक मूल्यों को महत्व देने के साथ उन्हें विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। यह शोध पत्र शोधार्थियों के लिए जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही साहित्यिक विषय में रुचि रखने वाले विद्वान के लिए भी।

महात्मा बुध्द का जन्म 563 ई.पू. में हुआ। 29 वर्ष की आयु में बुध्द भारत के दर्शन अर्थात् सत्य और ज्ञान की खोज में निकले तो उन्होने पाया कि "सब नश्वर है" जो जन्म लेता है उनकी मृत्यु भी निश्चित् है। भारत में भ्रमण पर उन्होने देखा कि हिंदु धर्म में वर्ण व्यवस्था फैली हुई है। जिसमें समानता लाकर और अंधविश्वास के प्रति ज्ञान उर्त्सजित कर ही दुर किया जा सकता है। परंपराओं से भरे इस भारतवर्ष में अनेक प्रकार की प्रथाएं प्रचलित है। जिनका ज्ञान गौतम बुध्द ने प्राप्त किय, प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से गौतम बुध्द के विचारों में भारतीय दर्शन से होने वाले प्रभावों एवं परिर्वतनों का विवरण किया गया है। बुद्ध की शिक्षा–दीक्षा : वैसे तो सिद्धार्थ ने कई विद्वानों को अपना गुरु बनाया किंतु गुरु विश्वामित्र के पास उन्होंने वेद और उपनिषद् पढ़े, साथ ही राजकाज और युद्ध–विद्या की भी शिक्षा ली। कुश्ती, घुड़दौड़, तीर–कमान, रथ हाँकने में कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता था। उपनिषद् काल में कहा गया है, कि ''दृश्येत ही अनेन इति दर्शनम'' डॉक्टर सर्वपल्ली राधकृष्णन के अनुसार इन शब्दों का तात्पर्य है 'दर्शन वास्तविकता के स्वरूप का तार्किक विवेचन। भारतीय दर्शन के परिपेक्ष्य पर यह भारत ने मौजुद स्थिति का ज्ञान का अध्ययन दर्शाता है।

मुख्य शब्द :–

वेद, दीक्षा, दर्शन, विद्या, बौद्व दर्शन।

शोध पत्र :–

भारतीय दर्शन में संत साहित्य का प्रभाव (बौद्ध दर्शन के परिपेक्ष्य में) :–

बौद्ध धर्म विश्व का तीसरा बड़ा धर्म है. इसके स्थांपक महात्मा गौतम बुद्ध थे। जिन्हें एशिया के ज्योति पुंज नाम से भी जाना जाता है। बौद्ध दर्शन वह दर्शन है जो गौतम बुद्ध के निर्वाण पश्चात् बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा विकसित किया गया तथा बाद में पूरे एशिया में उसका प्रचार–प्रसार हुआ। दुखो से मुक्ति पाना बौद्ध धर्म मुख्य ध्येय रहा है। इसके साधन कर्म, ध्यान एवं प्रज्ञा। तीन पिटकों में बुद्ध के उपदेशों का संकलन हैं। जो सुत्त पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक कहलाते हैं। अविद्या, तृष्णा आदि में दुःख का कारण खोजकर उन्होंने इनके उच्छेद को निर्वाण का मार्ग बताया।

शाक्य वंश में जन्मे सिद्धार्थ का सोलह वर्ष की उम्र में दंडपाणि शाक्य की कन्या यशोधरा के साथ विवाह हुआ। यशोधरा से उनको एक पुत्र मिला जिसका नाम राहुल रखा गया। बाद में यशोधरा और राहुल दोनों बुद्ध के भिक्षु हो गए थे। बुद्ध के जन्म के बाद एक भविष्यवक्ता ने राजा शुद्धोदन से कहा था कि यह बालक चक्रवर्ती सम्राट बनेगा, लेकिन यदि वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया तो इसे बुद्ध होने से कोई नहीं रोक सकता और इसकी ख्याति समूचे संसार में अनंतकाल तक कायम रहेगी। मन में वैराग्य भाव तो था ही, इसके अलावा क्षत्रिय शाक्य संघ से वैचारिक मतभेद के चलते संघ ने उनके समक्ष दो प्रस्ताव रखे थे। वह यह कि फाँसी चाहते हो या कि देश छोड़कर जाना। सिद्धार्थ ने कहा कि जो आप दंड देना चाहें। शाक्यों के सेनापति ने सोचा कि दोनों ही स्थिति में कौशल नरेश को सिद्धार्थ से हुए विवाद का पता चल जाएगा और हमें दंड भुगतना होगा तब सिद्धार्थ ने कहा कि आप निश्चिंत रहें, मैं संन्यास लेकिन चुपचाप ही देष से दूर चला जाऊंगा। आपकी इच्छा भी पूरी होगी और मेरी भी। जंगल–जंगल और नगर–नगर सिद्धार्थ भिक्षाटन करते और जब जो साधु या सिद्ध मिल जाता उससे योग साधना या ध्यान विधियां सीखकर कठोर तप करते। तप के दौरान वे एक वक्त सिर्फ तिल और चावल ही ग्रहण करते। फिर उन्होंने कठिन उपवास भी किए लेकिन फिर भी उससे उन्हें कोई शांति नहीं मिली। लेकिन एक दिन वे ध्यान में बैठे थे तभी कुछ स्त्रियां वहां से गाती हुई नगर की और लौट रही थीं। सिद्धार्थ ने उनका गीत सुना– 'वीणा

के तार को ढीला मत छोड़ो। ढीला छोड़ देने से उनका सुरीला स्वर नहीं निकलेगा। पर तारों को इतना कसो भी मत कि वे टूट जाएं।' सिद्धार्थ को यह बात जंच गई और यह समझ में आ गया कि किसी भी प्राप्ति के लिए मध्यम मार्ग ही श्रेष्ठ होता है।

बुद्ध के अनुयायी दो भागों मे विभाजित है– भिक्षुक एवं प्रविष्ठ भिक्षुक बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु जो सन्यास लेते है तथा प्रविष्ठ बौद्ध धर्म के त्रिरत्न हैं– 1.बुद्ध 2. धम्म 3.संघ।

बौद्ध धर्म भारत की श्रमण परम्परा से उपजा धर्म व दर्शन, नियमों का संग्रह है जो हमें यथार्थ के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर पूर्ण मानवीय क्षमताओं को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। बौद्ध दर्शन में परंस्पर निर्भरता, सापेक्षता तथा कार्य–कारण सबंध जैसे विषयों पर चर्चा की जाती है। तर्क–वितर्क पर आधारित तर्कशास्त्र की एक विस्तृत व्यवस्था है जो व्यक्ति की दोषरहित कल्पनाओं को समझने हेतु सहायता करती है।

बौद्ध धर्म में विशेष रूप से कर्म, पुनर्जन्म की प्रक्रिया व मुक्ति, एवं ज्ञानोदय प्राप्ति जैसे विषयों की चर्चा की जाती है। जिसमें जाप, ध्यान साधना व प्रार्थना जैसे प्रयास शामिल होते है। व्यक्ति ईश्वर को माने या ना माने, कर्म के प्रति विश्वास रखते हो, नैतिक नीतिशास्त्र का अनुशीलन कर सकते है।

बौद्ध धर्म की प्रत्येक परम्परा के अपने भिन्न–भिन्न ग्रंथ हैं जो बुद्ध द्वारा दी गई मूल शिक्षा पर आधारित हैं। बौद्ध दर्शन तीन मूल सिद्धांत पर आधारित माना गया है–

1. **अनात्मवाद :** अनात्मवाद का यह मतलब नहीं कि सच में ही 'आत्मा' नहीं है। जिसे लोग आत्मा समझते हैं, वो चेतना का अविच्छिन्न प्रवाह है। यह प्रवाह कभी भी बिखरकर जड़ से बद्ध हो सकता है और कभी भी अंधकार में लीन हो सकता है।
2. **अनिश्वरवाद :** बुद्ध ईश्वर की सत्ता नहीं मानते क्योंकि दुनिया प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम पर चलती है। प्रतीत्यसमुत्पाद अर्थात कारण–कार्य की श्रृंखला। इस श्रृंखला के कई चक्र हैं जिन्हें बारह अंगों में बाँटा गया है। अतः इस ब्रह्मांड को कोई चलाने वाला नहीं है। न ही कोई उत्पत्तिकर्ता, क्योंकि उत्पत्ति कहने से अंत का भान होता है। तब न कोई प्रारंभ है और न अंत।

स्वयं के होने को जाने बगैर आत्मवान नहीं हुआ जा सकता। निर्वाण की अवस्था में ही स्वयं को जाना जा सकता है। मरने के बाद आत्मा महा सुसुप्ति में खो जाती है। वह अनंतकाल तक अंधकार में पड़ी रह सकती है या तक्षण ही दूसरा जन्म लेकर संसार के चक्र में फिर से शामिल हो सकती है। अतः आत्मा तब तक आत्मा नहीं जब तक कि बुद्धत्व घटित न हो। अतः जो जानकार हैं वे ही स्वयं के होने को पुख्ता करने के प्रति चिंतित हैं।

3. **क्षणिकवाद :** इस ब्रह्मांड में सब कुछ क्षणिक और नश्वर है। कुछ भी स्थायी नहीं। सब कुछ परिवर्तनशील है। यह शरीर और ब्रह्मांड उसी तरह है जैसे कि घोड़े, पहिए और पालकी के संगठित रूप को रथ कहते हैं और इन्हें अलग करने से रथ का अस्तित्व नहीं माना जा सकता।

वर्तमान समय में हम असंतुष्ट है और दर्शन अर्थात् खोज करने के राह पर नही जाना चाहते यदि कोई व्यक्ति केवल असंतुष्ट होकर श्रेष्ट की खोज में निकले तो उसे दर्शन नही अपितु दार्शनिक गवेषणा ही कहा जा सकता है। भारतीय दर्शन पर कई महापुरूषों व संतो के द्वारा मनुष्य और जगत के संबंध का ज्ञान प्रस्तुत किया गया। यह ज्ञान सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व शिक्षा को जानने के रूप में हो सकता है। यदि दर्शन का सबसे आर्दश काल कहा जाए तो उत्तरपाषाण काल का वर्णन सर्वोत्तम होगा। पौराणिक काल में दो दर्शन होते थे–

प्रथम– आस्तिक दर्शन अर्थात् वैदिक दर्शन,

द्वितीय– नास्तिक दर्शन

आस्तिक दर्शन में मुख्यतः न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा, वैशेषिक आते है। नास्तिक दर्शन में बौध्द, जैन, चार्वाक दर्शन आते हैं। इस शोध पत्र में बौध्द दर्शन (नास्तिक दर्शन) का विवरण किया गया है, हम समझते है कि नास्तिक धर्म ईश्वर और परंपराओं संस्कृति को नही मानता। परंतु सत्य यह है कि नास्तिक का अर्थ वेदों को ना मानने से है।

यदि गौतम बुध्द के दर्शन को देखा जाए तो उन्होने पाया कि परंपराओं के नाम पर भारतवर्ष ने अंधविश्वास ने जन्म ले लिया है। अंधविश्वास के दलदल में मनुष्य सदियों से फसा हुआ है और मनुष्य इससे बाहर निकलने का प्रयास करने के स्थान पर डूबता ही जा रहा है। बौध्द दर्शन के मूल चार तत्व रहे है। जीवन में पवित्रता बनाए रखना, तृष्णा का त्याग करना। परंपराओं और अंधविश्वासों से हटकर बुध्द ने कर्म को प्रधानता दी। सत्य और अहिंसा का मार्ग दिखाने वाले गौतम बुध्द ने आध्यात्मिक विभुतियों के मार्ग को अपनाने तथा लोगों को जागरूक करने का प्रयास किया।

बौद्ध दर्शन में सृष्टि का व्याख्या कारणवाद के आधार पर कि गई है जिसमे विवेक आश्रित तर्क की प्रधानता थी। पूर्व के वैदिक समाज का प्रमुख आधार दैवीय हस्तछेप था जबकि बौद्ध दर्शन में इस व्यवस्था को कोई स्थान नहीं दिया गया था। बौद्ध दर्शन मूलतः अनीश्वरवाद पर आधारित है जिसमे श्रृष्टि का कारण ईश्वर को नहीं माना गया। क्योकि यदि ईश्वर को सृष्टि का सृजनकर्ता मान लिया जाय तो उसे दुःख उत्पन्न करने वाला भी मानना पड़ेगा। आत्मा की कल्पना को नकारते हुए बौद्ध धर्म में कहा गया है कि आत्मा चिरस्थायी नहीं है जो इस जन्म के कर्मफल को लेकर आने वाले जन्म में प्रवेश करती है। लेकिन अनात्मवाद को स्वीकार करने के बावजूद कर्मफल और पुनर्जन्म को मान्यता प्रदान की गयी है। जीवन मरण का जो चक्र चलता है वह मृत्यु के बाद समाप्त नहीं होता वरन् मृत्यु तो केवल नये जीवन के प्रांरम्भ का कारण मात्र है। इस जन्म मरण के चक्र से मुक्ति या निर्वाण की प्राप्ति एकमात्र आष्टांगिक मार्ग के अनुशीलन से संभव है। बुद्ध कहते हैं कि तुम हो तो संसार है, जन्म मृत्यु, सुख, दुःख एवं बंधन है, तुम मिट जावोगे तो सब कुछ मिट जायेगा।

संदर्भ सूची :–

1. चक्रवर्ती, उमा – प्रारंभिक बौद्ध धर्म का सामाजिक आयाम, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, दिल्ली, 1987।
2. चक्रवर्ती, उमा – एवरीडे लाइव्स, एवरीडे हिस्टरीजः बियॉन्ड द किंग्स एंड।
3. प्राचीन भारत के ब्राह्मण, तुलिका बुक्स, नई दिल्ली, 2006।
4. कोमारस्वामी, ए.के. – हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म, न्यूयॉर्क, दार्शनिक पुस्तकालय, 1943।
5. डेविड कलुपन, कार्य–कारणः बौद्ध धर्म का केंद्रीय दर्शन। हवाई का विश्वविद्यालय प्रेस, 1975, पी. 70।
6. साइडरिट्स, मार्क। दर्शन के रूप में बौद्ध धर्म, 2007, पृष्ठ 6।

प्रेरक कथा

एक दिन कबीर गंगा के घाट पर गये हुये थे। उन्होंने एक ब्राम्हण को किनारे पर हाथ से अपने शरीर पर पानी डालकर स्नान करते हुये देखा तो अपने पीतल का लोटा देते हुये बोले लीजिए आप इससे स्नान कीजिए इससे आपको सुविधा होगी। ब्राम्हण ने गुस्से से उत्तर दिया रहने दो इसे ब्राम्हण, जुलाहे के लोटे से स्नान करेगा तो धर्म भ्रष्ट हो जाऐगा। संत कबीर ने शांत मन से हॅसते हुये उत्तर दिया लोटा तो पीतल का है, जुलाहे का नहीं। रही बात भ्रष्ट और अपवित्र होने की तो मिट्टी से साफ कर गंगा के पानी से इसे कई बार धोया गया है और यदि यह अभी भी अपवित्र है, तो मेरे भाई दुर्भावना जाति–पॉति के भेदभाव से भरा मन क्या गंगा नहाने से पवित्र हो जाऐगा।

संकलित

भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव

श्रीमती मंजू साहू,
सहायक प्राध्यापक, शिक्षा संकाय
एम. जे. महाविद्यालय भिलाई, दुर्ग (छ.ग.)

डॉ. के. नागमणी,
सहायक प्राध्यापक, शिक्षा संकाय,
कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाई नगर (छ.ग.)

भारतीय दर्शन का प्रारंभ 1500 ई. पू. से है जबकि पाश्चात्य् दर्शन का प्रारंभ काल 600 ई.पू. है। वास्तविकता यह है कि भारतीय दर्शन का संत साहित्य का प्रभाव हजारों वर्ष ई.पू. है परन्तु यह सत्य है कि भारत ही दर्शन की जन्म भूमि है दर्शन जैसे विषय का विकास सर्व प्रथम भारत देश में ही हुआ है। अतः संत साहित्य के क्षेत्र में जो भी एतिहासिक सत्य उपलब्ध है उसका आधार भारतीय दर्शन है।

संत साहित्य का अर्थ है – वह धार्मिक साहित्य जो सगुन एवं निर्गुण भक्तों द्वारा रचा जाए। संत से अभिप्राय उस व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह से है जिसने सत्य रूप परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है और शुद्ध जीवन जीते हुए निःस्वार्थभाव से लोक कल्याण में रत है। संत, सज्जन और धार्मिक व्यक्ति जैसे कबीर, सुरदास, गोस्वामी तुलसीदास आदि। संत साहित्य के इतिहास में निर्गुण भक्ति के ज्ञानमार्गी भक्तों को संत कवि कहा गया है। संत साहित्य भाव प्रधान होता है एवं ज्ञान के महत्व का प्रतिपादन करता है।

भारतीय विद्वानों ने भारतीय दर्शन को दो भागों में विभाजित किया है– आस्तिक और नास्तिक। यूँ तो आस्तिक के अर्थ है – ईश्वर में विश्वास करने वाला और नास्तिक के अर्थ है – ईश्वर को न मानने वाला, परन्तु भारतीय दर्शन के संदर्भ में आस्तिक का अर्थ है – वेद की प्रामाणिकता को स्वीकार करने वाला और नास्तिक का अर्थ है –वेद की प्रामाणिकता को न मानने वाला। वेद की प्रामाणिकता को मानने का कारण न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत आस्तिक दर्शन माने जाते हैं।

भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव साहित्य के तीन कालों–वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल और दर्शन काल में भारतीय दर्शन का प्रभाव देखने को मिलता है। वेद भारतीय दर्शन के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। वेद मूल रूप से ज्ञान प्रधान है, इसी ज्ञान के भंडार के परिणाम स्वरूप ही वेदों की रचना प्रारंभ हुई। वेद चार है– ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

भारतीय दर्शन के संत साहित्य में वेदांत दर्शन बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वेदांत दर्शन हमें भारतीय दर्शन, परंपरा, साहित्य एवं संस्कार का ज्ञान कराता है। वेदांत दर्शन विश्व साहित्य की अति प्राचीनतम् रचना है इसीलिए वेदांत दर्शन को भारतीय दर्शन की अमूल्य निधि कहते है। भारतीय दर्शन की शाखाएँ संत साहित्य के तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, मूल्यमीमांसा, तर्कमीमांसा दर्शन पर अपना अमीट प्रभाव छोडती है, इस प्रकार भारतीय दर्शन तत्वमीमांसा के क्षेत्र में वेद, ब्राम्हण, और उपनिषदों के अनुगामी है इस प्रकार से भारतीय दर्शन न तो पूर्ण रूप से वेद मूलक है और न वेद बाह्य, सच बात तो यह है कि भारतीय दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव स्पष्ट रूप से पडता है।

भारतीय दर्शन का प्रारंभ जिज्ञासा से हुआ है। मनुष्य जब संसार के आदि और अंत के विषय में अथवा सत्ता का मूल्य के विषय मे जानने की इच्छा करता है, जिससे दर्शन का विकास होता है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए अरस्तु ने कहा है कि दर्शन वह विज्ञान है जो परम तत्व के यथार्थ स्वरूप की जांच करता है। हमारा भारतीय दर्शन साहित्य के प्रभावों से ओत–प्रोत रहा है। भारतीय दर्शन साहित्य का निरंतर अन्वेषण करता रहता है। भारतीय दर्शन परमतत्व का विशलेषण करता है। भारतीय दर्शन केवल अलौकिक अनुभवों और परमतत्व के विश्लेषण का ही प्रयास नही करता है वरन् विज्ञान की समीक्षा भी करता है। दर्शन ज्ञान की गहराईयों तक पहुँचना चाहता है। दर्शन कुछ विशिष्ट समस्याओं को हल करने की दार्शनिक प्रक्रिया है।

भारतीय दर्शन में संत साहित्य का अध्ययन एक विशिष्ट कार्य रहा है। कारण यह है कि भारतीय दर्शन की धारा सुदूर वैदिक काल से प्रवाहित चली आई है। यूरोप आदि पाश्चात्य् देशों में दर्शन शास्त्र विद्वानो और पंडितों के ज्ञान का साधन था। दर्शन तथा धर्म का, तत्वज्ञान तथा भारतीय धर्म का गहरा संबंध है। भारत के प्रमुख दर्शन शास्त्र न्याय वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, मीमांसा दर्शन, वेदांत दर्शन, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन एवं भारतीय आध्यात्मिक क्षेत्र में आचार्य शंकर का दर्शन–शास्त्र, अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्य है।

भारतीय दार्शनिक विचारों एवं मान्यताओं का संत–साहित्यकारों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। संत साहित्य की दार्शनिक विचारधारा का स्वरूप उपनिषदों, सिद्धों, नाथों और सूफियों की चिंतनशील अनुभूतियों से प्राप्त हुआ है। यह अनुभूति स्वार्जित है इस प्रकार अनेक युगों, अनेक साधकों की अनुभूतियों और अनेक दार्शनिक विचार धाराओं का सामंजस्य ही संत–दर्शन की आधारशीला है इसलिए संत–दर्शन भारत की आत्मा है। जिस प्रकार दर्शन मनुष्य की मूल उत्पत्ति और

उसकी ज्ञान विचार, जीवन, कला और धर्म की समस्याओं की चिंतन अस्तित्व के बीच मूलभूत संबंधों की व्याख्या करता है, उसी प्रकार संत–साहित्य दर्शन भी ब्रम्हा, जीव, माया, मोक्ष, ज्ञान, प्रकृति और जगत पर आधारित है। संत कवियों ने ज्ञान को ब्रम्ह ज्ञान की प्रमुखता दी है। इस ब्रम्ह ज्ञान की प्राप्ति के लिए सत्यव्रत का पालन करना प्रत्येक साधक का लक्ष्य रहा है।

भारतीय दर्शन का संत साहित्य के दार्शनिकों पर व्यापक प्रभाव पडता है। संत साहित्य के दार्शनिक सिद्धांतों में प्रमुख हैं – सत्य वचन एवं पालन। संतों ने सत्य को पहचानने के लिए किसी भी धर्म–ग्रंथ की सहायता नही ली है। संतों का कथन है कि सत्य को प्राप्त करने के लिए साधक धर्मग्रंथों के जाल में न उलझ कर स्वानुभूति के बल पर विचार करे तो उसका अनुभव सच्चा एवं स्थाई होगा। जिससे की ब्रम्हानंद की प्राप्ति होगी । संत कबीर इस आध्यात्मिक अनुभूति का रहस्य अच्छी तरह जानते थे। इसके संबंध में प्रताप सिंह चौहान का कथन है –संत साहित्य ने अपने काव्य में अनुभूति का वर्णन किया है। संत साहित्यों का मन कभी लौकिक प्रसंगों में अधिक नही रमा। उन्होने ब्रम्ह के निराकार और निरंजन रूप का साक्षात्कार किया था जिसमें सांसारिक अनुभूति का प्रमाण नही मिलता हैं। संत कवियो ने सत्य को पूर्णरूप से स्वीकार करने को कहा है। कबीर कहते है कि एक ही पवन, एक ही पानी और एक ही ज्योति संसार मे है।

भारतीय दर्शन का इतिहास अत्यंत समृद्ध रहा है। यही कारण है कि गुरूकुल, आचार्य और वेदों के ज्ञाता को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त है इसलिए प्राचीन समय में भारतीय गुरूकुल में प्रवेश पाकर एवं आचार्यों से शिक्षा प्राप्त कर सभी अपने को गौरवान्वित अनुभव करते थे। वर्तमान समय के आधुनिक शिक्षा में काफी बदलाव आया है कि विज्ञान के समक्ष जीवन दर्शन को उपेक्षित किए है। आवश्यकता है हम पुनः एक बार अपने ग्रंथों की ओर जाए, जिसके लिए देश को अति आवश्यकता है। मेरा यह अनुमान है कि रामचरित मानस एवं श्रीमद् भगवत गीता स्वयं अपने आप मे एक विद्यालय है जिसमे व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके एक सफल साधक बन सकता है।

भारतीय दर्शन शास्त्र की प्रमुख शाखाएँ ज्ञानमीमांसा, दर्शन शास्त्र की ऐसी मूलभूत शाखा है जिसके अंतर्गत ज्ञान का स्वरूप तथा सीमांए निर्धारित की जाती है जो कि एक दार्शनिक के लिए सत्य, असत्य एवं प्रमाण का दार्शनिक विवेचना करता है। संत साहित्य में असीम आकाश की व्यापकता और अगाध सागर की गहराई विद्यमान है। वैदिक साहित्य का अर्थ है 'जानना' । सामान्तया इसका आशय 'ज्ञान' से हैं। वेद चार प्रकार के है। – ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, यथर्ववेद, वेदांत दर्शन को वेदांत इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये वेदों के अंतिम भाग है जिसमें वैदिक शिक्षाओं का सार निहित है। वेदों का 'अंतिम लक्ष्य' ब्रम्हा ज्ञान है जिसकी पूर्ति उपनिषदों द्वारा की गई है। उपनिषदों में भारतीय दर्शन की सुंदर व्याख्या की गई है। उपनिषदों के संबंध में डॉ. राधाकृष्णन मुखर्जी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि ''इस प्रकार उपनिषदों का कर्मकाण्डों में विश्वास नही है वरण उनका ज्ञान प्राप्ति में विश्वास है जिसके द्वारा जिवात्मा का विश्वात्मा में विलयन करके भौतिक अस्तित्व में मुक्ति मिल सकती है ''।

संत साहित्यों की दार्शनिक विचारधारा भारतीय दर्शन का प्रतिबिंम्ब है। भारतीय दर्शन शास्त्र एक ऐसा ज्ञान है जिसका प्रभाव साहित्य पर अत्यंत पुराना है। यह पीढी दर पीढी अर्जित दर्शन है जिसके कारण भिन्न–भिन्न दार्शनिकों ने समय–समय पर अपने परिस्थितियों के अनुसार भिन्न–भिन्न अपने जीवन दर्शन को अपनाया। वैसे तो समस्त दर्शन की उत्पत्ति वेदों से हुई है, फिर भी समस्त भारतीय दर्शन को आस्तिक एवं नास्तिक दो भागों में बांटा गया है। भारतीय दर्शन की शाखाएँ जैसे न्याय, वैशेषिक, सांख्य , योग, मीमांसा और वेदांत पर विश्वास करता है उसे आस्तिक माना जाता है, जो नही करता वह नास्तिक है।

प्राचीन काल से ही शिक्षा के क्षेत्र मे भारतीय दर्शन का साहित्य पर अमिट छाप पडता है। भारतीय दर्शन से हमे साहित्य के सत्य और मूल्यों का पता लगाते है। भारतीय दर्शन साहित्य का विवरण है जिसमे आदर्शवाद, प्रकर्षतिवाद, यथार्थवाद, प्रयोजनवाद का भारतीय दर्शन एवं साहित्य पर व्यापक प्रभाव पडा है। भारतीय दर्शन प्रमुख विचारकों जैसे विवेकानंद, श्री अरविंद, महात्मा गांधी, रविन्द्रनाथ और स्वामी दयानंद के शिक्षा दर्शन का विवेचना करता है। भारतीय दार्शनिकों द्वारा भारत के संत साहित्य का विकास संभव है। समकालीन भारतीय दर्शन से नव्य–वेदांत दर्शन का विकास हुआ है।

उपसंहार :–

भारतीय दर्शन संत–साहित्य का दर्शन संत कवि तो भारतीयों के प्रतिनिधि कवि थे। संतों की विचारधाराएँ आशा–निराशा और सुख–दुख का पावन संगीत है। संत साहित्य जीवन की क्षणभंगुरता, विषय सुख त्याग, आत्मा परमात्मा का संपूर्ण मिलन जैसे तत्वों से ओत–प्रोत है। भारतीय दर्शनो के दार्शनिक बहुत प्रसिद्ध है यही दर्शन का महत्व है। सभी

दर्शन शास्त्रों मे नैतिक संयम और सदाचार को प्रमुखता दी गई हैं वास्तव में भारतीय दर्शन साहित्य का विस्तृत एवं गहन अघ्ययन है।

संदर्भ सूची :–

1. चौरसिया, केशनी प्रसाद . मध्यकालीन संत विचार और साधना, पृ. 79।
2. दामोदरन के. . भारतीय चिंतन परंपरा, पृ. 83।
3. सिंह, प्रताप. कबीर साधना और साहित्य, पृ. 360।
4. सहायक, रामजीलाल . कबीर दर्शन, पृ. 113।
5. शर्मा, योगेन्द्र कुमार एवं शर्मा मधुलिका. शिक्षा के दार्शनिक आधार पृ. 1, 2।
6. शर्मा, ओमदत्त . ज्ञान मीमांसा एवं तत्व मीमांसा।
7. पाण्डेय, रामशकल पाण्डेय . शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठ भूमि पृः 3, 4, 5।
8. शर्मा, रामनाथ एवं शर्मा , राजेन्द्र कुमार पृ. 33, 34, 35।

प्रेरक कथा

दो पड़ोसी राजा, महाराज विदूरथ एवं सिंधुराज सत्यनिष्ठ व माता भगवती के आराधक थे। एक दिन दोनों में इस विषय पर बहस छिड़ गई कि दुनिया में सबसे शक्तिशाली कौन हैं? कुछ निर्णय न होता देख दोनों ऋषि सुक्षीण के पास पहुॅचे। ऋषि ने दोनों का सत्कार किया और उनकी जिज्ञासा सुनी। उनकी जिज्ञासा सुनकर वे मुस्कराए और बोले – "राजन्! दुनिया में सबसे शक्तिशाली और सबसे कमजोर मन ही है, जिसका अपने मन पर संपूर्ण अधिकार हो जाता है, उसके आगे शक्ति सामर्थ्य के सारे मार्ग खुल जाते है और जो अपने मन को ही काबू में नहीं कर पाता, वो दीन–दुर्बल और असहाय ही बना रहता हैं।"

संकलित

हिंदी संत साहित्य का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य : कबीर के काव्य के संदर्भ में

कु. प्रियंका यादव, सहायक प्रध्यापक
शासकीय मॉडल कॉलेज, दूर्ग (छ.ग.)

हिंदी संत साहित्य पर अनेक विचारधाराओं का प्रभाव है– नाथमत, शंकराचार्य का अद्वैतवाद, एकेश्वरवाद आदि। इन सभी मतों की अपनी–अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि है। जिसका प्रभाव कबीरदास के आध्यात्मिक– दार्शनिक चिंतन पर दिखाई देता है। यूँ तो कबीर किसी भी दर्शन से बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुए हैं। उन्हें जहाँ भी कोई बात ऐसी मिली जो उनकी ज्ञान पिपासा को शांत कर सके उसे तत्क्षण ग्रहण कर लिया।

भारतीय आध्यात्मिक चिंतन में मोक्ष को जीवन का लक्ष्य माना जाता है। ईश्वरी आराधना करते हुए परमतत्व की प्राप्ति करना ही सर्वोच्च लक्ष्य है। इसी परमतत्व (ब्रह्म) की प्राप्ति के लिए कबीर न जाने कहाँ–कहाँ भटकते रहे, कभी योगियों तथा साधुओं का सत्संग सुना तो कभी अहंकारी ब्राह्मण के पास गए तो कभी मुसलमानी शेख तकी के पास, परंतु ये सभी उनकी ज्ञान पिपासा शांत करने में असमर्थ रहे। ये सभी कबीर की प्यास बुझाने के लिए पानी की कुछ बूंदें ही दे पाये। जब कबीर रामानंद के पास गए तब परमतत्व को प्राप्त करने की तड़प शांत हुई।

कबीर का काव्य : परिचय :–

निर्गुण संतों की काव्य रचना पर सिद्धों तथा नाथों के साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यद्यपि संत कवियों का उद्देश्य काव्य रचना करना नहीं था बल्कि अपने अनुभव को जन–जन तक पहुँचाना उनकी कविता का उद्देश्य था।

संत काव्य का वर्गीकरण दो दृष्टियों से संभावित है– एक तो शुद्ध दार्शनिक दृष्टि से और दूसरे, संत द्वारा ग्रहित साधनाप्रणाली की दृष्टि से। दार्शनिक विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में निर्गुण तत्व को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– कबीर, दादू, मलूकदास आदि पूर्णतया अद्वैतवादी हैं, जबकी नानक भेदाभेदवादी हैं। कबीर तथा उनकी परंपरा में उल्लेखित अद्वैतवादियों के अनुसार परमात्मा तथा जीवात्मा पूर्णरूपेण एक हैं।[1]

कबीर मुख्यतः भक्त थे, कवि नहीं। इसी संबंध में आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं– ''कबीर ने कभी काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं कि तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है।''[2] आध्यात्मिक ज्ञान की अनुभूति के पश्चात् जिस परमतत्व का साक्षात्कार कबीर ने किया उस अनुभव को उन्होंने अपने उपदेशों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। हम इस बात से अवगत हैं कि कबीर को अक्षर ज्ञान नहीं था। उनके उपदेशों को उनके शिश्यों ने लिपिबद्ध किया। कबीर स्वयं अपने निरक्षर होने के संबंध में कहते हैं।

''मसि कागद छूये नहीं, कलम गही नहीं हाथ।
चारिक जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात।।''[3]

कबीर को न तो अक्षर ज्ञान था न ही शास्त्रीय परंपरा का। काव्य–विशयक मान्यता उन्हें काव्यशास्त्रीय परंपरा से पृथक कर देती है। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस पर गहन अध्ययन किया और वस्तुस्थिति की गहराई घोषित करते हुए लिखा है– ''कभी–कभी हास्यास्पद भाव से कबीरदास को शास्त्रज्ञानहीन, सुनी–सुनायी बातों को गढ़ने वाला आदि कह दिया जाता है। मानो उस युग में जुलाहे, मोची, धुनिये और अन्यान्य नीची कही जीने वाली जातियों के लिए शास्त्र और वेद का दरवाजा खुला था और कबीरदास आदि ने उसकी अवहेलना की थी।''[4] कवियों को लक्ष्य कर स्वयं कबीर कहते हैं कि ''जिनको हम (साधारणतः) 'कवि' कह दिया करते हैं वे भी उसी प्रकार मर जाया करते हैं, जिस प्रकार कोई कापड़ी साधु व्यर्थ की केदारयात्रा करके मर जाया करता है अथवा व्रती कहलाने वाले जैन मुनि लुंचन–क्रिया द्वारा अपने बाल नोच–नोच कर मर जाया करते हैं। इनमें से किसी को भी वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता।''[5]

''कविकवीनैं कविता मूए, कापड़ी केदारौ जाइ।
केस लूंचि–लूंचि मुए, वरतिया इनमें किनहु न पाइ।।''

संत कवियों में कबीर सबसे प्रतिभाशाली एवं मौलिक कवि थे। अपनी रचनाओं के बारे में कहते हैं–''तुम्ह जिनि जानौ गीत हैं, यहु निज ब्रह्म विचार।''[6]

कबीर के काव्य में जीवनानुभव को देखा जा सकता है। वे कहते भी हैं– ''मैं कहता आंखिन देखी, तु कहता कागद की लेखी।'' उनके इन अनुभव को साखी, शबद, रमैनी में देख सकते हैं। इनकी रचनाओं का संक्षेप में विवरण इस प्रकार है :–

साखी :– साखी का अर्थ साक्षी अथवा गुरू के उपदेशों का प्रत्यक्ष रूप है। कबीर ने 'साखी' शब्द का प्रयोग प्रत्यक्ष अनुभव अथवा आँखों देखी हुई बात के लिए किया है। उनके शब्दों में– 'कहन, सुनन की है, नहीं देखा देखी बात।' कबीर अपनी साखियों के संबंध में इतने आश्वस्त थे कि उसे 'ज्ञान की आँख' कहने में भी संकोच नहीं करते।

''साखी आंखी ज्ञान की समुझ देखी मनमांही।''[7]

कबीर की साखियों के विषय में कहा गया है कि– ''भावना और शब्द–साखी में कबीर से लेकर राधास्वामी तक सभी संत चौरासी सिद्धों के ही वंशज कहे जा सकते हैं।''[8] कबीर की साखियों को उनके विषयों के आधार पर विभिन्न अंगों में विभक्त किया गया है–गुरूदैव कौ अंग, सुमिरण कौ अंग, विरह कौ अंग आदि। कुछ उदा. यूँ हैं–

गुरूदैव कौ अंग–

''सतगुरू की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उधाड़िया, अनंत दिखावण हार।।''[9]

सुमिरण कौ अंग–

''तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तिंत तु।।''[10]

शबदी–कबीरदास के गेय पदों को सबदी, शबदी या वाणी कहा गया है। इन पदों को विभिन्न राग–रागियों के आधार पर विभाजित किया गया है। इन पदों के आरंभ में एक टेक होती है और दो चरणों के बाद टेक की आवृत्ति का विधान है।[11]

उदा.– दुलहनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आये हो राजा राम भरतार।।
तन रत करि मैं मन रत करि हूं, पंचतत बराती।
रामदेव मोरै पांहुनै आये, मैं जोबन मैं माती।।''[12]

रमैनी :–

'रमैनी' शब्द काव्युत्पति के संबंध में मतभेद है। 'कबीर साहब का बीजक' में 'रमैनी' को रामणी शब्द से उत्पन्न माना गया है। रामणी को ''जीवात्म की सांसरणादिक क्रीड़ाओं का सविस्तार वर्णन'' करने वाला माना है, किन्तु यह मत विश्वसनीय नहीं जान पड़ता। रमैनी 'बीजक' की प्रस्तावना है। कबीर ने रमैनी द्वारा हिंदू एवं मुसलमान दोनों को समान रूप से धार्मिक शिक्षा दी है और अपने विचारों को निर्भयतापूर्वक समाज के सामने रखा है। कबीर के बीजक ग्रंथ का वास्तविक सार एवं आध्यात्मिक रहस्य रमैनी में मिलता है जो प्रायः चौपाई छंद में है।[13] 'बावन आखिरी' और 'ज्ञान चौतीसा' कबीर दास की प्रसिद्ध रमैनियाँ हैं।

कबीर में अपने भावों को अभिव्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता है। उनका काव्य संकेतधर्मी काव्य है। वे अपनी भावनानुभूति को संकेत के द्वारा व्यक्त करते हैं। तो वहीं दूसरी ओर उनके काव्य में पारदर्शिता भी देखने को मिलती है। उनके व्यक्तित्व का पूरा–पूरा प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में दिखाई देता है।

कबीर के काव्य में निर्गुण तत्व :–

भारतीय दार्शनिक परंपरा में प्राचीनकाल से ही निर्गुण की साधना और ध्यान की परंपरा है। निर्गुण भक्तिधारा एक दार्शनिक–सामाजिक आंदोलन था। जिसका परवर्ती रूप कबीर तथा अन्य संत भक्त में दिखाई देता है। आ. शुक्ल जी कहते हैं– ''सिद्धों तथा नाथों से निर्गुण भक्ति का रास्ता बना दिया है।'' हिंदी साहित्य में निर्गुण भक्ति का प्रारंभ सिद्धों तथा नाथों की काव्य रचना से हुआ। माना जाता है कि महाराष्ट्र के प्रसिद्ध भक्त ज्ञानदेव तथा नागदेव की निर्गुण उपासना का प्रभाव संत कबीर पर विशेष रूप से पड़ा। डॉ. पिताम्बर दत्त बड़थ्वाल के 'हिंदी काव्य में योग प्रवाह' शीर्षक निबंध में यह प्रमाणित हो गया कि 'सिद्धों की धारा नाथ योगियों में अंतर्भुक्त होकर निर्गुण संतों की परंपरा में विकसित हुई है।'[14]

निर्गुण ब्रह्म जानने का विषय है, मानने का नहीं। ज्ञान (ब्रह्म) की अनुभूति ही भक्ति की ओर अग्रसर करती है। ब्रह्म को जान लेना ही निर्गुण भक्ति का उद्‌देश्य है। परमतत्व की अनुभूति के संबंध में कबीर स्वयं कहते हैं– ''मेरे स्वयं विचार करते–करते मन ही मन सत्य का प्रकाश हो उठा और मुझे उसकी उपलब्धि भी हो गई।''

''करत बिचार मन ही मन उपजी, ना कहीं गया–न आया''[15]

कबीर इसी निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं जिसकी प्राप्ति के लिए वे सतत् संघर्ष करते रहे । उन्होंने ज्ञान और धर्म को एक दूसरे का पूरक माना । उनका विश्वास था कि ज्ञान के द्वारा ही भ्रम, अंधकार, अंधविश्वास, बाह्याडम्बर को दूर किया जा सकता है–

''संतों भाई, आई ज्ञान की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ांणी, माया रहै न बांधी।''

निर्गुण और निराकार ब्रह्म की भक्ति करने वाले कबीर जिस 'राम' नाम को जपने की बात कहते हैं, वह 'दशरत–सुत' राम नहीं है। वह निराकार ब्रह्म है–

'निरगुन राम निरगुन राम जपहु रे भाई।
अबिगत की गति लखी न जाई।।[16]

निराकार ब्रह्म के लिए उन्होंने राम, रहीम, अल्लाह, सत्य आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने कहा भी है 'अपरंपार का नाउं अनंत।' ब्रह्म ही जगत् में एक मात्र सत्ता है, इसके अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है। जो कुछ है ब्रह्म ही है, ब्रह्म ही से सबकी उत्पत्ति होती है और फिर उसी में सब लीन हो जाते हैं। कबीर के शब्दों में –

''पानी ही ते हिम भया, हिम है गया बिलाई।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाई।।''

जिस प्रकार नामरूपात्मक दृश्यों की उत्पत्ति ब्रह्म से ही है और ब्रह्म में ही समा जाते हैं, इसी को बतलाते हुए कबीर कहते हैं–

''जल में कुंभ–कुंभ में जल है, बाहरि भीतरी पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समानां, यहु तत कथौ गियानी।।

जिसे ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है वह अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। कबीर कहते हैं कि मुझे ब्रह्म (परमतत्व) का साक्षात्कार हो गया है, यही कारण है कि वे स्वयं को अमर कहते हैं–

'हम न मरैं मरिहैं संसारा, हम कूँ मिल्या जिवावनहारा।'[17]

कबीर के निर्गुण तत्व (ब्रह्म) को किसी सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। वह निर्गुण, निराकार, निरंजन है, 'सत', 'रज', 'तम' सभी गुणों से परे है। सृष्टि के कण–कण में विद्यमान अलौकिक सत्ता की प्राप्ति,उसके मिलन की उत्सुकता उनमें स्पष्ट झलकती है।

उपसंहार :–

हिंदी संत–साहित्य में कबीर का दार्शनिक चिंतन पर सभी धर्म तथा सम्प्रदायों का कमोवेश प्रभाव दिखाई देता है। उनकी दार्शनिक विचारधारा का प्रवाह इतना वेगमय था कि इसके सामने अंधविश्वासों और आडंबर रूपी बड़ी–बड़ी इमारते हिल गयी थी। कबीर के काव्य में उनका मस्तमौला–फक्कड़ व्यक्तित्व कठोर से कठोर बातों को सहज ही कह देने वाले दृढ़ विश्वासी रूप दिखाई देता है। उनके काव्य को एक सीमा में बाँधकर रखना असंभव है। वे धर्म, पुराण, जाति, परमतत्व, बाह्याडंबर, प्रेमी, प्रतापी, मुर्ख आदि सभी पर उन्होंने अपनी बात कही है। उन्होंने किसी साम्प्रदायिक विधि से षिश्यता ग्रहण नहीं की थी। कर्मकाण्ड, धर्म विधान को वे बाह्याडम्बर मानते थे। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। उनकी दार्शनिक विचारधारा आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ सूची :–

1. हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेन्द्र
2. कबीरदास– कांतिकुमार
3. कबीर साहेब का बीजक– कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति
4. हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेन्द्र
5. हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेन्द्र
6. हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेन्द्र
7. कबीरदास– कांति कुमार

8. कबीर मीमांसा– रामचंद्र तिवारी
9. कबीर बानी– डॉ. भागीरथी मिश्रा
10. कबीर बानी– डॉ. भागीरथी मिश्रा
11. कबीरदास– कांतिकुमार
12. कबीर बानी– डॉ. भागीरथी मिश्रा
13. विकिपीडिया
14. कबीर मीमांसा– रामचन्द्र तिवारी
15. 'कबीर ग्रंथावली', काशी नागरी प्रचारणी सभा
16. हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेन्द्र
17. कबीर ग्रंथावली– बाबू श्यामसुन्दर दास

प्रेरक कथा

एक असंतुष्ट और ईर्ष्यालु व्यक्ति ईश्वर से रोज प्रार्थना करता था, कि भगवान मुझे मेरे कष्टों से मुक्ति दे दो बदले में मैं दूसरें के कष्ट भोगने को तैयार हूँ , क्योंकि उसे हमेशा लगता था कि संसार में बाकी सब के कष्ट कम है और उसके कष्ट बहुत ज्यादा है। एक दिन स्वप्न में भगवान ने कहा ठीक है तुम अपने दुखों की पोटली ले कर मंदिर में आओं। मंदिर में वह देखता है कि सब लोग अपने दुख की पोटली लेकर आये हैं, भगवान ने कहा तुम हमेशा अपने कष्ट दूसरों के कष्ट से बदलना चाहते थे आज अपने दुखों की पोटली तुम दूसरे के दुखों की पोटली से बदल लो। मंदिर के दीवाल में अंकित था, अपनी दुखों की पोटली दीवाल के किनारे रख दे और दूसरों की पोटली में जो पोटली अच्छी लगी वह उठा ले, लेकिन उस आदमी ने देखा सब अपनी पोटली लेकर ही वापस जा रहे थे, क्योंकि दूसरों के कष्ट की पोटली ज्यादा भारी लग रही थी और लगा अपनी पोटली के कष्ट जो जाने पहचाते है और कुछ ऐसे है जो हमने स्वयं उत्पन्न किये है जबकि दूसरों के दुख की पोटली से तो हम पूर्णतः अनभिज्ञ हैं।

संकलित

भारतीय आध्यात्मिक दर्शन का संत साहित्य पर प्रभाव

डॉ. कंचन शर्मा, व्याख्याता,
संस्कृत उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान मानित विश्वविद्यालय,
गां.वि. मं., सरदारशहर, चूरू (राज.)

सारांश :–

सगुणोपासक और निर्गुणोपासक संतो की रचनाओं में बड़ा भारी भेद यह है कि एक के आराध्य सगुण, साकार साक्षात् मूर्तिमान है उनका जो भी वर्णन किया जाता है वह आराम से समझ में आता है। उसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होती है। निर्गुणोपासक के आराध्य निर्गुण निराकार, अलख निरंजन है उनके विषय में जो कुछ कहा जाता है उसका मर्म सहसा समझ में नही आता है लेकिन शहनशाह बाता अवतार सिंहजी ने अपनी रचना अवतारवाणी के माध्यम से बड़े ही सरल शब्दों में इस निर्गुण निराकार का वर्णन किया है।

अवतारवाणी में सत्संग, सेवा, सुमिरण, ब्रह्म, प्रवृति सद्गुरू और माया का बड़ा ही सरल शब्दों में वर्णन किया गया है। परम अस्तित्व ईश्वर का है। इसकी महिमा अपरम्पार है, कर्म काण्ड ईश्वर प्राप्ति के साधन न होकर, सांसांरिक कामनाओं की पूर्ति के लिए किया गया प्रयास मात्र है।

सम्पूर्ण अवतार बाणी में जिन बातों पर विशेष बल दिया गया है, उनमें सम्मिलित हैं :–

1. परम अस्तित्व ईश्वर एक है।
2. ईश्वर की महिमा अपरम्पार है।
3. ईश्वर की प्राप्ति के लिए जो धर्म काण्ड आदि उपाय किये जा रहे हैं। वे ईश्वर की प्राप्ति के साधन नहीं, बल्कि सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के हितार्थ किए गए प्रयत्न मात्र ही है।
4. ईश्वर की प्राप्ति केवल किसी ब्रह्मवेता के द्वारा ही सम्भव है।
5. ईश्वर से विमुख होकर जड़ वस्तुओं अथवा संसार की क्षण–भंगुर वस्तुओं से नाता जोड़ना, अपने आपको योनि चक्र में फंसाए रखना है।

इसके अतिरिक्त ज्ञान–प्राप्ति के पश्चात् एक गुरसिख का जीवन कैसा होना चाहिए आदि–आदि अनेक विषयों पर सम्पूर्ण बाणी में चर्चा की गई है।

सांकेतिक शब्दावली :–

परम अस्तित्व, माया, सद्गुरू की महिमा, गुरू ज्ञान, गुरूसिख, गुरूमुख, मनमुख, समय की महता।

प्रस्तावना :–

सगुणोपासक और निर्गुणोपासक संतो की रचनाओं में बड़ा भारी भेद यह है कि एक के आराध्य सगुण, साकार साक्षात् मूर्तिमान है उनका जो भी वर्णन किया जाता है वह आराम से समझ में आता है। उसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होती है। निर्गुणोपासक के आराध्य निर्गुण निराकार, अलख निरंजन है उनके विषय में जो कुछ कहा जाता है उसका मर्म सहसा समझ में नही आता है लेकिन शहनशाह बाता अवतार सिंहजी ने अपनी रचना अवतारवाणी के माध्यम से बड़े ही सरल शब्दों में इस निर्गुण निराकार का वर्णन किया है।

अवतारवाणी में सत्संग, सेवा, सुमिरण, ब्रह्म, प्रवृति सद्गुरू और माया का बड़ा ही सरल शब्दों में वर्णन किया गया है। परम अस्तित्व ईश्वर का है। इसकी महिमा अपरम्पार है, कर्म काण्ड ईश्वर प्राप्ति के साधन न होकर, सांसांरिक कामनाओं की पूर्ति के लिए किया गया प्रयास मात्र है।

सम्पूर्ण अवतार बाणी शहनशाह बाबा अवतार सिंह जी द्वारा समाज को एक अमर देन है। आपने भले ही किसी स्कूल या कॉलेज में रहकर कोई उच्च शिक्षा प्राप्त न की हो, परन्तु जिस कुशलता के साथ आपने ब्रह्म, प्रकृति अथवा माया, सद्गुरू, गुरसिख, सत्संग, सेवा, सुमिरण जैसे आध्यात्मिक विषयों का उल्लेख किया है, उससे कतई आभास नहीं होता कि औपचारिक शिक्षा का अभाव आपके मार्ग में किसी बाधा का कारण बना। आपने पंजाबी कविता में साधारण से साधारण शब्दों का प्रयोग करके साधारण व्यक्ति के दैनिक जीवन से गहन आध्यात्मिक रहस्यों को जन साधारण तक पहुँचाने, उन्हें समझाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की। यह एक अलग बात है कि सम्पूर्ण अवतार बाणी की पूजा नहीं होती, परन्तु जहाँ तक विषय वस्तु तथा उसके प्रस्तुतीकरण का संबंध है, यह किसी धर्मग्रन्थ से कम नही। कई स्थानों पर तो शहनशाह जी ने बड़े से बड़े विषय

का एक–एक पंक्ति में ऐसा निर्णय दे दिया जिसे समझने के लिए विद्वान वर्षों अध्ययन करते हैं। भक्त तरह–तरह के शारीरिक कष्ट उठाते है। सम्पूर्ण अवतार बाणी में दिये गये शहनशाह बाबा अवतार सिंह जी के कुछ आदेशों–उपदेशों का उल्लेख करते है, तो अपने मनों से उन भ्रान्तियों को दूर कर पाते है जो आमतौर हर इंसान को घेरे रहती है।

सम्पूर्ण अवतार बाणी में जिन बातों पर विशेष बल दिया गया है, उनमें सम्मिलित हैं :–

1. परम अस्तित्व ईश्वर एक है।
2. ईश्वर की महिमा अपरम्पार है।
3. ईश्वर की प्राप्ति के लिए जो कर्म काण्ड आदि उपाय किये जा रहे हैं। वे ईश्वर की प्राप्ति के साधन नहीं, बल्कि सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के हितार्थ किए गए प्रयत्न मात्र ही है।
4. ईश्वर की प्राप्ति केवल किसी ब्रह्मवेता के द्वारा ही सम्भव है
5. ईश्वर से विमुख होकर जड़ वस्तुओं अथवा संसार की क्षण–भंगुर वस्तुओं से नाता जोड़ना, अपने आपको योनि चक्र में फंसाए रखना है।

इसके अतिरिक्त ज्ञान–प्राप्ति के पश्चात् एक गुरसिख का जीवन कैसा होना चाहिए आदि–आदि अनेक विषयों पर सम्पूर्ण बाणी में चर्चा की गई है।

परम अस्तित्व :–

निरंकार परमात्मा की हर ग्रन्थ शास्त्र में एक से एक बढ़ कर परिभाषा दी गई है। परम सता चूंकि इतनी रहस्यमय, इतनी विशाल और व्यापक है कि इसकी पूर्णरूपेण जानकारी सम्भव नहीं, अतः इसकी कोई एक परिभाषा दे पाना भी किसी के सामर्थ्य में नहीं, फिर भी अनुभूत आत्माओं ने जितने–जितने अंशों में परम अस्तित्व की अनुभूति की, उसे शब्दों में अभिव्यक्त करने की भरसक कोशिश की। यहाँ यह भी याद रखना है कि अनुभूति को शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति देने से आधा ही भाव प्रकट हो पाता है क्योंकि शब्द भाव को पूर्णतया अभिव्यक्त करनें में असमर्थ हैं। अस्तु, पहले तो परम अस्तित्व निरंकार प्रभू की पूर्ण अनुभूति होना ही असम्भव है और फिर इस अनुभूति को व्यक्त करते समय रही–सही बात चूकने का डर बना रहता है।

खैर, फिर भी आपको जो परम अस्तित्व की अनुभूति अपने सद्गुरू की कृपा से हुई है, उसके आपकी बाणी में ही ज्यों का त्यों भेंट किया जा रहा है। आप अवतार बाणी के शब्द 10 में लिखते हैं :–

बन्दे उप्पर वेख जरा एह सूरज चन्द सितारे नें।
चमक इन्हां दी मुकणी इन दिन मिट जाणे एक सारे नें। (शब्द 10)

अर्थात् जो कुछ हमारी दृष्टि देख रही है या जो कुछ हमारी समझ की पकड़ में आ रहा है, वह सब कुछ काल का ग्रास बनने वाला है। जैसे ऊपर सूर्य, चाँद और सितारे, बीच में वायु, जीव और आकाश एवं नीचे धरती, जल और अग्नि, ये सब कुछ बदल जाने वाले हैं, समय पाकर मिट जाने वाले हैं, परन्तु इनमें विद्यमान होते हुए भी जो अस्तित्व इनसे न्यारा है, वह कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। काल का जिस पर कभी कोई प्रभाव नहीं होता, उसी का निरंकार के नाम से पुकारा जाता है।

माया :–

माया बड़ी प्रबल शक्ति है, मनुष्य को किसी समय भी पथभ्रष्ट कर सकती है। माया के सुखों का साया सदा कायम नहीं रह सकता। माया के पीछे लगना, इसे ही जीवन का लक्ष्य बना लेना बुद्धिमता का प्रमाण नहीं। गुरसिख इस माया से बच सकता है यदि वह अपना सम्बन्ध सदा सन्तों महापुरूषों से रखे। शहनशाह जी कहते हैं :–

माया रंग बिरंगी जेहड़ी तेरा जी परचांदी ए।
पक्की गल समझ लै मेरी एह आंदी ते जांदी ए। (शब्द 51)

इसी प्रकार शहनशाह जी कहते है कि माया सब झूठ है, अन्त में साथ नहीं देगी। यहाँ तक कि इस शरीर का भी भरोसा नहीं।

झूठी दुनियां झूठी नगरी झूठा राजा ते संसार।
झूठे धीयां पुत्त कबीले झूठे सारे रिश्तेदार।
झूठे सारे महल माड़ियां जिन्नां ते तूं माण करें।
कहे अवतार एह निरा झूठ ए जिस पासे तूं ध्यान करें। (शब्द 157)

सद्‌गुरू की महिमा :–

सत्य के ज्ञाता गुरू की गाथा से सम्पूर्ण अवतार बाणी भरी पड़ी है। आपका हर शब्द पुकार कर कह उठता था कि परमसत्य को समझने के लिए और कोई उपाय काम नहीं आता, सिवाय सद्‌गुरू की कृपा के आपका निश्चित मत था कि सद्‌गुरू कहते ही उसे हैं जो परम सत्य का क्षण भर में बोध करा दें। वे अपने जीवन का अनुभव बताते हुए घोषणा करते हैं कि आम आदमी की तरह का ही था। मुझमें कोई विशेष योग्यता नहीं थी। मैनें कोई जप–तप, पूजा–पाठ नहीं किया था, केवल गुरू की ओट ली थी, उसी के फलस्वरूप मेरे समग्र जीवन की काया ही पलट गई। अवतार बाणी का पाँचा शब्द मुंह बोलता चित्र है :–

मैं बन्दा हां बन्दे वरगा हस्ती नहीं कोई वक्ख मिली।
सत्‌गुरू बख्शी ज्ञान सलाई वेखण वाली अक्ख मिली। (शब्द 5)

परम अस्तित्व सद्‌गुरू की कृपा से जिस मन में बस जाता है, उसके जीवन में अकस्मात् ऐसी क्रान्ति घट जाती है या उसका जीवन इस सीमा तक रूपान्तरित हो जाता है कि वह पुरूष हर हाल में जीते हुए सब प्रकार से संतुष्ट एवं आनन्दमय रहता है। उस पुरूष की आनन्द अवस्था में फिर कोई बाधक नहीं बन सकता। आपने इस तथ्य का बड़े ही सरल शब्दों में बखान करते हुए फरमाया है :–

जिस दे दिल निरंकार दा वासा जग न झूठा कर सक्के।
कमल रहे ज्यों जल दे अन्दर जल न झूठा कर सक्के। (शब्द 59)

आपने फरमाया है कि निराकार प्रभु कण–कण में विराजामन है। यह बात हमें तब समझ में आती है जब हम इस सता का बोध सद्‌गुरू से प्राप्त कर लेते हैं तब हमें तुरन्त समझ ाजा जाता है कि निरंकार प्रभु ही सारी सृष्टि की रचना करने वाला है। अस्तु, यह सारी सृष्टि का स्वामी है। शहनशाह जी अगली दो पंक्तियों में फरमाते हैं कि इस अस्तित्व को न तो शस्त्र से काटा जा सकता है और न ही वायु इसे सुखने में समर्थ है। पानी इसे गला नहीं सकता और आग इसे जला नहीं सकती –

शस्तर एहनूं कट नहीं सकदा हवा तो सकदा सुक नहीं।
पाणी एहनूं गाल ना सक्के अग्ग तों सकदा मुक नहीं। (शब्द 189)

हम देखते है कि संसार में किसी नौकरी को प्राप्त करने के लिए यदि कोई विज्ञापन छपता है तो उसमें बताया गया होता है कि वह फलां–फलां, अमुक–अमुक प्रकार की योग्यताएं रखने वाला होना चाहिए या फलां–फलां कोर्स का डिप्लोमा होल्डर होना चाहिए। अगर कोई आदमी वे शर्तें पूरी करने में योग्य है तो उसे उस नौकरी को प्राप्त करने में कोई बाधा नहीं आती, परन्तु अगर किसी इन्सान ने वह डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त नहीं किया है तो उसे वह नौकरी मिलने वाली नहीं। इसी प्रकार हम भले ही कितने प्रकार के कर्मकाण्ड करने में समर्थ हों, परन्तु अगर हमारा नाता हरि से नहीं जुड़ा हुआ होता तो हम हरि–यश कर पाने में सफल नहीं हो पाते और जो इन्सान किसी महात्मा की कृपा से हरि से नाता जोड़ लेते हैं तो जहाँ है तो जहाँ हरि–यश करने में समर्थ हो जाते हैं वहाँ हरि–यश करने के कारण अथवा हरि के साथ नाता जुड़ने के कारण उनके हृदय में दया, प्यार, सत्कार की भावनाएं एव् दूसरे को अपनाने का दैवी गुण सहज में ही जाता है जिससे इन्सान का लोक सुखी और परलोक सुहेला हो जाता है। सत्य का ज्ञान प्राप्त करके उसे समझ आ जाती है कि आत्मा सब में एक जैसी ही निवास कर रही है और जितने भी शरीर हमें नजर आ रहे हैं, वे सभी पाँच तत्वों से बने हुए है।

गुरू–ज्ञान :–

जब शहनशाह जी ने देखा कि मनुष्य माया में बुरी तरह लिप्त है और निराश–हताश हो चुका है तो ऐसे लोगों को आत्म कल्याण का आश्वासन देते हुए फरमाया कि हे भूले–भटके इन्सान घबरा मत। गुरू की शरण लेकर परम सत्य का बोध प्राप्त कर ले और मुक्त अवस्था का अधिकारी बन जा।

ज्ञान गुरू दा इनसानां नूं रब दा घर दिखलांदा ए।
ज्ञान गुरू दा इनसानां नूं मुक्ति मागर पांदा ए।
नाम हरि दा सार गुरू दी नाम हरि दा योग वी ए।
नाम हरि दा प्राण ते पिंडा नाम दवाई रोग दी ए। (शब्द 42)

इसी प्रकार आपका कथन है कि अंधकरामय जीवन, जो मौत के साये में पल रहा है, उसे भी सुखद बनाया जा सकता है। केवल तुम्हें अपने गुरू से सत्य ज्ञान को प्राप्त करना होगा।

हे मेरे मन ओट लया कर रब्ब दे कामिल बन्दे दी।

तन मन धन सभ अर्पण कर दे सोहबत छड दे मंदे दी। (शब्द 100)

शहनशाह जी आज के इन्सानों की दशा का विशद् चित्रण करते हुए फरमाते हैं कि परमात्मा ने तो मनुष्य को पाँच तत्वों से निर्मित किया है परन्तु यह इन्सान तो बंटता ही चले जा रहा है। कितने दुख की बात है कि बनाने वाला भी एक और जिस सामग्री से बबनाया है वह भी एक। फिर भी आज कोई हिन्दू तो कोई मुसलमान, कोई सिक्ख तथा ईसाई बनकर एक–दूसरे से लड़–मर रहे हैं। ऐसा लग रहा है कि उनकी मति पर अज्ञानता का पर्दा पड़ गया है। इसी कारण आज मजहबों, जातों–वर्णों के नये से नये राग सुनने को मिल रहे हैं। कैसी विडम्बना है कि जो निराकारण अस्तित्व हमारे चहुँ ओर विद्यमान है, उसे आँखों से ओझल करके इन्सान अज्ञानी आगुओं के पीछे सरपट दौड़ता जा रहा है। ऐसे लोगों को सावध ाान करते हुए आप फरमाते है कि उन्हें सत्य के ज्ञाता गुरू से ज्ञान की रोशनी प्राप्त करते हुए आप फरमाते हैं कि उन्हें सत्य के ज्ञाता गुरू से ज्ञान की रोशनी प्राप्त करके और सब घटों में एक के ही दर्शन करके अपने आपको इन भेदभावों के जंजाल से मुक्त करने का सदा यत्न जारी रखना चाहिए। आपका यह निश्चित मत है कि सद्गुरू की कृपा के बिना सत्य परमात्मा की जानकारी सम्भव नहीं। बड़े–बड़े महात्माओं को भी इस परम्परा का निर्वाह करना पड़ा, जैसे भगवान राम, भगवान कृष्ण या श्री गुरू नानक देव जी महाराज। वैसे तो वे सब प्रकार से पूर्ण थे परन्तु कृष्ण या श्री गुरू नानक देव जी महाराज। वैसे तो वे सब प्रकार से पूर्ण थे परन्तु हमारे पथ–प्रदर्शन के लिये उन्होंने भी पूरे गुरू की शरण ली और ज्ञान – ज्योति प्राप्त करके मानव के उत्थान में सदा लगे रहे।

निष्कर्ष :–

भारतीय आध्यात्मिक दर्शन सत्ता के बारे में कोई धारणा बनाने की कोशिश करता है। उसका उद्देश्य विश्व को समझना है? सत्ता का स्वरूप क्या है? प्रकृति क्या है? आत्मा क्या है? ईश्वर क्या है? दर्शन शास्त्र इन जिज्ञासाओं का समाधान करने की कोशिश करता है। दर्शन यह भी बताने की कोशिश करता है कि मानव जीवन का उद्देश्य क्या है? इस संसार से उसका क्या संबंध है? भारतीय दर्शन आध्यात्मिक क्षेत्र में विकसित हुआ है। दार्शनिक आध्यात्मिकता ने हरेक काल में लोक साहित्य एवं परम्पराओं को प्रभावित किया है। आधुनिक काल के सन्त साहित्य को भी भारतीय दार्शनिक परम्परा के आध्यात्मिक पक्ष ने प्रभावित किया है। इसी क्रम में बाबा अवतारसिंह द्वारा रचित सम्पूर्ण अवतार वाणी नामक ग्रन्थ परम अस्तित्व, माया, सद्गुरू की महिमा, गुरू ज्ञान, गुरूसिख, गुरूमुख, मनमुख, समय की महता को सरल रूप में आज के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची :–

1. भारतीय दर्शन, परिभाषा कोश, अध्याय 1 पृ.2, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
2. पौद्दार हनुमानप्रसाद, सं. 2064 गीता वाटिका प्रकाशन, गोरखपुर, पृ. 22.–23।
3. एक नजर, 1 से 15 मार्च 2019
4. शहनशाह श्री अवतार प्रिन्टिग प्रेस, संत निरंकारी मण्डल, नई दिल्ली, पृ. 78–106
5. अवतार उपदेश, भाग 1, भाग 2, संत निरंकारी मण्डल, नई दिल्ली, 1974
6. संत निरंकारी पत्रिका, अगस्त 2019, संत निरंकारी मण्डल, नई दिल्ली।
7. www.nirankari.org
8. editorial@nirankari.org

संत कबीर दास जी के काव्य का साहित्य व समाज प्रभाव

श्रीमती हेमलता सिदार, सहायक प्रध्यापक (शिक्षा संकाय)
भिलाई महिला महाविद्यालय हॉस्पिटल सेक्टर, भिलाई (छ.ग.)

सारांश :–

भक्ति आन्दोलन भारतीय इतिहास में एक ऐसी सांस्कृतिक घटना के रूप में देखा जाता है जिसने तीन सौ वर्षो तक भारतीय जीवन को अनुप्राणित किया । कबीर ने भक्ति और प्रेम को मानवीय मूल्यों मे सर्वोपरि बतलाया है। उनकी भक्ति केवल भाव नहीं है कर्म भी है। प्रेम और भक्ति से सम्बंधित उनके दोहे हृदय को छू लेते है –

प्रेम पियाला जो पिए, सिस दक्षिणा देय
लोभी शीश न दे सके, नाम प्रेम का लेय

भावार्थ :–

जिसको ईश्वर प्रेम और भक्ति का प्रेम पाना है उसे अपना शीशकाम, क्रोध, भय, इच्छा को त्यागना होगा। लालची इंसान अपना शीशकाम , क्रोध, भय, इच्छा को त्याग नहीं सकता लेकिन प्रेम पाने की उम्मीद रखता हैं । कबीर निर्गुण ध ारा के सर्वश्रेष्ठ कवि है । वे संतमय के प्रर्वतंक और संत काव्य के कवि है। उनकी भक्ति का मूल आधार व्यक्ति को सुरक्षित रखकर एकता का प्रतिपादन करना है। कबीर की भक्ति भावना में नाम स्मरण को अधिक महत्व दिया गया है। कबीर ने तत्कालीन धार्मिक पाखण्डो एवं सामाजिक कुरितियों को दूर करके जनसाधारण को सरल जीवन, सत्याचरण, पारस्परिक एकता समानता आदि की ओर उन्मुख करने का सराहनीय कार्य किया।

कबीर साहित्य में जहाँ दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य की महत्ता मिलती है, वही उनके साहित्य में समाज सुधार शंखनाद भी है। वह दार्शनिक होने के साथ–साथ समाज सुधारक भी थे। समाज सुधार अर्थात् जन जीवन का उत्थान कबीर के जीवन की साधना थी।

प्रस्तावना :–

आदिकाल अथवा वीरगाथा काल की कविताओं में वीर रस की प्रधानता थी । इसका संवत् 1375 तक है। इसके बाद भक्तिकाल आता है।

भक्तिकाल में जैसे भक्तो की बाढ़ सी आ गई। भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों को खोजते हुएं हम सबसे पहले हिन्दी की इस उक्ति को देखें जो इसके जन्म के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत करती है।

भक्ति द्रविड़ ऊपजी लाए रामानन्द।
प्रकट करी कबीर ने सप्तद्वीत नवखंड।।

भक्ति के दक्षिण में उत्पन्न होने और वहाँ से रामानन्द द्वारा गाए जाने और उत्तर में कबीरदास द्वारा प्रसारित किये जाने का संकेत करती है। दक्षिण में भक्ति के तीन रूप दिखाई देते हैं। एक रूप वैष्णव संप्रदाय कि भक्ति का है। जिसमें राम और कृष्ण से सम्बंधित भक्ति संप्रदाय को आधार मिला। दूसरा रूप शैवों का था जो नयनार संतो के आश्रय में फली–फूली । भक्ति की तीसरी धारा को महाराष्ट्र में सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित ज्ञानदेव और नामदेव के माध्यम से प्रसार हुआ। इस सम्प्रदाय का विकास आलवरों से होता हुआ नाथमुनि यमुना चार्य, रामानुजाचार्य रामानन्द, वल्लभाचार्य, माधवाचार्य और विष्णुस्वामी से होता हुआ कबीर सूर, तुलसी, मीरा, चैतन्य और नानक के माध्यम से हुआ है।

कबीर निगुर्ण भक्ति मार्ग के अनुयायी थे और वैष्णव भक्त थे। रामानन्द से शिष्यत्व ग्रहण करने के कारण कबीर के हृदय में वैष्णवों के लिये अत्यधिक आदर था। कबीर के भक्ति में गुरू को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया इसकी छाया इनके दोहे में दिखाई पड़ती है।

गुरू गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरू आपने, गोविंद दियो बताय।।

कबीर दास जी कहते है कि अगर हमारे सामने गुरू और भगवान दोनों एक साथ खड़े हों तो आप किसके चरण स्पर्श करेंगें? गुरू ने अपने ज्ञान से ही हमें भगवान से मिलने का रास्ता बताया। इसलिए गुरू की महिमा भगवान से ऊपर है और हमें गुरू के चरण स्पर्श करने चाहिए।

कबीर का जीवन वृत्त :–

कबीर का जन्म कब हुआ इस सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं है। कबीर चरित्र बोध के अनुसार कबीर का जन्म संवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा सोमवार को हुआ। कबीर पंथियों की मान्यता का आधार यह पद है –

''चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।।''

पिता नीरू एवं माता नोमा नामक जुलाहों ने इनका पालन पोषण किया था। स्वामी रामानंद, इनके गुरू थे । कबीर ने कहा है– काशी में हम प्रगट भय, रामानंद चेताये। कबीर जी की पत्नि का नाम लाई था। कमाल और कमली इनकी संताने थी।

शिक्षा :–

कबीर का ज्ञान किताबी न होकर अनुभवीय था। वे घुमक्कड़ प्रकृति के थे और अनेक तीर्थ स्थानों की यात्राएँ भी करते थे। वे हिन्दू साधु और मुस्लिम फकीरों की सत्संगति में रहते थे। इस सत्संग से कबीर को बहुत लाभ हुआ। इसी से उन्हें भारत में प्रचलित विभिन्न भाषाओं के शब्दों का ज्ञान हुआ और वे हिन्दू शास्त्रों और मुस्लिम धर्म ग्रंथो से परिचित हुए। इनका निधन 1575 में मगहर में हुआ था।

बीजक कबीर की प्रमाणित रचना मानी जाती है। बीजक के तीन भाग – साखी, सबद और रमैनी है। इसमें साखी महत्वपूर्ण मानी जाती है।

कबीर जी के दोहे का साहित्य व समाज पर प्रभाव :–

मसि कागद छूऔं नहीं, कलम गहौं नहि हाथ ।
घरों जुग कै महातम कबिरा मुखहिं जनाई बात ।।

कबीर साहित्य संत कबीर के निजी अनुभव से प्राप्त ज्ञान पर आधारित है। तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं साम्प्रदायिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर जन कल्याण की भावना से उनके मुख से जो उद्‌गार, सीख उपदेश या चेतावनी निकली, वही कबीर साहित्य के नाम से प्रचलित है।

इस दोहे के माध्यम से कबीर जी कहते हैं कि मैनें कभी स्याही और कागज को नही छुआ और न ही मैनें कलम को कभी हाथ लगाया। मैं चारो युगों के महात्मय की बात मुह जबानी बताता हूँ।

कबीर एक ऐसे युग में उत्पन्न हुए थे जब भारतीय समाज निराशा और दीनता में डूब रहा था। कबीर नें निराशा के घने अंधकार में डूबे भारतीय समाज को अपने दिव्य ज्ञान के प्रकाश से आलोकित कर दिया।

कबीर ने समकालीन जीवन में परिव्याप्त जातिगत ऊँच–नीच और भेद–भाव की भावना, छूआ–छूत की भावना आदि पर भी तीव्र प्रहार किए है।

समाज सुधारक की दृष्टि से कबीर की उक्तियाँ इतनी अधिक मार्मिक हैं कि वे कबीर कालीन समाज पर ही नही अपितु आधुनिक कालीन सामाजिक कुरीतियों पर भी पूर्णतः चरितार्थ होती है।

'' काहे को कीजै पांडे छूत विचार।
छूत ही ते उपजा सब संसार।।
हमरे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध।
तुम कैसे ब्राम्हण पांडे, हम केसे सूद।।
छूत–छूत करत तुम्ह ही जाये।
ते गुरूवास काए हो आए ।। ''

छूआछूत के कारण समाज विकास नहीं कर पा रहा था इसलिए कबीर ने पंडित वर्ग द्वारा छूआछूत का प्रपंच खड़ा करने की भर्त्सना करते हुए कहा था –

कबीर की यह उक्ति कि अरे पंडो– पंडितों । तुम जिन अछुतों से घृणा करते हुए उन्हें अस्पृश्य समझते हो, तुम्हारा जन्म भी उसी वर्ग की अछूत (भंगिने जो कुछ समय पूर्व तक गांवों में एक मात्र दाई हुआ करती थी) द्वारा हुआ है।

समाज सुधारक के रूप में कबीर का योगदान इस दृष्टि से भी बड़ा महत्वपूर्ण है कि उन्होनें समकालीन सामाजिक जीवन में परिव्याप्त हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य की खाई को पाटने का प्रयास किया है। उन्होनें दोनों ही धर्मावलम्बियों की साम्प्रदायिक कट्‌टरता का विरोध और उपहास किया है।

कबीर आज इस दुनिया मे नहीं है, मगर उनकी कही गुढ़ बातें आज भी हम सभी के लिए अंधेरे में मशाल का काम करती हैं।

व्यर्थ की बातों में बहस में क्रियाकलापों में आज हरेक इतना समय बरबाद कर देता है। साधु यानि अच्छे लोगों को मुख्य बातों पर ही ध्यान देना चाहिए इस बात को सूप के माध्यम से कबीर ने बहुत सुन्दर तरीके से समझाया था–

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय,
सार–सार कोगहि रहै, थोथा देई उड़ाय ।
बोलि एक अनमोल है, जो कोई बोलै जानि,
हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आनि।

आज संसार संसार के युग में यह दोहा बहुत प्रासंगिक है–

आजकल राजनैतिक दलों के नेता हों या अभिनेता बिना सोचे समझे बयान बाजी कर देते हैं, संचार के युग में बात कहीं से कहीं तुरन्त पहुंच जाती है, फिर वो सफाई देते रहते है कि उनका ये मतलब नहीं था, वो मतलब नही था। इसलिए बहुत सोच समझकर मुंह से बात निकालना चाहिए।

जति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

कबीर जाति प्रथा को नहीं स्वीकार करते थे, उपर्युक्त दोहे में उन्होंनें स्पष्ट किया है साधु यानि गुणी लोगों की जाति नहीं पूछनी चाहिये, उनके केवल गुण देखने चाहिये। कबीर दास जी कहते है कि मानव शरीर तो नश्वर है इसे एक न एक दिन मिट्टी में मिल ही जाना है। इसलिए हमें अपने शरीर पर कभी अभिमान नही करना चाहिए।

''माटी कहै कुम्हार को, क्या तू रौंदे मोहि।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं रौदूंगी तोहि''

मिट्टी कुम्हार से कहती है कि समय परिवर्तनशील है और एक दिन ऐसा भी आयेगा जब तेरी मृत्यु के पश्चात मै तुझे रौंदूंगी।

इसलिए परमात्मा द्वारा दिये गये शरीर पर अभिमान न करते हुए इस जगत् में रहते हुए मानव हित का अधिक से अधिक काम करना चाहिए। उसी प्रकार मानव की इच्छाओं की पूर्ति

''माला फेरत जुग गया, मिटा न मनका फेर।
कर मन का डारि के, मन का मनका फेर ''।।

मनुष्य ईश्वर को पाने की चाह में माला के मोती को फेरता रहता है परन्तु इससे उसके मन का दोष दूर नहीं होता है। कबीर जी कहते है हमें हाथ की माला छोड़ देना चाहिए क्यों कि हमें कोई लाभ नही होने वाला है। हमें तो केवल मन को एकाग्र करके भीतर के बुराइयों को दूर करना चाहिए।

आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है जो कबीर काल में थी । सामाजिक आडंबर, भेद–भाव, ऊँच–नीच की भावना आज भी समाज मे व्याप्त है। व्याभिचार और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है आए दिन समाचार पत्रों में आग लगी, दहेज मौत, लूट, हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती हैं।

देश के संतो, चिंतको तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की उद्घोषणा की है कि नीति विहीन शासन कभी सफल नहीं हो सकता । नीति और सदाचार अध्यात्म की जड़ है। देश की अवनति तथा सामाजिक दूरव्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भुलकर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित को गए है। ऊपरी आडंबर और शान–शौकत को मुख्य वस्तू मानकर हम अपनी शालिनता, गरिमा तथा जीवन मुल्यों को भूल गए हैं। इस नाजुक परिस्थिति से अध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही हमें उबार सकती है। कबीर साहित्य ऐसे में ऐसे ही विचारों, भावनाओं और शिक्षाओं की गहराई है। उसमें अनमोल मोती गुंथे है। उन्होने मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श किया है। अत : आज की स्थिति में कबीर साहित्य हमारा मार्गदर्शन करने में पूर्णरूप से सक्षम है।

निष्कर्ष :–

कबीर दास जी एक सच्चे विश्व प्रेमी थे। कबीर को जागरण युग का अग्रदूत कहा जाता है। कबीरदास जी अपने जीवन में प्राप्त की गई स्वयं की अनुभूतियों को ही काव्यरूप में ढाल देते है। उनका स्वयं का कहना था।

''मै कहता आंखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी''।।

उनके काव्य का आधार स्वानुभूति या यथार्थ ही है। इसलिए अब वह समय आ गया है। जब हम वर्तमान समाज में व्याप्त धर्म, जाति रंग एवं भेदभाव जैसी बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकें और संसार की समस्त मानवजाति में इंसानियत एवं मानवता की स्थापना के लिए कार्य करें।

कबीर आज इस दुनिया मे नहीं है, मगर उनकी कही गुढ़ बातें आज भी हम सभी के लिए अंधेरे में मशाल का काम करती हैं। कबीर एक व्यक्ति होने के बजाय व्यक्तित्व है, कबीर जो न हिन्दू है और न मुसलमान, कबीर जो दुनियावी होने के बावजूद जाति–धर्म से ऊपर हैं, दुनिया को आईना दिखाते कबीर, समाज में व्याप्त कुरीतियों पर कुठाराघात करते कबीर, एक ऐसी शख्सियत् जिस पर हिन्दू और मुसलमान दोनों दावा करते है और वह हर तरह के जात–पात से ऊपर उठ गया है।

संदर्भित सूची :–

1. hindisahityadarpan.in
2. https://www.exampillar.com
3. uditbhargavajaipur.blogspot.com
4. amp.bharatdiscovery.org/india
5. bharatdarshan.co.nz.cdn.ampproject
6. seniibqa.wordpress.com
7. bharatdarshan.co.nz
8. ba1hindilt2.pdf
9. www.hindikunj.com
10. aajtak-intoday-in.cdn.ampproject
11. www.pravakta.com

स्वामी श्री स्वरुपानंद सरस्वती महाविद्यालय
आमरी नगर, हुडको भिलाई (छ.ग.)
दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी
दिनांक : 27-28 फरवरी 2020

स्वामी श्री स्वरुपानंद सरस्वती महाविद्यालय
आमरी नगर, हुडको भिलाई (छ.ग.)
दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी
दिनांक : 27-28 फरवरी 2020

स्वामी श्री स्वरुपानंद सरस्वती महाविद्यालय
आमरी नगर, हुडको भिलाई (छ.ग.)

प्रकाशक -अदिति पब्लिकेशन
बर्फ कारखाना के पास,
शक्ति साउॅण्ड सर्विस के
सामने गली, कुशालपुर, रायपुर छ.ग.
मो. 94252 10308

ISBN : 9788193710050

9 788193 710050

PRICE : RS. 249.00